भक्तिः परेशानुभवो विरक्तिरन्यत्र चैष त्रिक एक-
कालः ॥ प्रपद्यमानस्य यथाऽश्नतः स्युस्तुष्टिः पुष्टिः
क्षुदपायोऽनुघासम् ॥ ४२ ॥ इत्यच्युताङ्घ्रिं भजतोऽ-
नुवृत्त्या भक्तिर्विरक्तिर्भगवत्प्रबोधः ॥ भवन्ति वै
भागवतस्य राजंस्ततः परां शान्तिमुपैति साक्षात्
॥ ४३ ॥ राजोवाच ॥ अथ भागवतं ब्रूत यद्धर्मो यादृ-
शो नृणाम्॥ यथाऽऽचरति यद्ब्रूते यैर्लिङ्गैर्भगवत्प्रियः
॥४४॥ हरिरुवाच॥ सर्वभूतेषु यः पश्येद्भगवद्भावमा-
त्मनः ॥ भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥४५॥

सब प्राणीमात्र दिशा वृक्ष नदी समुद्र सबकों हरिहीको शरीर जानें अनन्यचित्त ह्वैकैं प्रणाम करे यह वैष्णवनके लक्षण हैं ॥ ४१ ॥ यदि कोई कहैं यह धर्म तो योगेश्वरहूकों दुर्लभ है, अनेक जन्महू करिकैं अलभ्य है, सो एक नाम कीर्त्तनमात्रतें एकही जन्ममें कैसे होइहै तहां कहैं हैं प्रेमलक्षणाभक्ति और प्रेमाश्रय भगवत्स्वरूपकी स्फूर्ति और गृहादिकनमैं वैराग्य ए तीनों हरिके भजनकर्त्ता पुरुषको एकही समय होय है जैसें भोजन करे ताको सुख पुष्टि पेटको भरवो भूखकी निवृत्ति ये तीनों एकही कालमें ग्रास विषें होय हैं ॥ ४२ ॥ पीछें भगवान्के प्रसादतें कृतार्थ होइ सो कहैं हैं, या प्रकार हरिचरणारविंदको नित्य भजन करे ताकों प्रेमलक्षणाभक्ति और वैराग्य और साक्षात् भगवत्स्वरूप ज्ञान तीनों होंइहै तब परमशांतिकों पावै है ॥ ४३ ॥ अब राजा जनक पूछे हैं वैष्णव मनुष्यनकें मध्यमें कैसे होय हैं कौन धर्मके विषें स्थित, कैसो स्वभाव कैसो आचरण कैसों बोलिवो, कैसे चिह्न है जिनसौ भगवानको प्रिय होय है, सो सब मोसों कहो ॥ ४४ ॥ याको उत्तर हरिनामा योगीश्वर तीनि श्लोकनसो देय

ईश्वरे तदधीनेषु बालिशेषु द्विषत्सु च ॥ प्रेममैत्रीकृपोपेक्षा यः करोति स मध्यमः ॥ ४६ ॥ अर्चायामेव हरये पूजां यः श्रद्धयेहते ॥ न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः ॥४७॥ गृहीत्वापीन्द्रियैरर्थान्यो न द्वेष्टि न हृष्यति ॥ विष्णोर्मायामिदं पश्यन्स वै भागवतोत्तमः ॥ ४८ ॥ देहेन्द्रियप्राणमनोधियां यो जन्माप्ययक्षुद्भयतर्षकृच्छ्रैः ॥ संसारधर्मैरविमुह्यमानः स्मृत्या हरेर्भागवतप्रधानः ॥ ४९ ॥ न कामकर्मबीजानां यस्य चेतसि संभवः ॥ वासुदेवैकनिलयः स वै भागवतोत्तमः ॥ ५० ॥

हैं जो अपनपेकों सब प्राणीमात्रमें ब्रह्मरूपकरि स्थिति देखें, ब्रह्मरूप आपविषें प्राणीमात्रकों देखें, सो उत्तम भागवत है ॥ ४५ ॥ ईश्वरके विषें प्रेम करै, भगवानके भक्तनसों मैत्री करै, मूर्खनपै कृपा करे, शत्रुनकी उपेक्षा करै, वह मध्यम वैष्णव है ॥ ४६ ॥ जो भक्त भेदबुद्धिसौं केवल प्रतिमाहीमें श्रद्धा राखे है और जीवनमें तथा भक्तनमें जाकी श्रद्धा नहीं वो प्राकृत भक्त हैं ॥ ४७ ॥ अब आठ श्लोकनकरिकें उत्तम वैष्णवनके लक्षण कहै हैं जो इंद्रियनकरिकें विषयनकों भोग करैं हैं पर काहूसों न द्वेष है न प्रीति है सब वस्तु मात्रको ईश्वरकी मायाकरि जानै हैं, सो भक्तनमें उत्तम हैं ॥ ४८ ॥ देहके संसारी धर्म, जन्म, मरण, इंद्रियनको कष्ट, प्राणनकों भूख, मनकों भय, बुद्धिकों तृष्णा,इन संसारके धर्मनतें जो मोह न पावे, निरंतर हरिको स्मरण करे सो वैष्णव भक्तनमें मुख्य हैं ॥ ४९ ॥ जाके मनमें काम कर्मनकी वासनाहू न उपजे, चित्त एक श्रीकृष्णस्वरूपमें बसे सो

न यस्य जन्मकर्मभ्यां न वर्णाश्रमजातिभिः ॥ सज्जतेऽस्मिन्नहंभावो देहे वै स हरेः प्रियः ॥ ५१ ॥ न यस्य स्वः पर इति वित्तेष्वात्मनि वा भिदा ॥ सर्वभूतसमः शान्तः स वै भागवतोत्तमः ॥ ५२ ॥ त्रिभुवनविभवहेतवेऽप्यकुण्ठस्मृतिरजितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात् ॥ न चलति भगवत्पदारविन्दाल्लवनिमिषार्धमपि यः स वैष्णवाग्र्यः ॥ ५३ ॥ भगवत उरुविक्रमाङ्घ्रिशाखानखमणिचन्द्रिकया निरस्ततापे ॥ हृदि कथमुपसीदतां पुनः स प्रभवति चन्द्र इवोदितेऽर्कतापः ॥५४॥

वैष्णवनमें उत्तम है, इन तीनि श्लोकन करि भक्तनके आचरणको उत्तम कह्यो ॥ ५० ॥ जाकें या देहमें कुल तप वर्ण आश्र म जातिको अभिमान नहीं सो भगवान्‌को अतिप्रिय भक्त है ॥ ५१ ॥ जाकों वित्तमें अर्थात् धनमें और आत्मामें अपनी पराई बुद्धि नहीं सब प्राणिमात्रमें समान दृष्टि होई शांत होई सो वैष्णवनमें उत्तम है ॥५२॥ त्रिलोकीके राज्यके लिये हरिही विषें जिनको चित्त है जो देवतानसौ दुर्लभ भगवानके चरणकमलके भजन विना आधेहू छिन लवमात्रहू नहीं बिताावे सो वैष्णवनमें श्रेष्ठ हैं कारण कि इनके हरिके चरणनतें और सार कछु नहीं ऐसो दृढ ज्ञान है ॥ ५३ ॥ यदि विषयके संगतें कामसो संतापित भये भक्तनहूके मन चंचल होइ तो क्या तापै कहै हैं हरिसेवामें सुख मान्नेवारेको तौ मन नहीं चलायमान होय अनंत पराक्रम भगवान्‌के चरणकी शाखारूप अंगुरियानके नखरूप मणिकी चंद्रिकासो सब कामादि ताप दूर हैवेसो भक्तके हृदयमें ताप नहीं उपजै, जैसें चंद्रमाकें उदय भयेते सूर्य्यको ताप दूरि होय हैं औरहू मुख्य लक्षण कहैं हैं ॥ ५४ ॥

विसृजति हृदयं न यस्य साक्षाद्धरिरवशाभिहि-
तोऽप्यघौघनाशः ॥ प्रणयरशनया धृताङ्घ्रिपद्मः स
भवति भागवतप्रधान उक्तः ॥ ५५ ॥ इति श्रीभा-
गवते महापुराणे एकादशस्कन्धे नारदवसुदेवसंवादे
द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः ।

राजोवाच ॥ परस्य विष्णोरीशस्य मायिनामपि मो-
हिनीम् ॥ मायां वेदितुमिच्छामि भगवन्तो ब्रुवन्तु
नः ॥ १ ॥ नानुतृप्ये जुषन्युष्मद्वचो हरिकथामृ-
तम् ॥ संसारतापनिष्टप्तो मर्त्यस्तत्तापभेषजम् ॥ २ ॥

केवल नाममात्रकें लेतही संपूर्ण पापनको समूहनको नाश करनेवारो साक्षात् भगवान् हरिकों हृदयमेंते न त्यागे सो वैष्णवनमें उत्तम है कारण कि याने प्रेमडोरीसो हरिके चरणकमल हृदयमें बांधि राखे हैं ॥ ५५ ॥

इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायामेकादशस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः॥२॥

माया और मायाको तरण और ब्रह्म कर्म इन चारि प्रश्नको उत्तर चारि ऋषभदेवके पुत्र मुनि तीसरे अध्यायमें कहेंगे ॥ जनक बोले परमात्मा ईश्वर विष्णुकी मायाकूं मैं जान्यो चाहूंहूं, हे भगवत्परायण ! तुम कहो, जो माया बडे मायावीनकोहू मोहैहो ॥ १ ॥ कदाचित् तुम कहो उक्त लक्षणवारो भक्त ह्वैकै कृतार्थ होय तो बहुत परिश्रम करिकें कहां करेंगे, तहां कहै हैं, मरणधर्ममें संसारके तापसौ अत्यंत ताप होयहै ता तापको औषध हरिकथारूप अमृतकूं तुह्मारे वचन-

अन्तरिक्ष उवाच ॥ एभिर्भूतानि भूतात्मा महाभूतै-
र्महाभुज ॥ ससर्जोच्चावचान्याद्यः स्वमात्रात्मप्रसि-
द्धये ॥ ३ ॥ एवं सृष्टानि भूतानि प्रविष्टः पञ्चधातु-
भिः ॥ एकधा दशधात्मानं विभजञ्जुषते गुणान्
॥ ४ ॥ गुणैर्गुणान्स भुञ्जान आत्मप्रद्योतितैः प्रभुः ॥
मन्यमान इदं सृष्टमात्मानमिह सज्जते ॥ ५ ॥ कर्माणि
कर्मभिः कुर्वन्सनिमित्तानि देहभृत् ॥ तत्तत्कर्मफलं
गृह्णन्भ्रमतीह सुखेतरत् ॥ ६ ॥ इत्थं कर्मगतीर्ग-
च्छन्बह्वभद्रवहाः पुमान् ॥ आभूतसम्प्लवात्सर्गप्र-
लयावश्नुतेऽवशः ॥ ७ ॥

नसों पीवते मोको तृप्ति नहीं होयहै ॥ २ ॥ तब अंतरिक्षनामा योगीश्वर बोले हे राजन्! आदिपुरुष भगवान् सब प्राणीमात्रके कारण अपने अंशभूत जीवनके मोक्षके अर्थ पंचमहाभूतनसों शक्तिकरिकैं बुद्धि इंद्रिय मन प्राण शरीर उत्पन्न करे हैं सो शक्ति मायाको रूप है ॥ ३ ॥ या भांति पंचमहाभूतनसूं सृष्टि बनाय सकल प्राणीनके मध्यमें भगवान् अंतर्यामी रूपसों प्रविष्ट ह्वैकरि एक प्रकार मन और दशइंद्रीरूपसों जीवनको न्यारे न्यारे विषयभोग करावैहैं ॥ ४ ॥ तब जीवात्मा अंतर्यामीसों प्रकाशित इंद्रियनसों विषयभोग करते मायारचित शरीरकों आत्मा मानिकै वाही शरीरमें आसक्त होयहै ॥ ५ ॥ यह जीव कर्मेंद्रियनसों वासनासहित कर्म करे है विन कर्मनसूं सुखदुःखरूप फलको भोग करतो संसारमें भ्रमे हैं ॥ ६ ॥ या भांति अनेक क्लेशयुक्त कर्ममार्गमें चलते जीवात्मा परवश होके महा प्रलय पर्यंत जन्म मरणकों प्राप्त होयहै ॥ ७ ॥

धातूपप्लव आसन्ने व्यक्तं द्रव्यगुणात्मकम् ॥ अनादिनिधनः कालो ह्यव्यक्तायापकर्षति ॥ ८ ॥ शतवर्षा ह्यनावृष्टिर्भविष्यत्युल्बणा भुवि ॥ तत्कालोपचितोष्णार्को लोकांस्त्रीन्प्रतपिष्यति ॥ ९ ॥ पातालतलमारभ्य सङ्कर्षणमुखानलः ॥ दहन्नूर्ध्वशिखो विष्वग्वर्धते वायुनेरितः ॥ १० ॥ सांवर्तको मेघगणो वर्षति स्म शतं समाः ॥ धाराभिर्हस्तिहस्ताभिर्लीयते सलिले विराट् ॥ ११ ॥ ततो विराजमुत्सृज्य वैराजः पुरुषो नृप ॥ अव्यक्तं विशते सूक्ष्मं निरिन्धन इवानलः ॥ १२ ॥ वायुना हृतगन्धा भूः सलिलत्वाय कल्पते ॥ सलिलं तद्धृतरसं ज्योतिष्ट्वायोपकल्पते ॥ १३ ॥

अब प्रलय कहैं हैं पंच महाभूतनके नाशकों काल जब निकट आवेहै, तब आदि अंतरहित जो काल है सो लीन करिवेकों या स्थूल सूक्ष्म प्रपंचकों खेचैहै ॥ ८ ॥ अब नाशके कारण कहैं हैं, पहिले पृथ्वीमें सौ बरस ताईं अति दारुण अनावृष्टि होइगी, पीछें वा कालमें बडी उष्णतासो सूर्य्य तीनि लोकनमें तपैगो ॥ ९ ॥ पातालतलतें आरंभ करिकैं जरावत ऊंचेको शिखा कियो अग्नि वायु करि प्रेर्यो चारों दिशानमें बढैगो ॥ १० ॥ पीछें सांवर्तक नाम प्रलय कालको मेघगण सौ बरस ताईं हाथीकी सूंडिके प्रमाण धारानसों वर्षैगो,तब वा जलमें यह ब्रह्मांड लीन होइगो ॥ ११ ॥ हे राजन् ! जैसे अग्नि ईंधन न होइ तब शुद्ध अग्निमें मिलिजाय है ऐसैही ब्रह्माण्डरूप शरीरवारो विराट् पुरुष ब्रह्माण्डरूप अपने शरीरको छोडके सूक्ष्म परब्रह्ममें प्रवेश करजायहै ॥ १२ ॥ पृथ्वीके गुण

हृतरूपं तु तमसा वायौ ज्योतिः प्रलीयते ॥ हृतस्पर्शोऽवकाशेन वायुर्नभसि लीयते ॥ १४ ॥ कालात्मना हृतगुणं नभ आत्मनि लीयते ॥ इन्द्रियाणि मनो बुद्धिः सह वैकारिकैर्नृप ॥ प्रविशन्ति ह्यहंकारं स्वगुणैरहमात्मनि ॥ १५ ॥ एषा माया भगवतः सर्गस्थित्यन्तकारिणी ॥ त्रिवर्णा वर्णितास्माभिर्भूयः किं श्रोतुमिच्छसि ॥ १६ ॥ राजोवाच ॥ अथैतामैश्वरीं मायां दुस्तरामकृतात्मभिः ॥ तरन्त्यञ्जः स्थूलधियो महर्ष इदमुच्यताम् ॥ १७ ॥

गंधको प्रलयकालको पवन हरि लेहै, तब पृथ्वी गुणरहित हो जलमें लीन होयहै, पीछे जलके गुण रसकों वही पवन सोखि लेइहै, तब जल तेजमें लीन होयहै ॥१३॥ प्रलयकालके अंधकारसे रूपरहित हैवेसौ तेज वायुमें लीन होयहै पीछें आकाशसे स्पर्शगुण हर जायवेसो वायु आकाशमें लीन होयहै, पीछें आकाशके शब्द गुणकों कालरूप ईश्वर हरिलेहैं, तब आकाश तामसाहंकारमें लीन होय है ॥१४॥ पीछें इंद्री बुद्धि राजसाहंकारमें लीन होयहै, मन इंद्रियनके देवतान सहित सात्विक अहंकारमें लीन होयहै, हे राजन्! याही भांति तामस राजस सात्विक ये तीनों गुणकों कार्य्य इंद्रियादिकसहित अहंकार महत्तत्त्वमें लीन होय है, वह महत्तत्व प्रकृतिमें लीन होय है॥१५॥ सात्विक राजस तामस तीनों गुणयुक्त उत्पत्ति पालन प्रलय करनहारी यह माया भगवानकी है, मैनें तुमसों याको रूप कह्यो, अब और कहा सुनिवेकी इच्छा है ॥ १६॥ या भांति अतिदयायुक्त मुनिकों देखिकैं या संसारकी माया तरिवेको उपाय जनक पूछे हैं, यह ईश्वरकी माया अजितेन्द्रियनको अति दुस्तर है,तातें देहाभिमानीहू जा प्रकार वाकू सुखसों

प्रबुद्ध उवाच ॥ कर्मण्यारभमाणानां दुःखहत्यै सुखाय च ॥ पश्येत्पाकविपर्यासं मिथुनीचारिणां नृणाम् ॥ १८ ॥ नित्यार्तिदेन वित्तेन दुर्लभेनात्ममृत्युना ॥ गृहापत्याप्तपशुभिः का प्रीतिः साधितैश्चलैः ॥ १९ ॥ एवं लोकं परं विद्यान्नश्वरं कर्मनिर्मितम् ॥ सतुल्यातिशयध्वंसं यथा मण्डलवर्तिनाम् ॥ २० ॥ तस्माद्गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् ॥ शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम् ॥ २१ ॥

तरसकै याकों सुखसों तरैहैं हे महाऋषि ! सो उपाय तुम मोकूं बताओ ॥ १७ ॥ तत्र प्रबुद्ध नाम चौथे योगीश्वर बोले हे राजन् ! भगवान्की भक्ति विना मायाके तरिवेको और उपाय नहीं है, यह जानि साधनासहित भक्तिको वर्णन करते पहलें वैराग्यकारि गुरुनके निकट जाई सो चारि श्लोकनसै कहैं हैं, हे राजन् ! स्त्री पुरुष मिलिकें अपनें सुखकों और दुःख दूरि करिवेको कर्मनको आरंभ करैं हैं तिन कर्मनके फलमें विपरीत देखे कहा सुखके लिये किये तिनमें दुख देखै ॥१८॥ कर्मके साधनसौ धनादिक मिलकैहू सुखको नहीं देय हैं यापै कहै हैं नित्य दुःखदाई तापै दुर्लभ अपनी मृत्युकारक धन गृह पुत्र बधु पशुनिकें पायेते कहां सिद्धि है ये तो सब मिथ्या हैं ॥१९॥ या भांति कर्मनसो उपजे परलोकहूको मिथ्या जाने, जामें अपने समानसौ ईर्षा, अधिककी निंदा, स्वर्गतें गिरिवेको भय, इतनें दुःख स्वर्गहूविषे हैं जैसे थोरी भूमिके राजानको तुल्य देखकै ईर्षा, अधिककी निंदा और चक्रवर्ती राजातें भय इत्यादि दुःख होयहैं ॥ २०॥ तातें अपनो उत्तम कल्याण चाहै तो भक्ति करिकैं गुरूनकी सेवा करे गुरुकैं लक्षण कहे हैं, मुख्य तो वेदको अर्थ अतिश्रेष्ठ जानतहोइ,

तत्र भागवतान् धर्माञ्छिक्षेद्गुर्वात्मदैवतः ॥ अमाययाऽनुवृत्त्या यैस्तुष्येदात्मप्रदो हरिः ॥ २२ ॥ सर्वतो मनसोऽसङ्गमादौ सङ्गं च साधुषु॥ दयां मैत्रीं प्रश्रयं च भूतेष्वद्धा यथोचितम् ॥ २३ ॥ शौचं तपस्तितिक्षां च मौनं स्वाध्यायमार्जवम् ॥ ब्रह्मचर्यमहिंसां च समत्वं द्वन्द्वसंज्ञयोः ॥ २४ ॥

जातें सब संदेह दूरि करिसकें, और परब्रह्म भगवान्के स्वरूपको जानें, जो आप ब्रह्मको न जाने तो औरकों कैसे ज्ञान देंइगो अतिशांतरूप होइ कारण कि ब्रह्मज्ञान ताहीकों होयगो जो शांत होइगो ॥ २१ ॥ भक्तनको आत्माके देनहारे परमात्मा हरि जिन वैष्णव धर्मनकरिकै संतुष्ट होयहैं, विन धर्मनकों गुरुकों आत्मा और इष्ट जानिकें भक्तजन गुरुमें निष्कपट सेवा करिकैं सीखे ॥ २२ ॥ पहिले तो संपूर्ण वस्तुनविषें मनकों चलायमान न करे पीछे सत्संग करे सब प्राणीनविषें दीननपै मन वचनसौ दयायुक्त चित्तमें सबसों मैत्री करे उत्तमनविषे नम्रता सीखे ॥ २३ ॥ बाह्य शौच सीखे (मृत्तिका ले हाथ पाय आदि धोवे), अनंतर शौच सीखे (मंनमें दंभ अहंकार

१ परन्तु मूर्ख चेला न करै क्यों कि मूर्ख चेलनसो गुरुनको दुःखही होताहै । एक बाबाजी अपने चेलाको संग लेकर स्नानको गये तौ जब ये स्नान कर चुके, और किनारेपर आयकर ध्यान करते समय जब अंगन्यास करन्यास करनेलगे, तब वा शिष्यने विचारी कि गुरुजीको कछु ह्वैगयो, सो बोल नहीं सकते तासे हाथनसो इसारा करे हैं, सो झट अरने उपलों याने बटोर चीमटा गरम कर जहां जहां गुरूजीने अंगन्यासमें हाथ लगायो हो तहां तहां याने दाग दियो गुरूजी आंखें मींचे बैठेथे शरीरमें तप्तलोहा लगतेही चौंकपरे, आंखें खोलकै देखै तौ चेला गरम दाग लगारह्यो है जप कोरहे बोले तौ नहीं पर अपने हाथसों माथा ठोक्यो, कि तेरो दोष नहीं प्रारब्धका दोष है चेलाने जानी कि यूं कहैं हैं कि माथेपरहू दाग दे, सो गरम चीमटा माथेपर लगादिया, यासे मूर्ख चेलासेभी दुःख होयहै ॥

सर्वत्रात्मेश्वरान्वीक्षां कैवल्यमनिकेतताम् ॥ विवि-
क्तचीरवसनं सन्तोषो येन केनचित् ॥ २५ ॥ श्रद्धां
भागवते शस्त्रेऽनिन्दामन्यत्र चापि हि ॥ मनोवाक्क-
र्मदण्डं च सत्यं शमदमावपि ॥ २६॥ श्रवणं कीर्त्तनं
ध्यानं हरेरद्भुतकर्मणः ॥ जन्मकर्मगुणानां च तदर्थे-
ऽखिलचेष्टितम् ॥ २७ ॥ इष्टं दत्तं तपो जप्तं वृत्तं
यच्चात्मनः प्रियम् ॥ दारान्सुतान्गृहान्प्राणान्यत्प-
रस्मै निवेदनम् ॥ २८ ॥

न राखे), धर्मको आचरण, क्षमा, यथायोग अध्ययन ब्रह्मचर्य सीखे वृथा वार्त्ता न करे, कुटिल न रहै, द्रोह न करे, सुख दुःखमें समबुद्धि राखे ॥२४॥ सब प्राणीमात्रमें समान चैतन्य आनंदरूप करि ब्रह्मको विचारे, नियंताकरि ईश्वरकों विचारे, एकांतमें रहे, गृहादिकनमें अभिमान न राखे, निर्जन मार्गमें परें वस्त्र अथवा वल्कलको पहरे, जो वस्तु प्राप्त होइ ताहीसों संतोष राखे, औरकी इच्छा न राखे ॥२५॥ जे शास्त्र केवल भगवान्हींकों बतावैहैं, ते भागवत शास्त्र हैं, तिन्हें सुनिवेकी श्रद्धा राखे, औरकी निंदाहू न करें, मन वचन कर्म इन तीनोंनको दंड देय मनको तो प्राणायामकरिकैं रोकै वाचनको दंड झूठे वचन न कहे, कर्मको दंड चेष्टा न करे सत्य वचन सीखे, अंतःकरण और सब इंद्रियनको निग्रह करे ॥ २६ ॥ अद्भुत कर्मनके कर्त्ता हरिके जन्म कर्म गुणको श्रवण कीर्त्तन ध्यान करे, और कर्म जो करे सो सब हरिके निमित्त करे ॥ २७ ॥ यज्ञ दान तप सदाचार और आपुकों जो प्रियवस्तु होइ सो सब गंध पुष्पादिक और स्त्रीपुत्र गृह प्राण ये सब परमपुरुष भगवान्‌के निवेदन करे ये धर्म सब गुरूनके पासतें सीखें ॥ २८॥

एवं कृष्णात्मनाथेषु मनुष्येषु च सौहृदम् ॥ परिचर्यां
चोभयत्र महत्सु नृषु साधुषु ॥ २९ ॥ परस्परानुक-
थनं पावनं भगवद्यशः ॥ मिथो रतिर्मिथस्तुष्टिर्निवृ-
त्तिर्मिथ आत्मनः ॥ ३० ॥ स्मरन्तः स्मारयन्तश्च
मिथोऽघौघहरं हरिम् ॥ भक्त्या संजातया भक्त्या
बिभ्रत्युत्पुलकां तनुम् ॥ ३१ ॥ क्वचिद्रुदन्त्यच्युत-
चिन्तया क्वचिद्धसन्ति नन्दन्ति वदन्त्यलौकिकाः ॥
गायन्ति नृत्यन्त्यनुशीलयन्त्यजं भवन्ति तूष्णीं
परमेत्य निर्वृताः ॥ ३२ ॥ इति भागवतान्धर्मा-
ञ्छिक्षन् भक्त्या तदुत्थया ॥ नारायणपरो माया
मञ्जस्तरति दुस्तराम् ॥ ३३ ॥

या प्रकार श्रीकृष्णको आत्मा माननेवारे मनुष्यनसो मैत्री और स्थावर जंगम प्राणीनमें सेवा विशेषकरकै मनुष्यनकी और उनमेंहू महात्मानकी सेवा करै साधुनकी वासे करै ॥ २९ ॥ तिन साधुनसों संगकरिकैं भगवानके पवित्र यशको परस्पर कहिवो सीखे फेरि ईर्षा छोडि परस्पर प्रीति, सबते संतोष परस्पर सुख समस्त दुःखनकी निवृत्ति सीखे ॥ ३० ॥ संपूर्ण पापनके समूहके नाशकर्त्ता हरि भगवान्‌को आपु निरंतर स्मरण करे, औरनको स्मरण करावे, तब स्मरण कीर्तन रूप भक्तिके करते प्रेमलक्षणा भक्तिकरिकैं रोमांचयुक्त शरीर है जाय है ॥ ३१ ॥ ऐसें भगवान्‌कों चिंतवन करत कबहूं रोवे, कबहूं हँसे, कबहूं आनंदको प्राप्त होइ, कबहूं बाह्यलोकनकी भांति वचन कहै कबहूं नाचे कबहूं गावे कबहूं भगवानके स्वरूपकी लीला करे, कबहूं परमसुखमें मग्न होइ, कभी चुप्प रहे ॥ ३२ ॥ ये वैष्णवधर्म सीखि करि प्राप्त भई भक्तिसों

राजोवाच ॥ नारायणाभिधानस्य ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ निष्ठामर्हथ नो वक्तुं यूयं हि ब्रह्मवादिनः ॥ ३४॥ पिप्पलायन उवाच ॥ स्थित्युद्भवप्रलयहेतुरहेतुरस्य यत्स्वप्नजागरसुषुप्तिषु सद्बहिश्च ॥ देहेन्द्रियासुहृदयानि चरन्ति येन संजीवितानि तदवेहि परं नरेन्द्र ॥ ३५ ॥ नैतन्मनो विशति वागुत चक्षुरात्मा प्राणेन्द्रियाणि च यथाऽनलमर्चिषः स्वाः ॥ शब्दोऽपि बोधकनिषेधतयाऽऽत्ममूलमर्थोक्तमाह यदृते न निषेधसिद्धिः ॥ ३६ ॥

नारायणपरायण ह्वैकें सुखही करि दुस्तर मायाकौं तरे ॥३३॥ यह सुनिकै राजा जनक पूछे है हे महाराज ! तुमनें कही कि नारायणपरायण होइ सो मायाकों तरे सो नारायणके तौ तीनि नाम सुने हैं एक तो नारायण, एक ब्रह्म, एक परमात्मा, तहां इन तीन नामनकरि निर्विशेष वस्तु कहिये अथवा इनमें कछु भेद है सो विशेषकरिकैं मोसूं कहो तुम ब्रह्मकों अच्छीतरे जानौ हो ॥ ३४ ॥ तब पांच वे ऋषी पिप्पलायन उत्तर देय हैं हे राजन् जनक ! जो या विश्वके उत्पत्ति पालन प्रलयको कारण हैं और आपु कारणरहित हैं सो नारायण हैं वही परमतत्व है, जो स्वरूप स्वप्नमें जाग्रतमें सुषुप्तिमें साक्षीरूपसो तौ वर्तमान है और वास्तवसौ देखौ तो इन अवस्थानसो रहित है सो ब्रह्म है,वही परमतत्व है समाधिमें जाकों मुनीश्वर देखे हैं, ताहूकों ब्रह्म कहैं हैं वही परमतत्व है, और जासो देह इंद्रिय मन प्राण ये सब चैतन्य भये ही कार्यकों समर्थ होय है सो परमात्मा है वही भगवान् स्वरूप है, या भांति तीनों नामके भेदकरिकैं एकही तत्व जानियें ॥ ३५ ॥ जो तुम कहो कि यासौ ब्रह्मकों विषयतत्वता

सत्त्वं रजस्तम इति त्रिवृदेकमादौ सूत्रं महानहमिति प्रवदन्ति जीवम् ॥ ज्ञानक्रियार्थफलरूपतयोरुशक्ति ब्रह्मैव भाति सदसच्च तयोः परं यत् ॥ ३७ ॥

प्राप्त भई ताको निषेध कहैं हैं जो ब्रह्मप्रति मन नहीं प्रवेश करै है या ब्रह्मकों वाणी नेत्र बुद्धि प्राण और सब इंद्रिय स्पर्श नहीं करिसके हैं जैसें छोटी चिनगारी महाभूत अग्निकों नहीं प्रकाश कर सकै है न जराय सकै है तैसें मन आदि जड इंद्रिय सृष्टिनके प्रकाशक ब्रह्मकों जड इंद्रिय क्यों करि प्रकाश करसकैगी तहां पूर्वपक्ष करे है, अहो वेद तो ब्रह्मकों बतामें हैं तहां कहे हैं कि वेदहू प्रगट नहीं कहै हैं कारण यह है कि वेद स्वयंही कहै है कि वाणी मन आदिसों जे पदार्थ जाने जाय हैं जो इनके बोध न करनेवारे हैं वे ब्रह्मको नहीं प्राप्त है सके है यासों ये न जानिये कि वेद ब्रह्मको नहीं कहते किन्तु वेद कहते हैं कि स्थूलहू ब्रह्म नहीं हैं अणुहू ब्रह्म नहीं जो वाणीसें कहो जाय सोहू ब्रह्म नहीं इत्यादि या निषेधकी जो अवधि हैं वही ब्रह्म है विना अवधिके निषेध नहीं है सके है ॥ ३६ ॥ फेरि कहैं हैं जो सबको प्रमाण वेदहूकों गम्य नहीं तो ब्रह्मही न होइगो, ताको उत्तर देइ हैं ब्रह्म नहीं ये नहीं कह्यौ जाय जो कुछ स्थूल सूक्ष्म देखो जाय है सो सब ब्रह्मही भासे है याते सब विश्वके कारण भगवान्ही है (तहां पूछेहै) एक ब्रह्म बहुविधि विश्वको कारण क्यों है (तहां कहे हैं) ब्रह्मकी शक्ति अनंत सामर्थ्य करिकैं अनंतरूप हैं(सो कहैं हैं) पहिले एकरूप व्है पीछें सत्व रज तम मायाके रूप भये, पीछे क्रियाशक्ति करि प्राणरूप भये फेरि ज्ञानशक्ति करि महत्तत्त्व भये पीछें अहंकार रूप भये जासों जीव बंध्यो हैं, ता पीछें इंद्रिय रूप भये, इंद्रिनके देवतारूप भये, कर्मनके फल सुख दुःख रूप भये । या भांति सब रूप ब्रह्मही हैं, सर्वरूप करि आपतें प्रकाशमान ब्रह्मकी स्थाप-

नात्मा जजान न मरिष्यति नैधतेऽसौ न क्षीयते
सवनविद्व्यभिचारिणां हि ॥ सर्वत्र शश्वदनपाय्युप-
लब्धिमात्रं प्राणो यथेन्द्रियबलेन विकल्पितं सत्
॥ ३८ ॥ अण्डेषु पेशिषु तरुष्वविनिश्चितेषु प्राणो हि
जीवमुपधावति तत्र तत्र ॥ सन्ने यदिन्द्रियगणेऽहमि
च प्रसुप्ते कूटस्थ आशयमृते तदनुस्मृतिर्नः॥३९ ॥

नाविषें प्रमाणकी अपेक्षा नहीं ॥३७॥ तहां पूर्वपक्ष करें है, संपूर्णरूप आपुही है तो यह विश्व तो सब मरेहै फेरि उपजे है यातें ब्रह्महूको जन्म मरण होयहै (तहां कहें हैं) यह आत्मा न जन्मे हैं, न मरे है, न बढे है, न क्षीण होय है, जातें आगमापाई बाल युवादिक देहनकी अवस्थाको साक्षी है साक्षीकों ये अवस्था नहीं लगे हैं केवल ज्ञानरूप हैं तहां कदाचित् कोऊ कहैं कि ज्ञान तो एक क्षणमें उपजै है, एकक्षण रहै है, एक क्षणमें नाश पावे है, (तहां कहें हैं) यह सदा रहै है जो कोऊ करै नीलज्ञान उपज्यो पीतज्ञान गयो, ऐसें ज्ञानहूकी उत्पत्ति नाश सुनियें है, तहां कहें है नील पीत इंद्रियनकों वृत्ति उपजे है, वृत्तिनहीको नाश होय है, ज्ञान तो एकरूप है यह प्राणके दृष्टांत कहें हैं ॥ ३८ ॥ इन्द्रियादि केवल हरिहीको दिखावेंहैं, जैसें पक्षी पशु स्वेदज वृक्षादिकनमें सर्वत्र जहां जहां जीव जाइहै तहां तहां वाके संग प्राणहू जाइ है, पर प्राण निर्विकार हैं जैसे आत्माहू निर्विकार रहै हैं (तहां पूछेहै) मनुष्यादिक देहनमें आत्मा क्यों सब विकारसो दीखै है (तहां कहें है) जाग्रतमें इंद्रियगणके दोषते स्वप्नमें अहंकारते सब विकारसो दीखै है सुषुप्तिमें तो इंद्रियगण और अहंकारके लयते निर्विकार आत्मा है, जाते विकारके हेतु लिंग शरीरकी उपाधिको अभाव है (तहां पूछे है) सब नष्ट भयेसो आत्मा रहै है यह कैसे जाने

यर्ह्यङ्जनाभचरणैषणयोरुभक्त्या चेतोमलानि विधमेद्गुणकर्मजानि ॥ तस्मिन्विशुद्ध उपलभ्यत आत्मतत्त्वं साक्षाद्यथाऽमलदृशोः सवितृप्रकाशः ॥ ४० ॥
राजोवाच ॥ कर्मयोगं वदत नः पुरुषो येन संस्कृतः॥
विधूयेहाशु कर्माणि नैष्कर्म्यं विन्दते परम् ॥ ४१ ॥
एवं प्रश्नमृषीन्पूर्वमपृच्छं पितुरन्तिके ॥ नाब्रुवन्ब्रह्मणः पुत्रास्तत्र कारणमुच्यताम् ॥ ४२ ॥

(सो कहै है) जब जागे है तब जो सुषुप्तिमें आत्माको सुख अनुभव भयो है ताको स्मरण होय है, आजु मैं बहुत सुखसों सोयो, यह ज्ञान अनुभवके स्मरण विना न होइ, तातें सुषुप्तिमें आत्माको अनुभव निर्विकार होयहै, पर विषयको संबंध नहीं यातें वह अनुभव प्रकट नहीं होयहै ॥ ३९ ॥ फिरि संदेहतें पूंछैं हैं याकौं सुस्वप्नमें निर्विकार अनुभव होइ तो संसार फेरि क्यों होयहै जो कहो कि याकी अविद्या नहीं गई, ताकी वासनातें संसार होयहै तो अविद्या क्यों जाइ (तहां कहै है) जब गृह पुत्र धनादिकनकी वासना छोडिकें केवल भगवान्के चरणारविंदनकी इच्छा करे तातें भक्ति बढे है ता भक्तिकरि चित्तके गुण कर्मसों उपजे सब पाप दूरि होयहैं तब चित्त शुद्ध ह्वैकै प्रकट आत्मतत्व पैवे जैसें निर्मल दृष्टिके भये सूर्य्यमंडलको प्रकाश दीखे हैं ॥ ४० ॥ राजा जनक बोले भक्ति तौ कर्मयोगके आधीन हैं, तातें प्रथम मोसों कर्मयोग कहो, जा कर्मके कियेतें शुद्ध होइ फेरि कर्मकों वेग दूरि करिकै पुरुष निष्कर्म श्रेष्ठ ज्ञान पावे, जातें सब कर्म निवृत्ति होइ सो कर्मयोग कहो ॥४१ ॥ हे महाराज ! यही प्रश्न मैंने पिताके आगें सनकादिक ऋषि जब आये हे तब पूछ्यो हो, उननें मोसों न कह्यो याको कहा कारण सो मोसूं कहो ॥ ४२ ॥

आविर्होत्र उवाच ॥ कर्माकर्मविकर्मेति वेदवादो न लौकिकः ॥ वेदस्य चेश्वरात्मत्वात्तत्र मुह्यन्ति सूरयः ॥ ४३ ॥ परोक्षवादो वेदोऽयं बालानामनुशासनम् ॥ कर्ममोक्षाय कर्माणि विधत्ते ह्यगदं यथा ॥ ४४ ॥ नाचरेद्यस्तु वेदोक्तं स्वयमज्ञोऽजितेन्द्रियः ॥ विकर्मणा ह्यधर्मेण मृत्योर्मृत्युमुपैति सः ॥ ४५

तब आविर्होत्र बोले हे राजन् ! वेदमें जाके करवेकी आज्ञा है वह कर्म है जाको निषेध है वह अकर्म है और जाके करवेकी आज्ञा है वह न करें तो विकर्म कह्यौ जाय है ये तीनों भेद वेदहीको गम्य है, याको निर्णय मनुष्यनको अशक्य है, जातें वेद साक्षात् ईश्वररूप है, पुरुषके वचनमें वक्ताको अर्थ जाननो अति कठिन है, तहां पंडितहू मोह पावे है, तब तुम बालक हे याते तुमसों न कह्यो॥४३॥ वेदको तात्पर्य्य काहेते न जान्यो जाय सो कहे है, यह वेद सब परोक्षवाद है, अर्थ और भांति होइ ताके दूरावनेकों और भांति कहै सो परोक्षवाद कहिये। तैसे वेदमें कर्म छुटामनकों कर्म कहै है, मूर्ख वाही कर्मकों कर्म जानें हैं, तहां पूछें है कर्मको तो स्वर्गादिक फल सुनो जाय है कर्मकों त्याग फल कैसे जानो (तहां कहै हैं) यह जो कर्म करण कहे है, सो मूर्खकी शिक्षाको है, नहीं तो धर्ममें काहूकी प्रवृत्ति न होइ जैसे बालककों औषधी खवानी चाहिये, तब लड्डू दिखाईये, और दीजिये ता लोभतें औषधी पीवे. तब औषधिको यह फल नहीं जो लडुआ खाय, औषधिको तो आरोग्य फल है, तैसें जीव सब विषयी हैं, लोभी है, तिनको लोभ स्वर्गादिकको दिखाय कर्ममें प्रवृत्त करें है पीछें याहूते निवृत्तिको फल उत्तम है, या ज्ञानकारि उन कर्मनको छुडावें है यह वेदको तात्पर्य है ॥ ४४ ॥ जो कर्म त्यागही मुख्य है तो पहिलेंई

वेदोक्तमेव कुर्वाणो निःसङ्गोऽर्पितमीश्वरे ॥ नैष्कर्म्यां लभते सिद्धिं रोचनार्था फलश्रुतिः ॥ ४६ ॥ य आशु हृदयग्रन्थिं निर्जिहीर्षुः परात्मनः ॥ विधिनोपचरेद्देवं तन्त्रोक्तेन च केशवम् ॥ ४७ ॥ लब्धानुग्रह आचार्यात्तेन संदर्शितागमः ॥ महापुरुषमभ्यर्चेन्मूर्त्याभिमतयात्मनः॥४८॥ शुचिः संमुखमासीनः प्राणसंयमनादिभिः ॥ पिण्डं विशोध्य संन्यासकृतरक्षोऽर्चयद्धरिम् ॥ ४९ ॥

कर्म त्याग कीजे (तहां कहे है) कि आपु अज्ञ होइ अजितेंद्रिय होइ जो वेदोक्त कर्म न करे तो कर्मके विना करे अधर्मसौ मरके फेरि मृत्युहीकों पावे सर्वदा कालहीकें मुखमें रहें ॥ ४५ ॥ तातें कर्म वेदोक्तही करे, निषिद्ध कर्म न करे, फेरि कर्मके फलकी इच्छा न राखे, जो कछु करे सो सब ईश्वरविषे समर्पण करे तब मोक्षरूप सिद्धि पावे (तहां पूर्वपक्ष कहे हैं) अहो वेदविषें फल सुनें जाय हैं जैसे औषधि पिवाइवेको बालकको लडुआ देनों ताते कर्म कियेते फल अवश्य होइगो (तहां कहे है) यह मति कहो कर्मनमें प्रीति उपजाइवेको फल सुनाइवो है जैसे औषधि देवेके समय बालकको मीठी चीज दिखावे हैं, अब वैदिककर्म कहिके आगमकी विधि कहे हैं ॥ ४६ ॥ जो कोई निर्विकार जीवकी अहंकारकी गांठि छुडायो चाहें सो आगम और वेदोक्तके प्रकार करिकै सबकी पूजा करे ॥४७॥ सो पूजाप्रकार कहें है जब याको ईश्वर अनुग्रह करे तब सद्गुरु मिले है वा गुरूनते पूजाकी विधि जाने तब आपुको जैसी मूर्ति रुचे तैसेही मूर्ति करिके भगवानको पूजन करे ॥ ४८ ॥ (सो प्रकार कहे है) पहिले तो आपु स्नानादिक करिकै पवित्र होइ, वा मूर्तिके सन्मुख

अर्चादौ हृदये चापि यथालब्धोपचारकैः ॥ द्रव्य-
क्षित्यात्मलिङ्गानि निष्पाद्य प्रोक्ष्य चासनम् ॥५०॥
पाद्यादीनुपकल्प्याथ सन्निधाप्य समाहितः ॥ हृदा-
दिभिः कृतन्यासो मूलमन्त्रेण चार्चयेत् ॥५१॥
साङ्गोपाङ्गां सपार्षदां तां तां मूर्तिं स्वमन्त्रतः ॥
पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैः स्नानवासोविभूषणैः ॥ ५२ ॥
गन्धमाल्याक्षतस्रग्भिर्धूपदीपोपहारकैः ॥ साङ्गं सं-
पूज्य विधिवत्स्तवैः स्तुत्वा नमेद्धरिम् ॥ ५३ ॥ आ-
त्मानं तन्मयं ध्यायन्मूर्तिं संपूजयेद्धरेः ॥ शेषामा-
धाय शिरसा स्वधाम्न्युद्वास्य सत्कृतम् ॥५४॥

बैठ प्राणायाम और भूतशुद्धि करि देहकी शुद्धि करे, पीछें उत्तम न्यासन करि अपनीरक्षा करिकें हरिकी पूजा करे ॥ ४९ ॥ पुष्पादिक द्रव्यको जंतु आदि शोधन करि भूमिको संमार्जन करि मनको साव-धान करि मूर्तिकों स्नानादिक कराय आसनकों प्रोक्षण करि प्रतिमा-दिक विषें अथवा हृदय मध्य यथाप्राप्त उपचारनसों पूजा करे॥५०॥ पाद्य अर्घ्य सब विधि किये पीछें पहिले अपने हृदयमें पूजित हरि भगवानकों संनिधापन मुद्राकरि दृढ धरि सावधान होइ ध्यान करे, पीछें हृदय शिर शिखा कवच नेत्र अस्त्रमंत्र और मूलमंत्र करि पूजे ॥ ५१ ॥ पीछें अंग हृदयादिक उपांग सुदर्शन आदि पार्षद, परिवार, देवतासहित ता मूर्तिको पाद्य अर्घ आचमन स्नान वस्त्र भूषण उप-चारनकरि ॥ ५२ ॥ गंध पुष्प अक्षत माला धूप दीप नैवेद्यन करि पूजे, तब स्तुति करि स्तोत्रनसों पीछें हरिकों नमस्कार करे,अक्षतसों वा मूर्तिविषें तिलक करिवेमें पूजे और समय न पूजें,अक्षतसों हरिकी पूजा और केतकीसों महादेवकी पूजा निषिद्ध है ॥५३॥ आपकों वा

एवमग्न्यर्कतोयादावतिथौ हृदये च यः॥ यजतीश्वर-
मात्मानमचिरान्मुच्यते च सः॥५५॥ इति श्रीमद्भा-
गवते महापुराणे एकादशस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः॥३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः।

राजोवाच॥ यानि यानीह कर्माणि यैर्यैः स्वच्छन्द-
जन्मभिः॥ चक्रे करोति कर्ता वा हरिस्तानि ब्रुवन्तु
नः॥ १॥ द्रुमिल उवाच॥ यो वा अनन्तस्य गुणान-
नन्ताननुक्रमिष्यन्स तु बालबुद्धिः॥ रजांसि भूमे-
र्गणयेत्कथञ्चित्कालेन नैवाखिलशक्तिधाम्नः॥ २॥

मूर्तिरूप ध्यान करते हरिकी मूर्तिको पूजे पीछे वाको निर्माल्य माथे धरि देवताको स्वरूप हृदयमें धरिकैं पूजी मूर्तिको विसर्जन करि अपनें स्थानराखे॥ ५४॥ या भांति अग्नि सूर्य्य जल आदि विषें अतिथिमें हृदयमें आत्मरूप ईश्वरको जो पूजे, सो थोरे कालमें मुक्त होइ यह आगमकी विधि कही॥ ५५॥
इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायामेकादशस्कंधे तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

चौथे अध्यायमें अवतारकी चेष्टाके प्रश्नको उत्तर जयंतीनंदन द्रुमिलनाम सातयों योगीश्वर कहत भये सो वर्णन करे हैं॥१॥राजा जनक बोले तुमने पहिले कही कि हरिकी मूर्ति जैसी मनमाने तैसी मूर्तिकूं पूजे और स्तुति करे, सो हमकूं न मूर्तिको ज्ञान हैं, न गुण-कर्मको ज्ञान हैं, जो स्तुति करें ताते तुम तिनके अवतार और गुण कर्म कहो, अपनी इच्छा करिकैं हरिने जो जन्म लिये हैं जो कर्म किये हैं अब करें है, आगें करेंगे, ते सब कहो॥१॥ तब द्रुमिल योगी-

भूतैर्यदा पञ्चभिरात्मसृष्टैः पुरं विराजं विरचय्य तस्मिन् ॥ स्वांशेन विष्टः पुरुषाभिधानमवाप नारायण आदिदेवः ॥ ३॥ यत्काय एष भुवनत्रयसन्निवेशो यस्येन्द्रियैस्तनुभृतामुभयेन्द्रियाणि ॥ ज्ञानं स्वतः श्वसनतो बलमोज ईहा सत्वादिभिः स्थितिलयोद्भव आदिकर्ता ॥ ४ ॥ आदावभूच्छतधृती रजसाऽस्य सर्गे विष्णुः स्थितौ क्रतुपतिर्द्विजधर्मसेतुः ॥ रुद्रोऽप्ययाय तमसा पुरुषः स आद्य इत्युद्भवस्थितिलयाः सततं प्रजासु ॥ ५ ॥

श्वर बोले अनंतरूप भगवान्के अनंत गुणनकों गिन्यो चाहै सो अज्ञानी हैं, पृथ्वीकें परमाणुनको बहुत काल करिकैं कोई एक बुद्धिवंत क्यों हूं करि गिनि सकैं पर अनंत शक्तिको आश्रय भगवान्के गुणनकों कदाचित् नहीं गिनिसके ॥ २ ॥ तोऊ संक्षेपतें कितनेक गुण कहूंगो पहिलें पुरुषावतार कहै हैं, जब आपु हरि पंचमहाभूत उत्पन्न कर ब्रह्मांडरूप नगर उपजाय तामें लीलाकरि प्रविष्ट भये तातें आदिदेव नारायणपुरुषनामकों पावत भये ॥ ३ ॥ अब याके गुण कर्म कहै हैं, यह तीनि लोककी स्थापना जा पुरुषको देह है; और जाकी इन्द्रियनते देहधारीनकी सब इंद्री होय है;जाके स्वरूपतें भूत सत्वगुणतें ज्ञान होय हैं; प्राणतें देहशक्ति और इंद्रियशक्ति और चेष्टा ये सब होय हैं अकर्त्ता हैं या करि सूचन कियो विश्वको कर्त्ताहू है ॥ ४ ॥ प्रथम या विश्वके उपजायवेकों रजोगुण करि ब्रह्मा भयो, सतोगुण करि यज्ञके फलदाता ब्राह्मण और धर्मके रक्षक विष्णु पालक भये, तमोगुण करि संहारको रुद्र भये, या भांति प्रजानविषे जाते निरंतर जन्म पालन नाश होय

धर्मस्य दक्षदुहितर्यजनिष्ट मूर्त्यां नारायणो नरऋ-
षिप्रवरः प्रशान्तः ॥ नैष्कर्म्यलक्षणमुवाच चचार
कर्म योऽद्यापि चास्त ऋषिवर्यनिषेविताङ्घ्रिः ॥ ६ ॥
इन्द्रो विशङ्क्य मम धाम जिघृक्षतीति कामं न्ययुङ्क्त
सगणं स बदर्युपाख्यम् ॥ गत्वाप्सरोगणवसन्तसु-
मन्दवातैः स्त्रीप्रेक्षणेषुभिरविध्यदतन्महिज्ञः ॥ ७ ॥
विज्ञाय शक्रकृतमक्रममादिदेवः प्राह प्रहस्य गत-
विस्मय एजमानान् ॥ मा भैष्ट भो मदनमारुतदेवव-
ध्वो गृह्णीत नो बलिमशून्यमिमं कुरुध्वम् ॥८॥

हैं सो आदिपुरुष हैं ॥ ५ ॥ अब पुरुषावतार करि नरनारायणको अवतार कहै हैं, तेई आदिदेव दक्षकी बेटी मूर्ति नाम धर्मकी स्त्री विषे ऋषिनमें श्रेष्ठ अति शांत नारायणरूप भये, जाते कर्म नष्ट न होय हैं, ऐसो निष्कर्म ज्ञान बतावत भये, और आपहू वैसोई कर्म करत भये श्रेष्ठ ऋषिनकरि सेवितचरण नरनारायण आजताई बद्रिकाश्रममें विराजे हैं ॥६॥ भगवान्को अवतारको बतावनहारो परम शांतिको दिखावत एक इतिहास कहे हैं एक समय नरनारायणको परम शांत तपस्या करते देखि इंद्रने जान्यो मेरो स्थान तप करिकैं लियो चाहे है, तब तपस्यामें विघ्न करणको परिवारसहित कामको पठवावत भयो, तब अप्सरानके गण वसंतऋतु शीतल मंद सुगंध पवनसहित तहां जाइकरिकैं स्त्रीनके नेत्र कटाक्षरूप बाणन करि मारतभयो पर उनकी महिमाको न जान्यो ॥ ७ ॥ तब गर्वरहित नरनारायण इंद्रको कियो अपराध जानि शापके भयकरिकैं कांपत कामादिक देवतानसों हँसि करि बोलत भये, हे कामदेव ! हे देवांगनाओ ! भय मति करो, हमारो आतिथ्य लेउ, हमारे आश्रमको

इत्थं ब्रुवत्यभयदे नरदेव देवाः सव्रीडनम्रशिरसः
सघृणं तमूचुः ॥ नैतद्विभो त्वयि परेऽविकृते विचित्रं
स्वाराममधीरनिकरानतपादपद्मे ॥ ९ ॥ त्वां सेवतां सुर-
कृता बहवोऽन्तरायाः स्वौको विलङ्घ्य परमं व्रजतां
पदं ते ॥ नान्यस्य बर्हिषि बलीन्ददतः स्वभागा-
न्धत्ते पदं त्वमविता यदि विघ्नमूर्ध्नि ॥ १० ॥ क्षुत्तृट्-
त्रिकालगुणमारुतजैह्व्यशैश्न्यानस्मानपारजलधी-
नतितीर्य केचित् ॥ क्रोधस्य यान्ति विफलस्य वशं
पदे गोर्मज्जन्ति दुश्चरतपश्च वृथोत्सृजन्ति ॥ ११ ॥

सुवास करो ॥ ८ ॥ हे राजन् ! जनक ! अभयके दाता श्रीहरिकों या भांति कहते लज्जासहित और नम्रशिर होयके कामादिक देवता दयासंयुक्त श्रीनारायणसों बोलत भये हे प्रभो ! तुमकों यह आश्चर्य नहीं तुम मायाते परे हो, निर्विकार हो, आत्माराम धीर मुनिनके समूह तुह्मारे चरणकमलको नमस्कार करैं हैं ॥ ९ ॥ हमारोहू अपराधको आचरण कछु अचरज नहीं, हमारो ऐसोई स्वभाव है (यह कहैं हैं) स्वर्गकों उल्लंघनकरि तुम्हारे परमपद वैकुंठको जे तुम्हारे सेवक जाइहैं तिनको इंद्रादिक देवता बहुत विघ्न करैं हैं, और जो यज्ञमें देवतानके भाग बलिनकों देइहैं ताको विघ्न नहीं करैं हैं, परं जाके तुम रक्षक हो सो तुम्हारो भक्त निश्चय करि विघ्ननके माथेपर पाय देइहै ॥ १० ॥ अभक्तनकों काम क्रोध सब वश करैं हैं उनमें जो हमारे वश होय भोगहू करैं हैं, जे क्रोधके वश हैं ते अतिमूर्ख है (यह कहैं है) क्षुधा तृषा शीत उष्ण वर्षा वायु और जिह्वाके भोग गुह्य इंद्रियनके भोगरूपी अपार समुद्रकों कोइएक अभाग्यवंत तपस्यासों उतरिकें निष्फल क्रोधके वश हैके गाइके खुरमें बूडे है, अतिकठिन

इति प्रगृणतां तेषां स्त्रियोऽत्यद्भुतदर्शनाः ॥ दर्शयामास शुश्रूषां स्वर्चिताः कुर्वतीर्विभुः ॥ १२॥ ते देवानुचरा दृष्ट्वा स्त्रियः श्रीरिव रूपिणीः ॥ गन्धेन मुमुहुस्तासां रूपौदार्यहतश्रियः ॥ १३ ॥ तानाह देवदेवेशः प्रणतान्प्रहसन्निव ॥ आसामेकतमां वृङ्ध्वं सवर्णां स्वर्गभूषणाम् ॥ १४॥ ओमित्यादेशमादाय नत्वा तं सुरबन्दिनः ॥ उर्वशीमप्सरःश्रेष्ठां पुरस्कृत्य दिवं ययुः ॥ १५॥ इन्द्रायानम्य सदसि शृण्वतां त्रिदिवौकसाम् ॥ ऊचुर्नारायणबलं शक्रस्तत्रास विस्मितः ॥ १६॥

तपस्याकों वृथा छोडें है न तो मोक्षके अर्थ न भोगके अर्थ है ॥ ११॥ जा भांति कामादिकनकी विनाति सुनि प्रभु अपने योगबलसों उत्पन्न अद्भुतरूपधारी सेवाकों करती आभूषण सहित स्त्री कामादिकनकों दिखावतभये ॥ १२ ॥ ते देवतानके सेवक मूर्तिवंत लक्ष्मीकी समान विन स्त्रीनको देखि तिनके गंधसौं मोहित हो विनके रूप गुण उदारतासौं इनकी शोभा दर्प सब जात भयो ॥ १३ ॥ तब देवदेवनहूंके प्रभु भगवान् हास्य कर नम्र भये कामादिक देवतानसों बोले इन स्त्रीनके मध्य काहू एककों तुम वरो, तब देवताननें कही हम तुच्छ हैं, कहां ऐसी स्त्री, कहां हम, तब नारायण बोले तुम्हारे समान जो कोऊ होइ ताइ लेउ तहां कामादिकनने फेरि कही हे महाराज! इनमें हमारे समान एकहू नहीं है, तब भगवाननें कही कि एक तुम लेउ तुम्हारे स्वर्गकों तो भूषण होइगी ॥ १४ ॥ तब कामादिक आज्ञाको लेकरि प्रभुको नमस्कार करि अप्सरानमें श्रेष्ठ उर्वसीकों आगे करि स्वर्गको जातभये ॥ १५॥ स्वर्गमें जाई इंद्रको प्रणाम करि सभामें सब देवतानके सुनत नारायणको बल कहत भये, तब इंद्र

हंसस्वरूप्यवदच्युत आत्मयोगं दत्तः कुमार ऋष-
भो भगवान्पिता नः ॥ विष्णुः शिवाय जगतां कल-
यावतीर्णस्तेनाहृता मधुभिदा श्रुतयो हयास्ये ॥ १७॥
गुप्तोऽप्यये मनुरिलौषधयश्च मात्स्ये क्रौडे हतो दि-
तिज उद्धरताम्भसः क्ष्माम् ॥ कौर्मे धृतोऽद्रिरमृतो-
न्मथने स्वपृष्ठे ग्राहात्प्रपन्नमिभराजममुञ्चदार्तम्
॥ १८॥ संस्तुन्वतोऽब्धिपतिताञ्छ्रमणानृषींश्च शक्रं
च वृत्रवधतस्तमसि प्रविष्टम् ॥ देवस्त्रियोऽसुरगृहे पि-
हिता अनाथा जघ्नेऽसुरेन्द्रमभयाय सतां नृसिंहे॥ १९॥

अति अचरज पावतभये, और भयको प्राप्तभयो ॥१६॥ अब औरहू अवतार और तिनको चरित्र कहैं हैं, तेई प्रभु हंसरूप अवतार ले आत्मयोग सब कहत भये फेरि एक दत्तात्रेय एक सनकादिक, एक भगवान् ऋषभ देव हमारे पिता ये सब विष्णुरूपही अपनें अंशकरि जगत्के कल्याणको प्रकट हैं, तेई विष्णु एक समय हयग्रीव अवतार ले मधुदैत्यकों मारिकें वेद ले आये ॥ १७ ॥ एक समय प्रलय समुद्रमें मत्स्यरूप धरि मनुकी और पृथ्वीकी औषधिनकी रक्षा करी वाराहावतार ले हिरण्याक्षकों मारि जलते पृथिवी उद्धारी कूर्मावतार ले अमृत मथिवेकों अपनी पीठपर मंदराचल राख्यो दुःखित व्हैकें शरण आये गजेंद्रको ग्राहते छुडावतभये ॥ १८ ॥ एक समय वालखिल्य ऋषि कश्यपजूके लियें काष्ठ लेन गयेहे, वे गायके खुरमें पानी भरयोहो तामें बूडनलगे, तब स्तुति कीनी वहांते आत्मविद्यामें तत्पर ऋषिनको उद्धार कियो, और वृत्रासुरके मारेतें जो ब्रह्महत्या भई तातें इंद्रको छुडायो अनाथ देवतानकी स्त्री असुरनके घरमें रुकीही, ते सब अनेक अवतारनकरि छुटाई, नृसिंहरूप धरि भक्त-

देवासुरे युधि च दैत्यपतीन्सुरार्थे हत्वाऽन्तरेषु भुवनान्यदधात्कलाभिः ॥ भूत्वाऽथ वामन इमामहरद्बलेः क्ष्मां याच्ञाछलेन समदाददितेः सुतेभ्यः ॥२०॥ निःक्षत्रियामकृत गां च त्रिःसप्तकृत्वो रामस्तु हैहयकुलाऽप्ययभार्गवाग्निः ॥ सोऽब्धिं बबन्ध दशवक्त्रमहन्सलङ्कं सीतापतिर्जयति लोकमलघ्नकीर्तिः ॥ २१ ॥ भूमेर्भरावतरणाय यदुष्वजन्मा जातः करिष्यति सुरैरपि दुष्कराणि ॥ वादैर्विमोहयति यज्ञकृतोऽतदर्हाञ्छूद्रान्कलौ क्षितिभुजो न्यहनिष्यदन्ते ॥ २२ ॥

नको अभयदान निमित्तके लिये हिरण्यकश्यप मार्‌यो ॥१९॥ और मन्वंतरनविषें देवता और दैत्यनके संग्राममें देवतानके लिये अपनी कलानकरिकैं दैत्यपति मारे, संपूर्ण लोकनकी रक्षा करी, वामनरूप ले बलितें भीखके छलकरि या पृथिवीकों लेकरि देवतानको देतभये ॥ २० ॥ परशुरामको अवतार ले इक्कीसवार निःक्षत्री पृथ्वी कीनी हैहयकुलके नाशकों भृगुवंशमें अग्निरूप प्रगटभयें, तेई फेरि, रामावतार ले समुद्र बांधत भये, लंकाविषे स्थित रावणको मारत भये, जिनकी कीर्ति संसारके पाप नाश करतीहै, सो रघुनाथजू अब विद्यमान हैं ॥ २१ ॥अब होनहार बलदेव और कृष्णको अवतार कहैं हैं, भूमिको भार उतारिवेकों अजन्मा आपु यादवनमें जन्म ले देवतनसौ न करे जांइ ऐसे कर्म करैंगे पीछे जे यज्ञादिक करवेके अयोग्य दैत्यनको बौद्धरूप धरि मोहैंगे, पीछे कलियुगके अन्तमें कल्कि अवतार धर शूद्रजातिके राजनको मारेंगे ॥ २२ ॥

एवंविधानि कर्माणि जन्मानि च जगत्पतेः॥ भूरीणि भूरियशसो वर्णितानि महाभुज ॥ २३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एका० चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः ।

राजोवाच ॥ भगवन्तं हरिं प्रायो न भजन्त्यात्मवित्तमाः ॥ तेषामशान्तकामानां का निष्ठाऽविजितात्मनाम् ॥ १ ॥ चमस उवाच ॥ मुखबाहूरुपादेभ्यः पुरुषस्याश्रमैः सह ॥ चत्वारो जज्ञिरे वर्णा गुणैर्विप्रादयः पृथक् ॥ २ ॥ य एषां पुरुषं साक्षादात्मप्रभवमीश्वरम् ॥ न भजन्त्यवजानन्ति स्थानाद्भ्रष्टाः पतन्त्यधः ॥ ३ ॥

ऐसे श्रीहरिके जन्म और कर्म अनंत है, हे महाभुज ! बडे यशके मैंने तोसो संक्षेपतें कह्यो ॥ २३ ॥

इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायामेकादशस्कंधे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अब भक्तिरहितनकी कहा गति है फेरि युगयुगमें कौन पूजाविधि है ये द्वै प्रश्नको उत्तर पांचवें अध्यायके विषे कहैंगे ॥ १ ॥ राजा बोले जिनकी कामना नहीं छूटी वे बहुधा भगवान् हरिको नहीं भजैहैं, तिनकी कौन गति है सो कहो ॥ १ ॥ तब आठयो चमसऋषि उत्तर देइहैं: प्रथम परम पुरुषके मुखतें सतोगुण करि ब्राह्मण उपजे; भुजानते सत्व रजकरि क्षत्री भये, ऊरूते रजोगुण तमोगुण करि वैश्य भये, चरणनते केवल तमोगुण करि शूद्र भये, आश्रमसहित न्यारे २ वर्ण भये ॥२॥ अपने जन्मदाता पुरुष ईश्वरकों इन वर्णनके मध्यमे

दूरे हरिकथाः केचिद्दूरे चाच्युतकीर्तनाः ॥ स्त्रियः शूद्रादयश्चैव तेऽनुकम्प्या भवादृशाम् ॥ ४ ॥ विप्रो राजन्यवैश्यौ च हरेः प्राप्ताः पदान्तिकम् ॥ श्रौतेन जन्मनाऽथापि मुह्यन्त्याम्नायवादिनः ॥ ५॥ कर्मण्यकोविदाः स्तब्धा मूर्खाः पण्डितमानिनः ॥ वदन्ति चाटुकान्मूढा यया माध्व्या गिरोत्सुकाः ॥ ६ ॥ रजसा घोरसङ्कल्पाः कामुका अहिमन्यवः ॥ दाम्भिका मानिनः पापा विहसन्त्यच्युतप्रियान् ॥७॥

उत्पन्न भये जे नहीं भजेहैं, और जानिकरिकैं निरादर करे हैं, वे वर्ण आश्रमते भ्रष्ट भये पुरुष अधोगतिको जाइहैं ॥ ३ ॥ कोऊ एक ऐसे हैं जिनको हरि कथा श्रवण बहुत दूरि है, किनहूंको हरिकीर्तन अति दूरि है, जे स्त्री हैं शूद्रादिक हैं तिनके ऊपर तुम सारिखे महात्मा कृपालु होयहै ॥ ४ ॥ ब्राह्मण क्षत्री वैश्य ये यज्ञोपवीत रूप दूसरे जन्मसौ और वेदाध्ययनकरि हरिभजनके उत्तम अधिकारी है, तथापि वेदोक्त कर्मनके फल सुनि वा फलमें आसक्त है यह भूलेहै जे अल्पज्ञानते आपुको ज्ञानी माने हैं ते असाध्यहैं, तिनको त्याग योग्य है ॥ ५ ॥ कर्म करनेमें अकुशल मूर्ख अपनेको पंडित माननेवारे अनम्र ऐसी मनोहर बातें कहे हैं जासौ मोह उत्पन्न होय वह यह है कि यज्ञादिकनको फल अक्षय होइगो, न स्वर्गमें शीत है, न उष्ण है, न मलीनता है, न पराजय है, ऐसे वचनसो उत्कंठित हैकरिके कहे है हम अप्सरानसो विहार करेंगे यह कहते कर्ममें बंधे रहे हैं ॥६॥ उनको वा फलके भ्रमतें कर्महीमें आदर होयहै, ताते काम क्रोध मादक बढे हैं (यह कहे है) रजोगुणते राग द्वेष उपजे हैं ताते अभिचारके कर्मनपर मन होयहै तब वे घोर संकल्पी महातृष्णावारे सर्पकी

वदन्ति तेऽन्योन्यमुपासितस्त्रियो गृहेषु मैथुन्यसुखेषु
चाशिषः ॥ यजन्त्यसृष्टान्नविधानदक्षिणं वृत्त्यै परं
घ्नन्ति पशूनतद्विदः ॥८॥ श्रिया विभूत्याभिजनेन वि-
द्यया त्यागेन रूपेण बलेन कर्मणा ॥ जातस्मयेनान्ध-
धियः सहेश्वरान्सतोऽवमन्यन्ति हरिप्रियान्खलाः॥९॥
सर्वेषु शश्वत्तनुभृत्स्ववस्थितं यथा खमात्मानमभीष्ट-
मीश्वरम् ॥ वेदोपगीतं च न शृण्वतेऽबुधा मनोरथानां
प्रवदन्ति वार्तया ॥१०॥ लोके व्यवायाऽमिषमद्यसेवा
नित्यास्तु जन्तोर्न हि तत्र चोदना ॥ व्यवस्थितिस्तेषु
विवाहयज्ञसुराग्रहैरासु निवृत्तिरिष्टा ॥ ११ ॥

समान क्रोधी महाअभिमानी दुष्ट स्वभावसों अधजरे लोग नारायणके भक्तनकों हँसै हैं ॥७॥ जो स्त्रीनहीकी सेवा करते कभी वृद्धनकी सेवा नहीं करते केवल मैथुनमेंही सुख माननेवाले अतिथिकी पूजारहित घरनमें रहिकै मनके मनोरथवारे लोग कह्यौ करैं हैं आज मैंने यह पायो, यह मनोरथ आगें पाऊंगो, और जो काहू देवताकों पूजें तो अपनें स्वार्थकों पशुकी हिंसा करैं है न कछू विधि न दक्षिणा न अन्नदान करे ऐसे अज्ञ हैं; जे हिंसादोषको नहीं जाने हैं ॥८॥ धन ऐश्वर्य कुल विद्या दान रूप बल कर्म करकै विनकें गर्व होय हैं तासे मंदबुद्धि दुष्ट; ईश्वरसहित साधु परमेश्वरके भक्तनको निरादर करैं हैं ॥९॥ वे दुष्ट प्रगट वेदार्थको नहीं जाने हैं,जो वेद कहै हैं सब देहधारी-नमें यह अभीष्ट ईश्वर आत्मा सदा आकाशकी भांति व्यापि रह्यो है, और अपने प्रिय ईश्वरकों फेरि वेद प्रगट बतावे हैं, तोहू ये मूर्ख नहीं सुने हैं, मनोरथनकी वार्त्ता न करिकें विवाद करैं हैं ॥ १० ॥ (तहां पूर्वपक्ष कहैहै) अहो स्त्रीसंग तो कह्यो है कि ऋतुदान करे,

धनं च धर्मैकफलं यतो वै ज्ञानं सविज्ञानमनुप्रशा-न्ति ॥ गृहेषु युञ्जन्ति कलेवरस्य मृत्युं न पश्यन्ति दुरन्तवीर्यम् ॥ १२ ॥

देवताको शेष भोजन करै, वह विषयभोग तो कह्योहै तुम क्यों निंदा करोहो (तहां कहै है) लोकमें स्त्रीसंग मांसभक्षण मदिराको सेवन नित्य है विषयासक्तनकों अनुराग स्वभावहीतें प्राप्त है, कछु विधि नहीं जो एक यही चहिये, जहां विधि कहीहै तहां ऋतुके दिन स्त्रीसंग करे, यज्ञमें मांस भक्षण करे सौत्रामणिमें मद्य लेइ यह इनके छुडाव-वेको नियम करै हैं जो ऋतुहीके दिन स्त्रीसंग करें यज्ञहीमें मांस मद्य लेइ और दिन न लेइ यह नेम करि और दिनको निषेध कियो है, या बातकू विषयी मूर्ख नहीं समझें हैं, जे कामी अरुचि करि अथवा द्वेषकरि स्त्रीसंगादिक करैहैं, तिनको यह नेम है, जिनके कामना नहीं तिनको यह नेम नहीं, वेदको तो अभिप्राय सब दिन छुडाववेको है वाको मूर्ख नहीं समझै है ॥११॥ धर्म करनौही धर्मको फल है कारण कि धर्मानुष्ठान करवेसौ परोक्षज्ञान और तत्काल शांतिदायक अपरोक्ष ज्ञान दोनों प्राप्तहै जायहै फिर पीछी शांतिप्राप्ति होयहै ऐसे सुखदायक धनकों यह पुरुष देहादिके निमित्त घरनमें वृथा खोय देयहै न तौ याको विचार करैहैं और न शिरपर घूमती भई दुरंतवीर्य मृत्युकूंही देखैहैं ॥ १२ ॥

१ प्रयोजन यह है कि मैथुन मांस और मद्य इनमें प्रवृत्ति मनुष्यनकी है परंतु वेदवाक्यनसौं विधि नहीं पावैहै कोई कहै कि (ऋतौ भार्यामुपेयात् सौत्रामण्यां सुरां पिबेत्) इत्यादि वाक्यनसौ विधि पावै है सो वो विधि नहीं है किंतु परिसं-ख्याविधिसौ निषेधही है कि जो मैथुन करे तौ भार्याहीमें और फिर ऋतुमेंही करै तब वास्तवसौ रागप्राप्त नित्यमैथुनको निषेधही भयो विधि नहीं ऐसेही सब विधि-वाक्यनसे निषेध पायो यासौ निवृत्तही वेदाभिप्राय है इति ॥

यद्घ्राणभक्षो विहितः सुरायास्तथा पशोरालभनं न हिंसा॥ एवं व्यवायः प्रजया न रत्या इमं विशुद्धं न विदुः स्वधर्मम् ॥ १३॥ येत्वनेवंविदोऽसन्तः स्तब्धाः सदभिमानिनः ॥ पशून्द्रुह्यन्ति विस्रब्धाः प्रेत्य खादन्ति ते च तान्॥ १४॥द्विषन्तः परकायेषु स्वात्मानं हरिमीश्वरम् ॥ मृतके सानुबन्धेऽस्मिन्बद्धस्नेहाः पतन्त्यधः ॥ १५ ॥ ये कैवल्यमसंप्राप्ता ये चातीताश्च मूढताम् ॥ त्रैवर्गिका ह्यक्षणिका आत्मानं घातयन्ति ते ॥ १६ ॥

औरहू वेदको तात्पर्य नहीं जाने हैं कि ऋतुके दिनहू स्त्रीसंग गर्भाधानहीको कह्यो है यथेष्ट कामभोगको नहीं कह्यो है, और सुराहूको पान नहीं कह्यो है, आघ्राण कह्यो है, पशुहीकी हिंसा देवताके निमित्त करे अपने लोभते हिंसा न करे, ऐसे शुद्ध धर्मको विषयकी आसक्ति करि नहीं करै या सिद्धांतको ये मूर्ख नहीं जाने है ॥ १३ ॥ जे या धर्मको नहीं जाने हैं वे असाधु हैं अनम्र हैं अपनेकू साधुकरि मानलेय हैं, विश्वासकरि पशुनको मारे हैं, याके करेसूं मनोरथ होइगो ऐसो कहेहैं या जन्ममें वाको मांस यह खाइ है, अगिले जन्ममें याको मांस वह खाइगो, याहीते मांस याको नाम हैं ॥ १४ ॥ मृतक समान अपने और पुत्रादिकमें स्नेह करि बद्ध होइ परायेहू देहनमें विद्यमान अपने आत्मा ईश्वर हरिसो द्वेष करै हैं वे नरकमें परैहैं ॥ १५ ॥ जे अज्ञ हैं वे ज्ञानीनकी कृपांते तरे हैं जे मध्यवर्ती हैं नरकमें परे हैं, जे जे तत्वज्ञानको नहीं प्राप्त भये, जो मूढताको प्राप्त भये स्वार्थनिमित्त धर्म अर्थ काम करै है वे वारंवार जन्म मरण पावे हैं जे कैवल्यको तो प्राप्त नहीं भयेहै और मूढताको

१ अत्र मनुः । मांसभक्षयितामुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहम् ॥ एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ १ ॥

एत आत्महनोऽशान्ता अज्ञाने ज्ञानमानिनः ॥ सी-
दन्त्यकृतकृत्या वै कालध्वस्तमनोरथाः ॥ १७ ॥ हि-
त्वाऽऽत्मायासरचिता गृहापत्यसुहृच्छ्रियः ॥ तमो
विशन्त्यनिच्छन्तो वासुदेवपराङ्मुखाः ॥ १८ ॥
राजोवाच ॥ कस्मिन्काले स भगवान्किंवर्णः कीदृशो
नृभिः ॥ नाम्ना वा केन विधिना पूज्यते तदिहो-
च्यताम् ॥ १९ ॥ करभाजन उवाच ॥ कृतं त्रेता
द्वापरं च कलिरित्येषु केशवः॥ नानावर्णाभिधाकारो
नानैव विधिनेज्यते ॥२० ॥ कृते शुक्लश्चतुर्बाहुर्जटिलो
वल्कलाम्बरः ॥ कृष्णाजिनोपवीताक्षान्बिभ्रद्दण्ड-
कमण्डलू ॥ २१ ॥

अतीत है गयेहै ऐसे जे अक्षणिक त्रैवर्गिक है वे अपने आत्माकूं हनन करामैंहै ॥ १६ ॥ जे प्राणी आत्मघाती अशांत हैं अज्ञानहीको ज्ञान करि माने हैं, जे कृतकृत्य नहीं भये ते कालकरि नष्ट मनोरथ होइ दुःखही पावे है॥ १७ ॥ जे भगवान्तें विमुख हैं, अतिश्रमसो गृह पुत्र मित्र धन सबकों प्राप्त हैकै इच्छा नहीं रहिवेपैहू नीच योनि अंधतममें परे हैं ॥ १८ ॥ राजा जनक बोले आपने जो सब त्याग नारायणकी भक्ति करनी कही सो कौनसै समयमें कैसे वर्णके कैसी आकृतिके कौनसे नामसो कौनसी विधिसों लोकमें पूजे जाय हैं सो कहिये ॥ १९ ॥ तब करभाजन योगीश्वर नौमे प्रश्नको उत्तर देय हैं सतयुग त्रेता द्वापर कलियुग इन चारि युगनमें नानावर्ण नाम आकार युक्त केशव अनेक विधिसों पूजिये हैं ॥२० ॥ सतयुगमें शुक्लवर्ण चतुर्भुज जटा धरे वल्कल वस्त्र धरे कारे मृगको चर्म यज्ञोपवीत रुद्राक्ष दंड

मनुष्यास्तु तदा शान्ता निर्वैराः सुहृदः समाः ॥ यज-
न्ति तपसा देवं शमेन च दमेन च ॥२२॥ हंसः सुपर्णो
वैकुण्ठो धर्मो योगेश्वरो मनुः ॥ ईश्वरः पुरुषोऽव्यक्तः
परमात्मेति गीयते ॥ २३ ॥ त्रेतायां रक्तवर्णोऽसौ
चतुर्बाहुस्त्रिमेखलः ॥ हिरण्यकेशस्त्रय्यात्मा स्रुक्स्रु-
वाद्युपलक्षणः ॥ २४ ॥ तं तदा मनुजा देवं सर्वदेवमयं
हरिम् ॥ यजन्ति विद्यया त्रय्या धर्मिष्ठा ब्रह्मवादिनः
॥ २५ ॥ विष्णुर्यज्ञः पृश्निगर्भः सर्वदेव उरुक्रमः ॥ वृ-
षाकपिर्जयन्तश्च उरुगाय इतीर्यते ॥ २६ ॥ द्वापरे
भगवाञ्छ्यामः पीतवासा निजायुधः ॥ श्रीवत्सादि-
भिरङ्कैश्च लक्षणैरुपलक्षितः ॥ २७ ॥

कमंडलु धरें ब्रह्मचारीके रूपसों दर्शन देय हैं, तैसेई पूजियें हैं ॥२१॥ ता युगमें मनुष्य सब शांतरूप निर्वैर सुहृद समदृष्टि शम दम और ध्यान करिकैं देवकों पूजे हैं ॥ २२ ॥ ता कालमें इन नामन करिकैं हरि गाये हैं, हंस, सुपर्ण, वैकुंठ, धर्म, योगेश्वर, मनु, अमल, ईश्वर, पुरुष, अव्यक्त, परमात्मा इति ॥ २३ ॥ त्रेतामें रक्तवर्ण चारि भुजा तीनि मेखला धरें, सुवर्णवर्णकेश, वेदत्रयीमयमूर्ति, स्रुक्स्रुवा यज्ञके साधनकों धरें ॥ २४ ॥ जे अतिधर्मात्मा वेदके ज्ञाता मनुष्य हैं वे सर्व वेदरूप हरिको तीनिहूं वेदनके कर्मनकरि त्रेतामें पूजे हैं ॥२५ ॥ विष्णुयज्ञ, पृश्निगर्भ, सर्वदेव, उरुक्रम, वृषाकपि, जयंत, उरुगाय ये नाम गाये जाय हैं ॥ २६ ॥ द्वापरमें भगवान् श्याममूर्ति पीतांबर धरें, शंख चक्रादि श्रीवत्सआदि चिह्न और कौस्तुभादिक लक्षण धरें हैं ॥ २७॥

तं तदा पुरुषं मर्त्या महाराजोपलक्षणम् ॥ यजन्ति वेदतन्त्राभ्यां परं जिज्ञासवो नृप ॥२८॥ नमस्ते वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च ॥ प्रद्युम्नायानिरुद्धाय तुभ्यं भगवते नमः॥ २९ ॥ नारायणाय ऋषये पुरुषाय महात्मने ॥ विश्वेश्वराय विश्वाय सर्वभूतात्मने नमः ॥ ३० ॥ इति द्वापर उर्वीश स्तुवन्ति जगदीश्वरम् ॥ नानातन्त्रविधानेन कलावपि यथा शृणु ॥३१॥ कृष्णवर्णं त्विषा कृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम्॥ यज्ञैः संकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः ॥ ३२ ॥ ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं तीर्थास्पदं शिवविरिञ्चिनुतं शरण्यम् ॥ भृत्यार्तिहं प्रणतपालभवाब्धिपोतं वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥ ३३ ॥

हे राजन्! जो मनुष्य ईश्वरके जानवेकी इच्छा राखे हैं वे वा समयमें महाराजनके लक्षण संयुक्त वा महापुरुषकों वेद मंत्र और आगमके मंत्रनसों पूजे हैं ॥ २८ ॥ अब नाम कहेहैं वासुदेव संकर्षण प्रद्युम्न अनिरुद्ध रूप भगवान् तुमकों नमस्कार है ॥ २९ ॥ नारायणऋषि पुरुष महात्मा विश्वेश्वर विश्वरूप सर्वभूतनके आत्माको नमस्कार है ॥ ३० ॥ हे राजन्! ऐसी भांति द्वापरमें परमेश्वरकी स्तुति करे है, नाना आगम मार्गनकरिकैं कलियुगमेंहू जैसे पूजे है सो सुनिये ॥३१॥ कलियुगमें कृष्णवर्ण है, कांति करिकैं अतिनिर्मल है, जैसी नीलमणि होयहै, ऐसे अंग हृदयादि उपांग कौस्तुभ और सुदर्शनादिक अस्त्र पार्षद सुनंदनादिक समेत नामको कथन और स्तुति प्रधान पूजासों अति बुद्धिवंत अर्चन पूजन करे हैं ॥ ३२ ॥ पीछें स्तुति करे हैं

त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम् ॥ मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद्वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥ ३४ ॥ एवं युगानुरूपाभ्यां भगवान्युगवर्तिभिः॥ मनुजैरिज्यते राजञ्छ्रेयसामीश्वरो हरिः ॥ ३५ ॥ कलिं सभाजयन्त्यार्या गुणज्ञाः सारभागिनः॥ यत्र संकीर्तनेनैव सर्वः स्वार्थोऽभिलभ्यते ॥ ३६ ॥

हे प्राणिनके रक्षक हे महापुरुष! तुह्मारे चरणारविंदकों नमस्कार है जो चरणारविंद सदा ध्यान करिवेकों योग्य है, इंद्रिय कुटुंबके संगते अनिष्टको दूरि करै है, मनके अभिलाष पूर्णकरै है, गंगादिक तीर्थके स्थानभूत है शिव ब्रह्मासो स्तुति किये भए हैं जे दीन हैंके विन चरणनकी शरण जायहैं तिन सबनके रक्षक है सेवककी पीडाको हरे हैं संसारसमुद्र तरिवेको नावरूप है ॥ ३३ ॥ हे धर्मात्मन् हे श्रीरामचन्द्रजी! आप देवतानसोंहू न त्यागी जाय जाकी अभिलाषामेंहीं अमर रहैं हैं ऐसी राज्यलक्ष्मी पिताकी आज्ञासों छोडके धर्मकी रक्षाके निमित्त वनको गये और प्रिया सीताके प्रेम और वचनसों मायामृगके पीछे धाये विन भक्तप्रिय आपके चरणारविंदनको हम प्रणाम करै हैं ॥ ३४ ॥ हे राजन् जनक! या भांति चारोंहू युगके नाम रूप भेद करि वा वा युगके मनुष्यनकरि कल्याणके दाता हरि भगवान् पूजे जायहैं ॥ ३५ ॥ अब चारोंहू युगनमें कलियुग श्रेष्ठ है यह कहे हैं, जे श्रेष्ठ गुणज्ञ सारग्राही हैं, वे कलियुगकी स्तुति करें हैं, और युगनमें ध्यान यज्ञ पूजा करि जो फल होय है, सो सब स्वार्थ कलियुगमें भगवान्के भजन कीर्त्तन मात्रतेंई प्राप्त

यत्र संकीर्तनाद्धरी हरिर्दास्यत्यसंभवम्

न ह्यतः परमो लाभो देहिनां भ्राम्यतामिह ॥ यतो
विन्देत परमां शान्तिं नश्यति संसृतिः ॥ ३७ ॥
कृतादिषु प्रजा राजन्कलाविच्छन्ति संभवम् ॥ कलौ
खलु भविष्यन्ति नारायणपरायणाः ॥ ३८ ॥ क-
चित्कचिन्महाराज द्रविडेषु च भूरिशः ॥ ताम्रपर्णी
नदी यत्र कृतमाला पयस्विनी ॥ ३९ ॥ कावेरी च
महापुण्या प्रतीची च महानदी ॥ ये पिबन्ति जलं
तासां मनुजा मनुजेश्वर ॥ प्रायो भक्ता भविष्यन्ति
वासुदेवेऽमलाशयाः ॥ ४० ॥

होयहै ॥ ३६ ॥ प्राणी देहके अभिमान करि संसारमें भ्रमें हैं तिनको यातें और परम लाभ नहीं जो संसार नष्ट होइ, परमसुख शांति पावे, ताते कलियुगमें हरि कीर्त्तनते परे और लाभ नहीं ॥३७॥ हे राजन्! सतयुगादिककी प्रजा कलियुगमें जन्म पामें ऐसे इच्छा करे है, जाते निश्चय करि कलियुगमें सर्व जीव नारायणपरायण होइगे ॥ ३८ ॥ हे महाराज! कहूं कहूं महाराष्ट्रदेशमें भक्त होइगे, द्राविडदेशमें बहुत होइगे, जहां ताम्रपर्णी नदी कृतमाला और पयस्विनी हैं ॥ ३९ ॥ कावेरी परम पवित्र नदी हैं इन नदीनको जल पीमे हैं हे मनुजेश्वर! वे मनुष्य निर्मलचित्त ह्वैके श्रीभगवान् वासुदेव विषे बहुधा भक्त

१ सोइ जब ऋषिनने कलियुग आयो देखो तब वेदव्यासजीके पास जायके बोले कि महाराज ! कलियुग आय गयो है अब कहा करें तब श्रीवेदव्यासजी सालिगरामको हाथमें लेके गंगाजीमें कमर २ जलमें खडे हैके ऋषिन प्रति बोले (हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्। कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥) तब सब ऋषिनने कीर्तनको ही कलियुगमें प्रधान मान्यौ ॥

२ दोहा-सतयुग त्रेता द्वापर, पूजा मख अरु योग ॥ जो गति होय सो नामजप, कलि मह पावहिं लोग ॥ १ ॥

देवर्षिभूताप्तनृणां पितॄणां न किंकरो नायमृणी च
राजन् ॥ सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतो मुकुन्दं
परिहृत्य कर्तम् ॥ ४१ ॥ स्वपादमूलं भजतः प्रियस्य
त्यक्तान्यभावस्य हरिः परेशः ॥ विकर्म यच्चोत्पतितं
कथं चिद्धुनोति सर्वं हृदि स न्निविष्टः ॥ ४२ ॥ नारद
उवाच॥धर्मान्भागवतान्नित्यं श्रुत्वाथ मिथिलेश्वरः॥
जायन्तेयान्मुनीन्प्रीतः सोपाध्यायो ह्यपूजयत्
॥४३॥ ततोऽन्तर्दधिरे सिद्धाः सर्वलोकस्य पश्यतः॥
राजा धर्मानुपातिष्ठन्नवाप परमां गतिम् ॥ ४४ ॥

हैं ॥ ४० ॥ जे मनुष्य सर्वथा भेद छोडिकै केवल शरणदाता मुकुंद भगवान्के शरण जाय हैं विनपै देवता ऋषि भूत कुटुंबी मनुष्य पितरको ऋण नहीं रहै है हे राजन् ! इनके अर्थ पंचयज्ञादिकनके करवेकीहू प्रबल विधि नहीं जो सर्वत्र एक हरिको देखे हैं ॥ ४१ ॥ यदि यह संदेह करो कि सम्पूर्ण कर्म छोडिकै भजन करै तो कर्म छोडवेको पाप लगैगो याको समाधान यह है कि जो सब देवादिकनको छोडिकै एक हरिहीके चरण भजे हैं, ताको विकर्म सर्वथा, न होइहै जो कदाचित्प्रमादते होइ तो वाके हृदयमें हरि बैठे हैं, वे यमादिकनहूके नियंता हैं, वाकेहू कर्म सब नाश करैं हैं ताते हरिको भक्त प्यारो है ॥ ४२ ॥ इन नौ योगीश्वरनको संवाद कहिकै श्रीनारदजी बोले हे वसुदेव ! ऐसे भगवत धर्म सुनिके राजा जनक संतुष्ट ह्वैकैं अपने गुरुनसहित जयंतीपुत्र योगीश्वरनकी पूजा करत भये ॥४३॥ ता पीछे वे योगीश्वर सम्पूर्ण मुनि सिद्ध लोकनके देखतेही अंतर्द्धान होत भये, राजा जनक वे धर्म करते परमगति पावत भये ॥ ४४ ॥

त्वमप्येतान्महाभाग धर्मान्भागवताञ्छ्रुतान् ॥ आस्थितः श्रद्धया युक्तो निःसङ्गो यास्यते परम् ॥४५॥ युवयोः खलु दम्पत्योर्यशसा पूरितं जगत् ॥ पुत्रतामगमद्यद्वां भगवानीश्वरो हरिः ॥ ४६॥ दर्शनालिङ्गनालापैः शयनासनभोजनैः ॥ आत्मा वां पावितः कृष्णे पुत्रस्नेहं प्रकुर्वतोः ॥ ४७ ॥ वैरेण यं नृपतयः शिशुपालपौण्ड्रशाल्वादयो गतिविलासविलोकनाद्यैः ॥ ध्यायन्त आकृतधियः शयनासनादौ तत्साम्यमापुरनुरक्तधियां पुनः किम् ॥ ४८ ॥

अब नारदजी वसुदेवसो कहैं हैं हे महाभाग वसुदेव ! तुमहूं ये वैष्णवधर्म करो, सुनकर श्रद्धा करवेसो निःसंग होइ परम मंगल पाओगे ॥ ४५ ॥ यह तो मैंने शास्त्रादिकनकी रीति करी सब तुमसों कह्यो है तुम तो वसुदेवजी विनाही शास्त्रके क्रम कृतार्थ हो तुम दोऊ स्त्री पुरुष परम भागवत हो जिनके यश करि सब जगत् पूर्ण होइ रह्यो है, जाते तुह्मारे भगवान् ईश्वर पुत्र भये ॥ ४६ ॥ तुमको और लोकनकी भ्रांति सर्व कर्म समर्पण आदि वैष्णव धर्मन करि चित्त शुद्ध करनो नहीं, दर्शन आलिंगन आलाप शयन आसन भोजन करि श्रीकृष्ण विषे पुत्रस्नेह करते तुह्मारे भगवान् ईश्वर आत्मा पवित्र भयो है ॥ ४७ ॥ जे शिशुपाल पौंड्र शाल्वादिक शय्या आसन आदिविषे जाको वैरसोहू ध्यान कर, श्रीकृष्णकी गति विलास चितवन आदि करि तदाकार भई बुद्धिसों सारूप्यमुक्ति पावत भये तो जे स्नेहसों चित्त इनके स्वरूपमें राखे हैं, वे सारूप्य गति पावें तो यामें कौन अचरज है ॥ ४८ ॥

मापत्यबुद्धिमकुथाः कृष्णे सर्वात्मनीश्वरे ॥ माया
मनुष्यभावेन गूढैश्वर्ये परेऽव्यये ॥४९॥ भूभारासु-
रराजन्यहन्तवे गुप्तये सताम्॥ अवतीर्णस्य निर्वृत्त्यै
यशो लोके वितन्यते ॥ ५० ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥
एतच्छ्रुत्वा महाभागो वसुदेवोऽतिविस्मितः॥ देवकी
च महाभागा जहतुर्मोहमात्मनः ॥ ५१ ॥ इतिहास-
मिमं पुण्यं धारयेद्यः समाहितः ॥ स विधूयेह शमलं
ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ५२ ॥ इति श्रीभागवते महा-
पुराणे एकादशस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अहो जो पुत्रस्नेह मुक्तिको कारण है तो सबही मुक्त होने चाहिये तहां कहै हैं, हे वसुदेवजी ! तुम इनपर पुत्रबुद्धि मति राखो, ये तो सर्वात्मा ईश्वर हैं मायाकरि मनुष्यसे दीखेहैं, अलौकिक ऐश्वर्य इनको गुप्त है, ये श्रीकृष्ण अविनाशी परम पुरुष है ॥ ४९ ॥ पृथ्वीको भाररूप असुरराजानके मारवेको साधूनकी रक्षा करिवेको मोक्ष देवेको अवतार लियो है, लोकनमें यश विस्तार करै है ॥ ५० ॥ अब श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षितसो कहै हैं हे राजन् ! यह सुनि महाभाग वसुदेवजी और देवकी आश्चर्य पाइ अपने आपको मोह, स्नेह छोडत भये ॥ ५१ ॥ यह इतिहास अतिपुण्यहै जो याको नेमसो मनमें धरैहै सो याही देहविषे मोह दूरिकर ब्रह्मभावको प्राप्त होइहै ॥ ५२ ॥

इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां एकादशस्कन्धे
पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः।

श्रीशुक उवाच ॥ अथ ब्रह्मात्मजैर्देवैः प्रजेशैरावृतो-ऽभ्यगात् ॥ भवश्च भूतभव्येशो ययौ भूतगणैर्वृतः ॥ १ ॥ इन्द्रो मरुद्भिर्भगवानादित्या वसवोऽश्विनौ ॥ ऋभवोऽङ्गिरसो रुद्रा विश्वे साध्याश्च देवताः ॥ २ ॥ गन्धर्वाप्सरसो नागाः सिद्धचारणगुह्यकाः ॥ ऋषयः पितरश्चैव सविद्याधरकिन्नराः ॥ ३ ॥ द्वारकामुपसं-जग्मुः सर्वे कृष्णदिदृक्षवः ॥ वपुषा येन भगवान्नरलो-कमनोरमः ॥ यशो वितेने लोकेषु सर्वलोकमलापह-म् ॥ ४ ॥ तस्यां विभ्राजमानायां समृद्धायां महर्द्धि-भिः ॥ व्यचक्षतावितृप्ताक्षाः कृष्णमद्भुतदर्शनम् ॥ ५ ॥

छठे अध्यायमें ब्रह्मादिक जब स्तुतिकर चले गये, तब उद्धवने विनंति करी कि मोहूको अपनें धाम लेचलो, यह प्रार्थना उद्धवजी करैंगे ॥ शुकदेवजी राजापरीक्षितसों कहैं हैं या प्रकार वसुदेवजीसों नारद कहिगये, ता पीछें द्वारकामें ब्रह्मा सनकादिक और संपूर्ण देवता ऋषि मिलिकैं आवतभये, भूतनके ईश्वर महादेव भूतगणनसों सहित आवतभये ॥१॥ देवतानसो सहित भगवान् इंद्र आये आदित्य वसु अश्विनीकुमार ऋभु अंगिरा रुद्र एकादश विश्वेदेवा साध्य ॥ २ ॥ गंधर्व अप्सरा नाग सिद्ध चारण गुह्यक ऋषि पितर विद्याधर किन्नर ये सब श्रीकृष्णके दर्शनकों द्वारकामें आवत भये तहां पूछे हैं, स्वर्गमें उपें-द्ररूप भगवानको नित्य देखें हैं, यहां कहा विशेष है जो देवता आवत-भये ॥ ३ ॥ तहां कहैं हैं जा देहसौ भगवान् मनुष्यलोकमें परम सुंदर मूर्तिसौ सब लोकनके पाप दूरि करवेवारे यशको विस्तार करत भये ता अतिसुंदर मूर्ति देखिवेकों आवत भये ॥ ४ ॥ परम शोभा कारि धनी पुरुषनसो अतिसमृद्ध, द्वारकामें आइ अतृप्त नेत्र देवता

स्वर्गोद्यानोपगैर्माल्यैश्छादयन्तो यदूत्तमम्॥ गीर्भि-
श्चित्रपदार्थाभिस्तुष्टुवुर्जगदीश्वरम् ॥६॥ देवा ऊचुः॥
नताः स्म ते नाथ पदारविन्दं बुद्धीन्द्रियप्राणमनोव-
चोभिः ॥ यच्चिन्त्यतेऽन्तर्हृदि भावयुक्तैर्मुमुक्षुभिः
कर्ममयोरुपाशात् ॥ ७ ॥ त्वं मायया त्रिगुणयात्मनि
दुर्विभाव्यं व्यक्तं सृजस्यवसि लुम्पसि तद्गुणस्थः ॥
नैतैर्भवानजित कर्मभिरज्यते वै यत्स्वे सुखेऽव्यव-
हितेऽभिरतोऽनवद्यः ॥ ८ ॥

अद्भुतरूप श्रीकृष्णको देखतभये ॥ ५ ॥ पीछे नंदनवनके फूलनसों श्रीकृष्णको पूजतभये विचित्र पद और अर्थयुक्त वाणीनकरि जगदीश्वरकी स्तुति करतभये ॥ ६ ॥ सो संपूर्ण स्तुति कहें हैं, हे नाथ ! हम तुम्हारे चरणारविंदको नमस्कार करें हैं जे जीव कर्मरूप बडे पाशतें छुटचो चाहे हैं, वे बुद्धि प्राण इन्द्रिय मन वचनसों भावयुक्त होइकें जिनको हृदयमें सदा चिंतवन करें हैं परन्तु तौहू दर्शन नहीं पावे हैं हम तुह्मारो प्रगट दर्शन करें हैं यह बडो हमारो भाग्य है ॥७॥ तहां एक तर्क करे है मोक्षके लिये मेरे चरणको चिंतवन काहेको करोहो, मैं तो अनेक दुष्टकर्म करोहों, मेरे तो कर्म छूटेहीं नहीं तो विनके कर्म क्यों छुडाऊंगो (तहां कहें हैं) हे अजित ! तुम ऐसी बात मति कहो औरनपै मनहूंकरि जान्यो न जाई ऐसे महत्तत्त्वआदि प्रपंचको त्रिगुण अपनी माया करि आपुहीमें उपजावोहो पालोहो, संहारोहो, तुम मायाके गुणनमें नियंता करि स्थित हो और इन कर्मनकरि लिप्त नहीं होउ हो जातें रागादिरहित हो, और नित्य अपने अव्यवहित आनंदस्वरूप विषें मगन हो याहीसों जितने दोष हो तिनसों रहित हो ॥ ८ ॥

शुद्धिर्नृणां न तु तथेड्य दुराशयानां विद्याश्रुताध्ययनदानतपःक्रियाभिः॥ सत्त्वात्मनामृषभ ते यशसि प्रवृद्धसच्छ्रद्धया श्रवणसंभृतया यथा स्यात् ॥ ९ ॥
स्यान्नस्तवाङ्घ्रिरशुभाशयधूमकेतुः क्षेमाय यो मुनिभिरार्द्रहृदोह्यमानः॥ यः सात्वतैः समविभूतय आत्मवद्भिर्व्यूहेऽर्चितः सवनशः स्वरतिक्रमाय ॥ १० ॥
यश्चिन्त्यते प्रयतपाणिभिरध्वराग्नौ त्रय्या निरुक्तविधिनेश हविर्गृहीत्वा॥अध्यात्मयोग उत योगिभिरात्ममायां जिज्ञासुभिः परमभागवतैः परीष्टः ॥ ११ ॥

तो मोकों कर्म करिवेको कहा प्रयोजन है मैं तो आत्माराम हों (तहां कहें हैं) हे स्तुतियोग्य हे परमश्रेष्ठ देव ! विषयिनकी चित्त विद्या श्रवण अध्ययन दान तप कर्मनकरि तैसे नहीं शुद्धि होय है जैसी साधुनके चित्त तुह्मारे यश श्रवण करि शुद्धि होय है ॥९॥ अब प्रार्थना करें हैं तुह्मारे चरण हमारे अशुभवासना जराइवेको अग्नि होउ जा चरणको सब मुनि प्रेमकरि कोमल हृदय होइ मोक्षके अर्थ ध्यान करैं हैं, और भक्तजन सारूप्यमुक्तिकी इच्छा करि वासुदेव संकर्षण प्रद्युम्न अनिरुद्ध इन चतुर्व्यूह करि तीन कालमें पूजे है, और तिनहु विषे जे ज्ञानी हैं वे इन्हीसों स्वर्गको उल्लंघन करिकै वैकुंठ जाइवेके अर्थ पूजिये हैं ॥ १० ॥ हे ईश ! जिन तुमको यज्ञ करनेवाले कर्ममार्गमें हाथ जोरि यज्ञकी अग्निमें तीनों वेदकी विधि करिकै हविको लेकरि चिंतवन करैं हैं, और योगिराज अध्यात्मयोगकरि तुह्मारी माया अणिमादिक ऐश्वर्य्य जानिवेकों चिंतवन करैहै, और परम भक्त सर्वत्र पूजे हैं॥ ११ ॥

पर्युष्टया तव विभो वनमालयेयं संस्पर्धिनी भग-
वती प्रतिपत्निवच्छ्रीः॥ यः सुप्रणीतममुयाऽर्हणमा-
ददन्नो भूयात्सदाङ्घ्रिरशुभाशयधूमकेतुः ॥ १२ ॥
केतुस्त्रिविक्रमयुतस्त्रिपतत्पताको यस्ते भयाभयक-
रोऽसुरदेवचम्वोः ॥ स्वर्गाय साधुषु खलेष्वितराय
भूमन्पादः पुनातु भगवन्भजतामघं नः ॥ १३ ॥ न-
स्योतगाव इव यस्य वशे भवन्ति ब्रह्मादयस्तनुभृतो
मिथुरर्द्यमानाः ॥ कालस्य ते प्रकृतिपूरुषयोः परस्य
शं नस्तनोतु चरणः पुरुषोत्तमस्य ॥ १४ ॥

हे विभो! तुह्मारे सब अंगनमें व्याप्त वनमालासो भगवती लक्ष्मीजी सौतिकीसी ईर्षा राखे हैं, यह वनमाला भक्तनने अर्पण करी है या हेतुतें जो तुम धारण करोहो औरहू कहे है कौन विनको मालानकरिकैं पूजाको ग्रहण करोहो तुह्मारे चरण हमारी विषयवासना जराइवेको अग्नि होउ ॥ १२ ॥ जब तुम त्रिविक्रमरूप भये तब तुमने बलिराजा बांध्यो, तब तुह्मारो एक चरण सत्यलोकमें रह्यो, सो जैसे विजय पताका होइ तैसे लगे हैं चरणते गंगाजूके तीनि प्रवाह छूटे, ते पताका भई चरणध्वज दंड भयो, सो सुर असुर सबनकी सेनाको भय अभयको दाता भयो; देवतानकों और साधुनको अभयको दाता स्वर्ग दीनों, असुरकों और दुष्टनको भयदायक अधोगति दीनी, हे सर्वव्यापक! तुह्मारे चरण हम भक्तनकों पापतें रक्षा करे ॥ १३ ॥ कदाचित् कहो युद्धमें देवता दैत्य परस्पर जीते हैं, हारे हैं मेरो तहां कहा निमित्त है तहां कहे हैं, ब्रह्मा आदि ले देहधारी सब जगत् परस्पर युद्ध करि पीडित होय हैं तब तुह्मारे वश होय हैं, जाते कालरूप तुम हो, कालके आधीन सब है जय पराजय आपके

अस्यासि हेतुरुदयस्थितिसंयमानामव्यक्तजीवमहतामपि कालमाहुः॥ सोऽयं त्रिणाभिरखिलापचये प्रवृत्तः कालो गभीररय उत्तमपूरुषस्त्वम् ॥ १५ ॥
त्वत्तः पुमान्समधिगम्य यया स्ववीर्यं धत्ते महान्तमिव गर्भममोघवीर्यः॥ सोऽयं तयाऽनुगत आत्मन आण्डकोशं हैमं ससर्ज बहिरावरणैरुपेतम् ॥ १६ ॥
तत्तस्थुषश्च जगतश्च भवानधीशो यन्माययोत्थगुणविक्रियमयोपनीतान्॥ अर्थाञ्जुषन्नपि हृषीकपते न लिप्तो येऽन्ये स्वतः परिहृतादपि बिभ्यति स्म ॥ १७ ॥

आधीनही है, जैसे नाथके आधीन बैल है तैसे सब तुम्हारे आधीन हैं, तुम प्रकृति पुरुषहूते परे हो, पुरुषोत्तम हो, तुह्मारे चरण हमको सुख करे ॥ १४॥ अब पुरुषोत्तमकों कहे हैं तुम या जगत्के उत्पत्ति पालन प्रलयके कारण हो, प्रकृति पुरुष महत्तत्त्वहूके नियंता हो, यह काल संवत्सररूप है, सो चक्ररूपहैं, ताके ग्रीष्म वर्षा शरद तीनों नाम हैं, सबके नाशकों प्रवृत्त है, गंभीर याको वेग है सो काल तुह्मारो रूप है, तातें तुम उत्तमपुरुष हो ॥ १५ ॥ अब सृष्टिको प्रकार कहै हैं, प्रथम तुमते सफलवीर्य एक पुरुष होय है सो पुरुष तुमतें शक्तिको पाइ मायासों मिलि विश्वको गर्भरूप महत्तत्त्व उपजावै है सो महत्तत्त्व मायासों मिलि आत्मातें यह स्वर्णमय अंडकोश बाहरके सात आवरण संयुक्त सृजे हैं ॥ १६ ॥ जातें सब तुमतें प्रकट भयो है याही कारणसो या स्थावरजंगम विश्वके अधीश तुम हो हे संपूर्ण इंद्रीनके पति! मायाकारि उपजी इंद्रियवृत्ति कारिकै विषयभोग करतेहू तुम निर्लेप रहो हो जे योगीश्वर योग कारि विषय छोडे हैं तोहू डरपैहैं कि कदाचित् हमको विषयवासना न उपजे, तुम प्रपंचसों

स्मायावलोकलवदर्शितभावहारिभ्रूमण्डलप्रहितसौ-
रतमन्त्रशौण्डैः ॥ पत्न्यस्तु षोडशसहस्रमनङ्गबाणै-
र्यस्येन्द्रियं विमथितुं करणैर्न विभ्व्यः ॥ १८ ॥ वि-
भ्व्यस्तवामृतकथोदवहास्त्रिलोक्याः पादावनेजस-
रितः शमलानि हन्तुम् ॥ आनुश्रवं श्रुतिभिर-
ङ्घ्रिजमङ्गसङ्गैस्तीर्थद्वयं शुचिषदस्त उपस्पृशन्ति
॥ १९ ॥ बादरायणिरुवाच ॥ इत्यभिष्टूय विबुधैः सेशः
शतधृतिर्हरिम् ॥ अभ्यभाषत गोविन्दं प्रणम्या-
म्बरमाश्रितः ॥ २० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ भूमेर्भारावताराय
पुरा विज्ञापितः प्रभो ॥ त्वमस्माभिरशेषात्मंस्तत्त-
थैवोपपादितम् ॥ २१ ॥

मिलि रहे हो और विषयसंबंध नहीं यह तुह्मारो विशेषधर्म हैं ॥१७॥ सोलह सहस्र स्त्री अपनें मंदहास सहित चितवनिके कटाक्ष करि दिखाये अभिप्रायसो विनके मनको हरवेवारे भ्रूमंडलसो प्रेरे संभोग मंत्रनविषें निपुण, कामके बाण और कामकी कलासेंहू जो तुह्मारे मनकों वश न करि सकी, तौ तुम विषयनसो निर्लिप्तही हो ॥ १८ ॥ तातें तुह्मारी अमृतरूप कथाजल भरी कीर्तिरूप नदी, और तुह्मारे चरणोदक रूप गंगा ये दोऊ त्रिलोकीके पाप दूरि करिवेको समर्थ हैं, श्रवणेंद्रियनकरि वेदमें गाये तुह्मारे यशके सुनेतें सब पाप नष्ट होय हैं, गंगाके स्नान करेते पाप सब जाय हैं, ताते धर्म जानें हैं ते ये दोऊ तीर्थ सेवे हैं ॥ १९ ॥ याप्रकार ब्रह्मा महादेव सहित देवतानसों मिलि स्तुति करि नमस्कार कर आकाशहीमें ठाढे श्रीकृष्णजीसों बोलत भये ॥ २० ॥ हे प्रभो! हे सबके अंतर्यामी! हमने भूमिके

धर्मश्च स्थापितः सत्सु सत्यसन्धेषु वै त्वया ॥ कीर्तिश्च दिक्षु विक्षिप्ता सर्वलोकमलापहा ॥२२॥ अवतीर्य यदोर्वंशे बिभ्रद्रूपमनुत्तमम् ॥ कर्माण्युद्दामवृत्तानि हिताय जगतोऽकृथाः ॥ २३ ॥ यानि ते चरितानीश मनुष्याः साधवः कलौ ॥ शृण्वन्तः कीर्तयन्तश्च तरिष्यन्त्यञ्जसा तमः ॥ २४ ॥ यदुवंशेऽवतीर्णस्य भवतः पुरुषोत्तम ॥ शरच्छतं व्यतीयाय पञ्चविंशाधिकं प्रभो ॥ २५ ॥ नाधुना तेऽखिलाधारदेवकार्यावशेषितम् ॥ कुलं च विप्रशापेन नष्टप्रायमभूदिदम् ॥२६ ॥ ततः स्वधाम परमं विशस्व यदि मन्यसे ॥ सलोकाँल्लोकपालान्नः पाहि वैकुण्ठकिंकरान् ॥ २७॥

भार दूरि करिवेके लिये पहिले तुमसो विनती करीही सो भार तुमनें तैसेई दूरि कियो ॥ २१॥ संतनमें धर्म स्थापन कियो, साधुनमें सत्य राख्यो, सबनके पाप दूरि कर कीर्ति दशो दिशानमें विस्तारी॥२२॥ यदुवंशमें अवतार ले उत्तम रूप धारि जगत्के हितके अर्थ अति उदारचरित्र कर्म करत भये ॥ २३ ॥ हे ईश ! जिन कर्मनको कलियुगमें साधुजन श्रवण कीर्तन करते सुखपूर्वक संसारको तरेंगे ॥२४॥ हे विभो हे पुरुषोत्तम ! यदुवंशमें अवतार लिये तुमको एकसौ पचीस वर्ष वीते है॥ २५ ॥ हे सर्वाश्रय ! अब तुमको कोऊ देवकार्य्य करनो नहिं रह्यो, और यह तुह्मारो कुलहू विप्रशापते नष्ट ह्वै रह्यो हैं ॥ २६ ॥ ताते जो तुह्मारे मनमें आवे तो अपने वैकुंठ धामको पधारो, हे वैकुंठनाथ ! हम तुम्हारे किंकर है, लोकसहित लोकपालनकी रक्षा करो ॥ २७॥

श्रीभगवानुवाच ॥ अवधारितमेतन्मे यदात्थ विबु-
धेश्वर ॥ कृतं वः कार्यमखिलं भूमेर्भारोवतारितः
॥ २८ ॥ यदिदं यादवकुलं वीर्यशौर्यश्रियोद्धतम् ॥
लोकं जिघृक्षद्रुद्धं मे वेलयेव महार्णवः ॥ २९॥यद्यसं-
हृत्य दृप्तानां यदूनां विपुलं कुलम् ॥ गन्तास्म्यनेन
लोकोऽयमुद्वेलेन विनङ्क्ष्यति ॥ ३० ॥ इदानीं नाश
आरब्धः कुलस्य द्विजशापतः ॥ यास्यामि भवनं
ब्रह्मन्नेतदन्ते तवानघ ॥ ३१॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यु-
क्तो लोकनाथेन स्वयम्भूः प्रणिपत्य तम् ॥ सहदेव-
गणैर्देवः स्वधाम समपद्यत ॥ ३२ ॥ अथ तस्यां महो-
त्पातान्द्वारवत्यां समुत्थितान् ॥ विलोक्य भगवा-
नाह यदुवृद्धान्समागतान् ॥ ३३ ॥

तब भगवान् बोले हे देवतानके ईश्वर ! तुमने कही सो मैंने मनमें धारी तुम्हारो संपूर्ण कार्य कियो, भूमिको भार उतार्यो ॥ २८ ॥ परंतु यह यादवकुल बल शूरता श्रीकरि अति उद्धत है, लोककों ग्रस्यो चाहे है परि मैं रोकूहूं जैसे मर्यादाकरि समुद्र रोक्यो है ॥२९॥ जो मैं ऐसे गर्वसो उद्धत या यादवके विशाल कुलको संहार किये विना जाउ तो यह लोकमर्यादारहित या यदुकुल करि नष्ट होइगो ॥ ३० ॥ सो विप्रशापतें या कुलके नाशको अब आरंभ कियो है, हे ब्रह्मन् ! इनकों संहार करिकैं वैकुंठ जाउँगो, हे निष्पाप ! तुम्हारे घर आउँगो ॥ ३१ ॥ लोकनके नाथ श्रीकृष्णकी ऐसी वाणी सुनि स्वयंभू देव ब्रह्मा श्रीकृष्णको नमस्कार करि देवतानसों मिलि अपने धामकों जात भये ॥ ३२ ॥ पीछे वा द्वारकामें उठे बडे उत्पातनकों देखि

श्रीभगवानुवाच ॥ एते वै सुमहोत्पाता ह्युत्तिष्ठन्तीह
सर्वतः॥ शापश्च नः कुलस्यासीद् ब्राह्मणेभ्यो दुरत्य-
यः ॥३४॥ न वस्तव्यमिहास्माभिर्जिजीविषुभिरार्य-
काः ॥ प्रभासं सुमहत्पुण्यं यास्यामोऽद्यैव मा चिरम्
॥ ३५॥ यत्र स्नात्वा दक्षशापाद्गृहीतो यक्ष्मणोडुराट् ॥
विमुक्तः किल्बिषात्सद्यो भेजे भूयः कलोदयम्॥३६॥
वयं च तस्मिन्नाप्लुत्य तर्पयित्वा पितॄन्सुरान् ॥ भोज-
यित्वोशिजो विप्रान्नानागुणवताऽन्धसा ॥ ३७॥ तेषु
दानानि पात्रेषु श्रद्धयोप्त्वा महान्ति वै ॥ वृजिनानि
तरिष्यामो दानैर्नौभिरिवार्णवम् ॥ ३८ ॥ श्रीशुक
उवाच ॥ एवं भगवताऽऽदिष्टा यादवाः कुलनन्दन ॥
गन्तुं कृतधियस्तीर्थं स्यन्दनान्समयूयुजन् ॥ ३९ ॥

मिलिकरि भये यदुवृद्धनसों भगवान् बोले ॥ ३३ ॥ सब ओरते यहां बडे उत्पात उठे हैं, हमारे कुलकों निवारणके अयोग्य ब्राह्मणकों शापहू भयो है ॥३४॥ हे यादवहो ! जो जीवेकी इच्छा है तो हमकों यहां वसिवो नहीं चहिये अतिपुण्य प्रभासतीर्थकों आजही चलो, विलंब मति करो ॥ ३५ ॥ जा तीर्थमें स्नान करिकैं दक्षके शापतें क्षयरोग करि ग्रस्यो चंद्रमा पापते छूटो, और तत्काल फीरे कलानकी वृद्धि पाई ॥ ३६ ॥ हमहूं तहां स्नान करि देवता पितरनकों तर्पण करि अनेक गुणसंयुक्त अन्नकरि उत्तम ब्राह्मणनकों भोजन करवाई ॥३७॥ श्रद्धा करि महान् सत्पात्रनविषें बीज बोइ, तिन दाननकरिकें पापनको तरैंगे, जैसें नावकरि समुद्र तरें है ॥ ३८ ॥ हे राजन् परीक्षित ! या भांति जब श्रीभगवान्नें आज्ञा दीनी तब

तन्निरीक्ष्योद्धवो राजञ्छ्रुत्वा भगवतोदितम् ॥ दृष्ट्वा-
ऽरिष्टानि घोराणि नित्यं कृष्णमनुव्रतः ॥ ४० ॥ वि-
विक्त उपसङ्गम्य जगतामीश्वरेश्वरम् ॥ प्रणम्य शि-
रसा पादौ प्राञ्जलिस्तमभाषत ॥ ४१ ॥ उद्धव उवाच ॥
देवदेवेश योगेश पुण्यश्रवणकीर्तन ॥ संहृत्यैतत्कुलं
नूनं लोकं सन्त्यक्ष्यते भवान् ॥ विप्रशापं समर्थोऽपि
प्रत्यहन्न यदीश्वरः ॥ ४२ ॥ नाहं तवाङ्घ्रिकमलं क्षणा-
र्धमपि केशव ॥ त्यक्तुं समुत्सहे नाथ स्वधाम
नय मामपि ॥ ४३ ॥ तव विक्रीडितं कृष्ण नृणां
परममङ्गलम् ॥ कर्णपीयूषमास्वाद्य त्यजत्यन्य-
स्पृहां जनः ॥ ४४ ॥

यादव चलिवेकों उद्यम करत भये. तीर्थके लिये रथ जोरि सिद्ध कीने ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! ता समय यादवनकों प्रभासयात्राकों उद्यम देख और श्रीकृष्णके वचन सुनि और घोर उत्पातनको देखि नित्य श्रीकृष्णकों समीप रहिवेवारे उद्धवजी ॥ ४० ॥ एकांत विषें निकट जाइ जगतके ईश्वरनके ईश्वरके पायनकों माथेसों नमस्कार करिकै हाथ जोरि बोलत भये ॥ ४१ ॥ हे देवदेवेश हे योगेश हे पुण्यश्रवण-कीर्तन ! तुह्मारी ऐसी इच्छा जानी जाईहै कि या कुलकों संहार करिके निश्चय करि भूलोकको छोड्यो चाहोहो, जातें तुम ईश्वर संपूर्ण कार्य्य करवेकों समर्थ हो पर विप्रशाप न निवार्‍यो ॥ ४२ ॥ हे केशव हे नाथ ! मैं तुम्हारे चरणकमल छोडिवेकों अर्द्धक्षणहू उत्साह नहीं करोहौ, मोहूको तुम अपने धामको ले चलो ॥ ४३ ॥ हे कृष्ण ! तुम्हारी लीला मनुष्यनकों परम मंगलदायक हैं श्रवणेन्द्रियको

शय्यासनाटनस्थानस्नानक्रीडाशनादिषु ॥ कथं त्वां प्रियमात्मानं वयं भक्तास्त्यजेमहि ॥ ४५ ॥ त्वयोपभुक्तस्रग्गन्धवासोऽलङ्कारचर्चिताः ॥ उच्छिष्टभोजिनो दासास्तव मायां जयेमहि ॥ ४६ ॥ वाताशना य ऋषयः श्रमणा ऊर्ध्वमन्थिनः ॥ ब्रह्माख्यं धाम ते यान्ति शान्ताः संन्यासिनोऽमलाः ॥४७॥ वयं त्विह महायोगिन् भ्रमन्तः कर्मवर्त्मसु ॥ त्वद्वार्तया तरिष्यामस्तावकैर्दुस्तरं तमः ॥ ४८ ॥ स्मरन्तः कीर्तयन्तस्ते कृतानि गदितानि च ॥ गत्युत्स्मितेक्षणक्ष्वेलि यन्नृलोकविडम्बनम् ॥ ४९ ॥

अमृतरूप है, ताकों आस्वाद लेकें मनुष्य औरकी इच्छाकों छोडै है, हम तुम्हारे दिन रात्रिके सेवक हैं ॥ ४४ ॥ शयन आसन गमन स्नान क्रीडा भोजनकों आदि ले औरहू क्रियानमें सदा संग रहें हैं; ते हम भक्तप्रिय आत्मारूप तुमकों कैसे छोड़िसकें ॥ ४५ ॥ तुह्मारे समीप तुह्मारे प्रसादकी माला सुगंध चंदन प्रसादी वस्त्रसों चर्चित होइकै बाह्य शुद्ध होयहै, पीछें तुह्मारो उच्छिष्ट महाप्रसाद भोजनकरि अंतरशुद्धि करिकें तुह्मारी मायाकों जीते हैं ॥ ४६ ॥ जे वायु भक्षण करि रहे हैं, दिगंबर हैं शमयुक्त हैं जितेन्द्रिय हैं, संन्यासी हैं, निर्मलचित्त हैं, आत्मविद्यामें जिनने श्रम कियोहै, वे ऋषि अनेक क्लेश करि तुह्मारे वैकुंठधामको पावे हैं ॥ ४७ ॥ हे महायोगीश्वर ! हम तो तुह्मारे भक्तनके संग तुह्मारी वार्त्ता करते सकल कर्मनमें भ्रमतेहू दुस्तर तुह्मारी मायाको तरेंगे ॥४८॥ मनुष्यलोकनकों आश्चर्यदायक तुह्मारे कर्म वचन गावते हास्य चितवनि हास्यकी वार्ता और जो

श्रीशुक उवाच ॥ एवं विज्ञापितो राजन् भगवान् देव-
कीसुतः ॥ एकान्तिनं प्रियं भृत्यमुद्धवं समभाषत
॥५०॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादश-
स्कंधे षष्ठोऽध्यायः॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः ।

श्रीभगवानुवाच ॥ यदात्थ मां महाभाग तच्चिकीर्षि-
तमेव मे ॥ ब्रह्मा भवो लोकपालाः स्ववर्वासं मेऽभिका-
ङ्क्षिणः॥ १ ॥ मया निष्पादितं ह्यत्र देवकार्यमशे-
षतः॥ तदर्थमवतीर्णोऽहमंशेन ब्रह्मणार्थितः ॥ २ ॥

कछु मनुष्यलोकमें लीला करी है वाको स्मरण कीर्तन करैंगे यासौंही तरजायेंगे मैं यह मायाके भयसों प्रार्थना नहीं करूंहूं परन्तु आपको संग छोडो नहीं जाय है ॥ ४९ ॥ हे राजन् ! या भांति उद्धवजीकी विनती सुनि भगवान् श्रीकृष्ण सदा निकटवर्ती परम प्रिय भक्त उद्धवसों बोलतभये ॥ ५० ॥

इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां एकादशस्कंधेषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

उद्धवके ज्ञानकी सिद्धिकों हरि आपु अवधूतके इतिहास करि कहैं हैं, गुरुनविषे आठ गुणनकों सातवें अध्यायमें वर्णन करैंगे ॥ श्रीकृष्ण उद्धवसों कहैं हैं हे महाभाग ! उद्धव ! तुमने जो मोसो कह्यो सो सब मोको करनोइ है, ब्रह्मा महादेव लोकपाल ये सब स्वर्ग जाइवेके अर्थ मेरी प्रार्थना करि गये हैं ॥ १ ॥ मैंने यहां वह सब देवकार्य सिद्धि कियो, जाके अर्थ ब्रह्माकी प्रार्थनासों बलदेवसहित मैं अवतर्यो हौं ॥ २ ॥

कुलं वै शापनिर्दग्धं नङ्क्ष्यत्यन्योन्यविग्रहात् ॥ समुद्रः सप्तमेऽह्न्येतां पुरीं च प्लावयिष्यति ॥ ३ ॥ तर्ह्येवायं मया त्यक्तो लोकोऽयं नष्टमङ्गलः ॥ भविष्यत्यचिरात्साधो कलिनापि निराकृतः ॥ ४ ॥ न वस्तव्यं त्वयैवेह मया त्यक्ते महीतले ॥ जनोऽधर्मरुचिर्भद्र भविष्यति कलौ युगे॥५॥ त्वं तु सर्वं परित्यज्य स्नेहं स्वजनबन्धुषु ॥ मय्यावेश्य मनः सम्यक् समदृग् विचरस्व गाम् ॥ ६ ॥ यदिदं मनसा वाचा चक्षुर्भ्यां श्रवणादिभिः ॥ नश्वरं गृह्यमाणं च विद्धि मायामनोमयम् ॥ ७ ॥ पुंसोऽयुक्तस्य नानार्थो भ्रमः स गुणदोषभाक् ॥ कर्माकर्म विकर्मेति गुणदोषधियो भिदा ॥ ८ ॥

हमारो कुल रह्यो है सो शाप करि जरि रह्यो है, तातें निश्चयकर परस्पर विग्रहनतें नष्ट होइगो, और आजुतें सातवें दिन या पुरीको समुद्रडुबावेगो ॥ ३ ॥ जा दिन मैं या लोकको छोडोंगों, तादिन यह नष्टमंगल होइगो, हे उद्धव ! फेरि कलियुगहू प्रवृत्त होइ करि सब धर्म दूरि करैगो, थोरेही कालमें या लोकको निरादर करैगो ॥ ४ ॥ मेरे त्याग किये महीतल विषें तुम मति वसिवो, हे उद्धव ! कलियुगमें मनुष्यनकी प्रीति अधर्ममें होइगी ॥ ५ ॥ हे उद्धव ! तुम तो स्वजन बंधु कुटुंबमें सब स्नेह छोडि मेरे स्वरूपमें चित्त राखि समदृष्टि ह्वैकें पृथिवीमें फिरो ॥६॥ या संसारमें दृष्टि मति राखियो, वचन नेत्र श्रवणादिक करिकें जो ग्रहण कियो है सो सब झूंठो मायाको रच्यो यह मनहू मिथ्या है यह जानो ॥ ७ ॥ विक्षिप्त चित्तवारे पुरुषको वेदार्थ अनेक भांति दीखे हैं सो भ्रमें हैं,

तस्माद्युक्तेन्द्रियग्रामो युक्तचित्त इदं जगत् ॥ आ-
त्मनीक्षस्व विततमात्मानं मय्यधीश्वरे ॥ ९ ॥ ज्ञान-
विज्ञानसंयुक्त आत्मभूतः शरीरिणाम् ॥ आत्मानु-
भवतुष्टात्मा नान्तरायैर्विहन्यसे ॥१०॥ दोषबुद्ध्यो
भयातीतो निषेधान्न निवर्तते ॥ गुणबुद्ध्या च विहितं
न करोति यथार्भकः ॥ ११ ॥ सर्वभूतसुहृच्छान्तो
ज्ञानविज्ञाननिश्चयः ॥ पश्यन् मदात्मकं विश्वं न
विपद्येत वै पुनः ॥१२॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यादिष्टो
भगवता महाभागवतो नृप ॥ उद्धवः प्रणिपत्याह
तत्त्वजिज्ञासुरच्युतम् ॥ १३ ॥

गुणदोषसंयुक्त हो कर्म अकर्म विकर्म भेद गुणदोष बुद्धिवारेको हैं समदृष्टि आत्मज्ञानवंतको यह भेद नहीं ॥८॥ तातें तुम तो उद्धवजी सब इंद्रियवश करि चित्त अपने वश करि या विशाल जगत्को अपनपेमें देखो, आपुको परमेश्वरमें ब्रह्मरूप करि देखो ॥ ९ ॥ जो कहो कि विघ्न बहुत हैं कैसें देखो ताको उत्तर है,वेदके अभिप्रायको निश्चय और वाके अर्थको अनुभव मिलाय आत्माके ज्ञानसौंही संतुष्ट और देवता आदिहू आत्मरूप जानोगे तब कोई विघ्न नहीं करैगो जबतक आत्मज्ञानकी प्राप्ति न होय तबतक वर्णके अनुसार कर्म करै अनुभव प्राप्त हैवेपै विघ्नसों कछु नहीं होयहै ॥१०॥ गुण दोष बुद्धिते रहित भयो यह पहिले कर्मनके संस्कारतें निषिद्ध कर्मनते निवर्त होयहै, किन्तु न दोष बुद्धिसो बहुधा विहित कर्मको करैहै न गुण बुद्धिसो जैसे बालक गुण दोष विचारिकै कर्म विकर्ममें प्रवृत्त निवृत्त नहीं होय है ॥११॥ सब प्राणीनको मित्र होइ, ज्ञान विज्ञानको निश्चय होइ सब विश्वको मेरो रूप करि देखे,तब फेरि संसार न पावे॥१२॥शुकदेवजी

उद्धव उवाच ॥ योगेश योगविन्यास योगात्मन् योगसंभव ॥ निःश्रेयसाय मे प्रोक्तस्त्यागः संन्यासलक्षणः ॥१४॥ त्यागोऽयं दुष्करो भूमन् कामानां विषयात्मभिः ॥ सुतरां त्वयि सर्वात्मन्नभक्तैरिति मे मतिः ॥ १५ ॥ सोऽहं ममाहमिति मूढमतिर्विगाढस्त्वन्मायया विरचितात्मनि सानुबन्धे ॥ तत्त्वञ्जसा निगदितं भवता यथाहं संसाधयामि भगवन् ननु शाधि भृत्यम् ॥ १६ ॥ सत्यस्य ते स्वदृश आत्मन आत्मनोऽन्यं वक्तारमीश विबुधेष्वपि नानुचक्षे ॥ सर्वे विमोहितधियस्तव माययेमे ब्रह्मादयस्तनुभृतो बहिरर्थभावाः ॥ १७ ॥

राजा परीक्षितसों कहै हैं हे राजन् ! भगवाननें ऐसे समझायो परम भागवत उद्धव प्रणाम करि तत्वज्ञानकी इच्छा करि श्रीकृष्णसों बोलत भये ॥ १३ ॥ उद्धवजी बोले हे योगके फलदाता, हे योगके आधार, हे योगरूप, हे योगके कारण ! मेरे मोक्षके अर्थ यह संन्यासरूप त्याग मोसों कह्यो,सो अपनी सहज दयातें कह्यो, मैं तो ऐसो अधिकारी नहीं हूं ॥ १४ ॥ हे सर्वव्यापक हे सबके आत्मा ! यह विषयनको त्याग सकामी पुरुषनको अशक्य है और जो तुह्मारे भक्त नही है विनको विशेष करि अति कठिन है मेरी बुद्धि तो यह कहैहै ॥ १५॥ जो मोसों तुम त्याग कहो हो, महाराज मैं तो अहंता ममता करि मूढमति हों तुह्मारी माया करि उपजे पुत्र कलत्र देह आदिमें मग्न हो हे भगवन् ! तातें जैसे यह सब तुह्मारो कह्यो मैं विना परिश्रम सदा करिसको तैसी मोको तुम शिक्षा देउ ॥१६॥ तुम समानरूप हो

तस्माद्भवन्तमनवद्यमनन्तपारं सर्वज्ञमीश्वरमकुण्ठ-
विकुण्ठधिष्ण्यम् ॥ निर्विण्णधीरहमु ह वृजिनाभि-
तप्तो नारायणं नरसखं शरणं प्रपद्ये ॥१८॥ श्रीभग-
वानुवाच ॥ प्रायेण मनुजा लोके लोकतत्त्वविचक्ष-
णाः ॥ समुद्धरन्ति ह्यात्मानमात्मनैवाशुभाशयात्
॥१९॥ आत्मनो गुरुरात्मैव पुरुषस्य विशेषतः ॥ यत्
प्रत्यक्षानुमानाभ्यां श्रेयोऽसावनुविन्दते ॥२०॥

स्वप्रकाश हो आत्मा हो, हे ईश! तातें मोको और ऐसो वक्ता देवतानमेंहूं कोऊ नहीं देखिपडें है, ये ब्रह्मादिक देहधारी तो तुह्मारी माया करि मोहितबुद्धि हैं, बाहरके विषयनमें इनकी अर्थ बुद्धि है ॥ १७ ॥ कोई एक प्रभु दुष्टशील है कोऊ एक ऐसे है जो सेवा करवेसौं फल काल विषें नष्ट होय हैं कोऊ अज्ञानी हैं कोऊ रक्षाविषें असमर्थ हैं कोई स्थानभ्रष्ट हैं तातें संसारदुःखते अतीत नहीं मैं अतिविरक्तचित्त हों तुह्मारी शरण आयोहूं तुम तो निंदा रहित हो तुह्मारो कालतें अंत देशतें पार नहीं, सर्वज्ञ हो, ईश्वर हो, तुह्मारे नाश रहित वैकुंठस्थान है, तुम सब जीवनको आश्रय हो, जीवके सखाहो ॥ १८ ॥ तब श्रीभगवान् बोलते भये जे लोक तत्वको अतिश्रेष्ठ जाने हैं, मनुष्य बहुधा गुरु विना आपही अपने आत्माको संसारसों उद्धार करते हैं गुरुके उपदेशकी अपेक्षा नहीं करते ॥१९॥ अपनों गुरु आपही है, विशेष कर पुरुष जो यह प्रत्यक्षकरि अथवा अनुमान करि विचारे तो आपहीतें सुख पावे सहजसौं अपने स्वरूपकी प्राप्ति होय पशुनकों अपनें हितज्ञानकों कौन गुरु है आपुहीतें अपनें हितमें प्रवृत्त होय है,तातें आपकों आपुही गुरु है तहां प्रत्यक्षज्ञान दिखामें हैं जब जीव पुरुष जन्म पावै हैं तब यह ज्ञानमार्गमें

पुरुषत्वे च मां धीराः साङ्ख्ययोगविशारदाः॥ आवि-
स्तरां प्रपश्यन्ति सर्वशक्त्युपबृंहितम्॥ २१ ॥ एक-
द्वित्रिचतुष्पादो बहुपादस्तथापदः ॥ बह्वयः सन्ति
पुरः सृष्टास्तासां मे पौरुषी प्रिया ॥ २२ ॥ अत्र मां
मार्गयन्त्यद्धा युक्ता हेतुभिरीश्वरम्॥ गृह्यमाणैर्गुणै-
र्लिङ्गैरग्राह्य मनुमानतः ॥२३ ॥ अत्राप्युदाहरन्तीम-
मितिहासं पुरातनम्॥ अवधूतस्य संवादं यदोरमित-
तेजसः ॥२४॥ अवधूतं द्विजं कंचित् चरन्तमकुतोभ-
यम्॥ कविं निरीक्ष्य तरुणं यदुः पप्रच्छ धर्मवित्
॥२५॥ यदुरुवाच ॥ कुतो बुद्धिरियं ब्रह्मन्नकर्तुः सुवि-
शारदा॥यामासाद्य भवाँल्लोकं विद्वांश्चरति बालवत्२६

निपुणहोय है ॥ २० ॥ मनुष्य शरीरमें आत्मा अधिक प्रत्यक्ष है यह सांख्ययोगमें चतुर बुद्धिवारे धीर पुरुषनको निश्चय है ॥ २१ ॥ वे शक्तियुक्त मोकों प्रत्यक्ष देखे हैं मेरे उपजाये बहुतरूप शरीर हैं कोऊ एक चरण है, कोऊ अर्द्ध चरण है, कोऊ नीचे चरण हैं, कोऊ चारि चरण है कोऊ बहुत चरण है, कोऊ चरणरहित है, तिन सबनमें जो पुरुषरूप देह है सो मोकों प्रिय है ॥ २२ ॥ या पुरुष देहमें जे सावधान हैं ते अहंकारादिकनतें रहित मोको प्रगट ढूंढे हैं बुद्धि आदि यत्ननकों एक स्वप्रकाश आत्मा विना प्रकाश नहीं होसकै है ऐसो अनुमान करि ढूंढेहैं ॥ २३ ॥ या विषयमें बडे तेजस्वी राजा यदुको और अवधूतको यह संवादरूप प्राचीन इतिहास कहै है ॥ २४ ॥ एक ब्राह्मण पंडित तरुण वेष फिरते २ सर्वत्र निर्भय रहे ताको देखिके धर्मके ज्ञाता यदु पूछत भये ॥२५॥हे ब्रह्मन् ! अकर्त्ता

प्रायो धर्मार्थकामेषु विवित्सायां च मानवाः॥ हेतु-
नैव समीहन्ते आयुषो यशसः श्रियः॥२७॥ त्वं तु
कल्पः कविर्दक्षः सुभगोऽमृतभाषणः॥ न कर्ता नेह-
से किंचिज्जडोन्मत्तपिशाचवत् ॥२८॥ जनेषु दह्य-
मानेषु कामलोभदवाग्निना॥ न तप्यसेऽग्निना मुक्तो
गङ्गाम्भःस्थ इव द्विपः॥२९॥ त्वं हि नः पृच्छतां
ब्रह्मन्नात्मन्यानन्दकारणम् ॥ ब्रूहि स्पर्शविहीनस्य
भवतः केवलात्मनः॥३०॥ श्रीभगवानुवाच॥ यदुनैवं
महाभागो ब्रह्मण्येन सुमेधसा ॥ पृष्टः सभाजितः
प्राह प्रश्रयावनतं द्विजः॥३१॥

तुमकों ऐसी निपुण मति कहांतें भई है, जाको पाइकरि अवधूत पंडित तुम बालककी भांति या लोकमें विचरे हो॥ २६ ॥ बहुधा मनुष्य अर्थ धर्म कामना विषें और आत्माके विचार विषें आयुर्दाय कीर्ति श्रीकी कामनाकरि प्रवृत्त होयहैं ॥ २७ ॥ तुम कछु नहीं चाहो हो, न कोऊ कर्म करोहो, जड उन्मत्त पिशाचकी भांति हो, और सब कार्य कारणकों समर्थ पूरण ज्ञानवान हो, अति प्रवीण हो, सुंदर हो, उत्तम मधुर वाणी है॥ २८॥ मनुष्य काम लोभ रूप दावानल करि जरे हैं, तामें तुम वा तापसों संतप्त नहीं हो जैसे अग्नितें छूट्यो गंगामें ठाढो हाथी वा तापसों तप्त नहीं होइ हैं॥ २९॥ हे ब्रह्मन्! तुम विषयभोग रहित हो कलत्र आदिकर शून्य हो, आनंद-रूप हो, हम तुमको पूछे हैं तुह्मारे आनंदको कारण कहाहै, सो हमसों कहो॥ ३०॥ तब श्रीकृष्ण उद्धवजीसो कहै हैं हे उद्धव! अति ब्रह्मण्य सुबुद्धि राजाने यह विनयपूर्वक पूजा करि पूछे तब

ब्राह्मण उवाच ॥ सन्ति मे गुरवो राजन्बहवो बुद्ध्युपाश्रिताः ॥ यतो बुद्धिमुपादाय मुक्तोऽटामीह ताञ्छृणु ॥ ३२ ॥ पृथिवी वायुराकाशमापोऽग्निश्चन्द्रमा रविः ॥ कपोतोऽजगरः सिन्धुः पतङ्गो मधुकृद्गजः ॥ ॥ ३३ ॥ मधुहा हरिणो मीनः पिङ्गला कुररोऽर्भकः ॥ कुमारी शरकृत्सर्प ऊर्णनाभिः सुपेशकृत् ॥ ३४ ॥ एते मे गुरवो राजंश्चतुर्विंशतिराश्रिताः ॥ शिक्षावृत्तिभिरेतेषामन्वशिक्षमिहात्मनः ॥३५॥ यतो यदनुशिक्षामि यथा वा नाहुषात्मज ॥ तत्तथा पुरुषव्याघ्र निबोध कथयामि ते ॥ ३६ ॥ भूतैराक्रम्यमाणोऽपि धीरो दैववशानुगैः ॥ तद्विद्वान्न चलेन्मार्गादन्वशिक्षं क्षितेर्व्रतम् ॥ ३७ ॥

महाभाग अवधूतजी यदु राजासो बोलते भये ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! मेने अपनी बुद्धि करिकै बनाये ऐसे मेरे बहुत गुरु हैं, जिनते मैं बुद्धि पाइकरि मुक्त भयो हौं, या लोकमें फिरोहो तिनको सुनो ॥ ३२ ॥ पृथ्वी १ वायु २ आकाश ३ जल ४ अग्नि ५ चंद्रमा ६ सूर्य ७ कपोत ८ अजगर ९ सिंधु १० पतंग ११ मधुकृत् १२ गज १३ ॥ ३३ ॥ मधुहा[२] १४ मृग १५ मीन १६ पिंगला १७ कुरर[३]पक्षी १८ बालक १९ कुमारी २० कर्डेडो २१ सांप २२ मकरी २३ भृंगी २४ ॥ ३४ ॥ हे यदुराज ! मैंने चौबीस गुरू सेवन किये हैं, इनके आचरण करिकें आपको सीखिवे योग्य अर्थ सीखत भयो ॥ ३५ ॥ हे ययातिके बेटा हे पुरुषसिंह ! जहां जातें जो जैसी शिक्षा लिनी हैं सोतैसी कहोंहों तुम सुनो ॥ ३६ ॥ तहां पहिलें भूमिते क्षमा सीखी है

---

१ मुहारकी माखी ॥ २ भोरा ॥ ३ चील ॥ ४ वाण सुधो करनवारो कारीगर ॥

शश्वत्परार्थसर्वेहः परार्थैकान्तसंभवः ॥ साधुः शि-
क्षेत भूभृत्तो नगशिष्यः परात्मताम् ॥ ३८ ॥ प्राण-
वृत्त्यैव संतुष्येन्मुनिर्नैवेन्द्रियप्रियैः ॥ ज्ञानं यथा न
नश्येत नावकीर्येत वाङ्मनः ॥ ३९ ॥ विषयेष्वा-
विशन्योगी नानाधर्मेषु सर्वतः ॥ गुणदोषव्यपेतात्मा
न विषज्जेत वायुवत् ॥ ४० ॥

सो कहें हैं पृथ्वीकों सब प्राणी खूंदते हैं तोहू यह अपने नियमसे चलायमान नहीं होय है ऐसैंही दैवके वशीभूत प्राणी धीर पुरुषको कष्ट देय है तोहू विनके दैवाधीनपनको जान्वेवारे वा पुरुषको अपने नियमसों चलायमान होनौ उचित नहीं यह पृथ्वीते सीख्यो है ॥ ३७ ॥ पृथिवी दो भांतिकी है एक तो पर्वतरूप एक वृक्षरूप तहांते जो सीख्यो है सो कहें है पर्वतकी जो वस्तु है वृक्ष तृण झिरणा फूल फल वे सदा पराये अर्थ हैं, और पर्वतको केवल जन्महूं परायेही अर्थ है, अपने स्वार्थ कछु नहीं, तैसे अपनी वस्तु सब देह परोपकारार्थ करिये यह पर्वतरूप भूमितें सीखो हैं, और वृक्षहू पराये आधीन है जो कोऊ काटे उखारे तोहू वे वृक्ष सहे है वैसें साधुहू जो कोउ अपने संग भलौ बुरो करै वाको सहैं हो ॥ ३८ ॥ अब वायुको कहे हैं पवनहू दो भांतिकी है एक तो प्राणरूप है दूसरी बाहर फिरें हैं तहां प्राण जैसे आहारमात्र करि संतुष्ट रहे हैं, और इंद्रियनके भोग नहीं चाहैं तैसे मुनीश्वरहू रहैं आहार जो न मिले तो मन वचन विक्षित ह्वैकैं ज्ञान सिद्धि न होइ तातें एक आहार मात्रतें संतोष मानिलेइ, यातें अधिक न चाहैं, यह विद्या प्राणवायुतें सीखी हैं ॥ ३९ ॥ जैतें पवन सर्वत्र चलेहैं पर कहूं आसक्त नहीं होयहै ऐसें योगिराजहू शीत उष्ण आदि नाना धर्मवारे विषयभोग सेवन करतोहू आसक्त न होइ सबमें

पार्थिवेष्विह देहेषु प्रविष्टस्तद्गुणाश्रयः ॥ गुणैर्न युज्यते योगी गन्धैर्वायुरिवात्मदृक् ॥ ४१ ॥ अन्तर्हितश्च स्थिरजङ्गमेषु ब्रह्मात्मभावेन समन्वयेन ॥ व्याप्त्याऽव्यवच्छेदमसङ्गमात्मनो मुनिर्नभस्त्वं विततस्य भावयेत् ॥४२॥ तेजोऽबन्नमयैर्भावैर्मेघाद्यैर्वायुनेरितैः ॥ न स्पृश्यते नभस्तद्वत्कालसृष्टैर्गुणैः पुमान् ४३॥

गुणदोषरहित मन होइ, यह बाहिरकी वायुतें सीखो है ॥४०॥ औरहू एक बात पवनतें सीखीहै सो कहैं हैं वायु सुगंधसों मिलीही चले है, ऐसे जानी जाइहै परंतु वायु गंधसो मिल्यो नहीं, गंध कछू वायुको गुण नहीं, पृथिवीको गुण है, तैसे आत्मा पृथिवीके विकार देहमें प्रविष्ट है देहके धर्मको आश्रय है, पर मिल्यो नहीं, देहनतें न्यारो है ऐसें समझे सब ठौर आत्माहीकों देखे यह विद्याहू पवनतें सीखी तातें वायु गुरु भयो ॥ ४१ ॥ अब आकाशतें सीखी विद्या कहैहै जैसें आकाश सर्वत्र व्यापक है बडो है, और घटमें छोटो देखियेहै परि घटसौं आकाशको संबंध नहीं, वह निर्विकार है तैसें आत्मा या देहमें है, और यह देहसों मिल्योहै तातें इतनोइ है, और ठौर नहीं ऐसें न समझे; जो आत्मा देहमें है सोइ सर्वत्र है, जैसें आकाश सब ठौर है तैसे स्थावर जंगम विषें ब्रह्म व्यापक है और घडाके फूटवेमें आकाश नहीं फूटै ऐसैही देहके नाशमें आत्माको नाश नहीं होयहै आकाशतें यह एक विद्या सीखीहै ॥ ४२ ॥ द्वितीय वायु कहै जैसें पवनके प्रेरेतें तेज जल पृथिवीमय मेघादिक आकाशमें व्याप्त होयहैं पर मेघादिकनसों आकाशको स्पर्श नहीं वह निर्लेप हैं तैसें यह पुरुष कालकरि सृजे पंचभूत रूप या देहसों संयुक्त है, विनको विनके संगस्पर्श नहीं है ये धर्म आकाशते सीख्यो ॥ ४३ ॥

स्वच्छः प्रकृतितः स्निग्धो माधुर्यस्तीर्थभूर्नृणाम् ॥
मुनिः पुनात्यपां मित्रमीक्षोपस्पर्शकीर्तनैः ॥ ४४ ॥
तेजस्वी तपसा दीप्तो दुर्धर्षोदरभाजनः॥सर्वभक्षोऽपि
युक्तात्मा नादत्ते मलमग्निवत् ॥ ४५ ॥ क्वचिच्छन्नः
क्वचित् स्पष्ट उपास्यः श्रेय इच्छताम् ॥ भुङ्क्ते सर्वत्र
दातॄणां दहन्प्रागुत्तराशुभम् ॥४६॥ स्वमायया सृष्ट-
मिदं सदसल्लक्षणं विभुः ॥ प्रविष्ट ईयते तत्तत्स्व-
रूपोऽग्निरिवैधसि ॥ ४७ ॥

जलतें सीख्यो से कहेहैं, जैसें स्वभावहीतें जल अति निर्मल है तैसें मुनिहूं निर्मल होइ,सबके ऊपर स्नेह करे, मीठो बोले जलहू मधुर है जैसें जल तीर्थ स्थान है मनुष्यनकों पापतें छुडावेहै तैसें मुनीश्वरहू दर्शन स्पर्शन कीर्तन करि सबनकों पवित्र करें ये गुण जलते सीखो है ॥४४ ॥ अब अग्निकी शिक्षाकहेहै जैसे अग्नि अति तेजस्वी है, तेजकरि दीप्त है, अति दुःसह है, और वाकौ उदरही पात्र है जो होम करेहैं सो अग्निके उदरहीमें डारे हैं तातें वही पात्र है, संपूर्ण वस्तुको भखेहै, तोहू पवित्र करनवारी है तैसे मुनीश्वरहू होई ॥ ४५ ॥ और अग्निको धर्म कहैं जैसें अग्नि कहूं गुप्त है कहूं प्रगट है जे अपनो कल्याण चाहेहैं तिनकों उपास्य है, दाताकी इच्छासौ सर्वत्र हविष्य लेइहै, विनके भूत भावी वर्त्तमान पाप सब दूरि करै है तैसे मुनि रहै ॥ ४६ ॥ औरहू अग्नितें सीख्यो है जैसे अग्नि एक रूप है बहुत ईंध-नसें बहुतभांति बडी दीखेहै, थोरे भये छोटी दीखेही है ऐसेंही जीवात्मा एकरूप है, न छोटो हैं न बडो है, अपनी अविद्या करि उपजाये ऊंच नीच भेद संयुक्त देहमें प्रविष्ट भयो ऊंच रूपसों दीखेहै ॥ ४७ ॥

विसर्गाद्याः श्मशानान्ता भावा देहस्य नात्मनः॥ कलानामिव चन्द्रस्य कालेनाऽव्यक्तवर्त्मना॥ ४८॥ कालेन ह्योघवेगेन भूतानां प्रभवाप्ययौ॥ नित्यावपि न दृश्येते आत्मनोऽग्नेर्यथार्चिषाम् ॥ ४९ ॥ गुणैर्गुणानुपादत्ते यथाकालं विमुञ्चति॥ न तेषु युज्यते योगी गोभिर्गा इव गोपतिः॥ ५०॥ बुध्यते स्वेन भेदेन व्यक्तिस्थ इव तद्गतः॥ लक्ष्यते स्थूलमतिभिरात्मा चावस्थितोऽर्कवत् ॥ ५१॥

जन्मकों आदि लेके मरणपर्यंत धर्म देहीके हैं, आत्माके नहीं सो दृष्टांत कहैहैं, जैसे चंद्रमाकों मंडल सदा पूर्ण एकरूप है, नित्य वृद्धि और क्षय जो देखौ जाय है सो कलानको है जितनो सूर्य मंडलतें नित्त न्यारो परैहै, तितनो दीखैहै ज्यों ज्यों मंडलके नीचें दबैहै, त्यों त्यों घटैहै, तैसो आत्मा एकरूप है, अप्रगट गति कालकरि जन्म मरणादिक भाव देहकों होयहै आत्माको नहीं यह ज्ञान चंद्रमातें पायोहै, यातें चंद्रमा गुरू है॥ ४८॥ अब वैराग्यमें अग्नितें सीख्यो हैं सो कहै है जैसो अग्निको स्वरूपसों नाश कभू नहीं होयहै अग्निकी ज्वालाको नाश होयहै परि दीखै नहीं तैसे कालनदीके वेगसों जन्म मरण या देहहीको है, आत्माको नहीं आत्मा तो नित्य॥ ४९॥ अब सूर्यतें जो जो सीख्यो सो कहैहैं, जैसें सूर्य अपनी किरणनसों जल सोखैहैं, फेरी वर्षा समय वही जल छोडैहै, परि वामें आसक्त नहीं है तैसें योगी इंद्रिय अपेक्षित पदार्थनकों ग्रहण करै और कोई याचना करै तो तत्काल दे देय ममता न रखै और बुरी भली सब जगे सूर्यकी घाम परैहै पन कछू सूर्य आसक्त नहीं होय और दूषित नहीं होयहै ऐसीही योगी रहै॥ ५०॥ जैसे सूर्य आकाशमें अपने

नातिस्नेहः प्रसङ्गो वा कर्तव्यः क्वापि केनचित् ॥ कुर्वन् विन्देत संतापं कपोत इव दीनधीः ॥ ५२ ॥ कपोतः कश्चनारण्ये कृतनीडो वनस्पतौ ॥ कपोत्या भार्यया सार्धमुवास कतिचित् समाः ॥५३॥ कपोतौ स्नेहगुणितहृदयौ गृहधर्मिणौ ॥ दृष्टिं दृष्ट्याङ्गमङ्गेन बुद्धिं बुद्ध्या बबन्धतुः ॥ ५४ ॥ शय्यासनाटनस्थानवार्ताक्रीडाशनादिकम् ॥ मिथुनीभूय विस्रब्धौ चेरतुर्वनराजिषु ॥ ५५ ॥ यं यं वाञ्छति सा राजंस्तर्पयन्त्यनुकम्पिता ॥ तं तं समनयत् कामं कृच्छ्रेणाप्यजितेन्द्रियः ॥ ५६ ॥

स्वरूपमें रहे है एकही हैं परन्तु जलादिमें प्रतिबिम्ब पडवैसौ अनेकरूपी दीखै है याही प्रकार आत्मा स्वरूपसौ भिन्न नहीं है देहादिकमें प्राप्त है वेसौ स्थूल बुद्धिवारनको अनेक रूपको प्रतित होयहै ॥५१॥ कपोतते सीख्यो सो कहैहै कहूं काहूसो अधिक स्नेह न करे काहूमें आसक्त न होइ, जो संग करेहै वो संताप पावेहै दीन मति होइहै जैसें कपोतकों भयो ॥ ५२ ॥ सो कपोतकी कथा कहे है, एक कपोत वनमें वृक्षपै अपनों घर बनाइ कपोतिनी अपनी स्त्रीसों मिलिकै कितनेऊ वर्षतक दोनों बसतभये ॥ ५३ ॥ वे दोऊ स्त्री पुरुष कपोत कपोतिनी परम स्नेहसौ बधे भये दृष्टि दृष्टिसो बधि हृदय हृदयसो बध्यो अंग अंगसो बधे बुद्धि बुद्धिसे बधी ॥ ५४ ॥ शयन आसन गमन स्थान वार्ता क्रीडा भोजन एक ठौर बैठिकै करें, न्यारे न्यारे हैकै न करे, या प्रकार वे वननकी पंगतमें निःशंक भये फिरे ॥५५॥ वह कपोतिनी अपने हावभाव लावण्य मधुर भाषणसो प्रसन्नकर कपोतसौ दीन हैके जो जो वस्तु मांगे सो सो वस्तु अति कष्टहू करि

कपोती प्रथमं गर्भं गृह्णती काल आगते ॥ अण्डानि
सुषुवे नीडे स्वपत्युः सन्निधौ सती ॥ ५७ ॥ तेषु काले
ऽव्यजायन्त रचितावयवा हरेः॥ शक्तिभिर्दुर्विभाव्याभिः
कोमलाङ्गतनूरुहाः ॥ ५८ ॥ प्रजाः पुपुषतुः प्रीतौ
दम्पती पुत्रवत्सलौ॥ शृण्वन्तौ कूजितं तासां निर्वृतौ
कलभाषितैः ॥ ५९ ॥ तासां पतत्रैः सुस्पर्शैः कूजितैर्मुग्धचेष्टितैः ॥
प्रत्युद्गमैरदीनानां पितरौ मुदमापतुः
॥ ६० ॥ स्नेहानुबद्धहृदयावन्योन्यं विष्णुमायया ॥
विमोहितौ दीनधियौ शिशून् पुपुषतुः प्रजाः ॥ ६१ ॥
एकदा जग्मतुस्तासामन्नार्थौ तौ कुटुम्बिनौ॥ परितः
कानने तस्मिन्नर्थिनौ चेरतुश्चिरम् ॥ ६२ ॥

लेआवे, या भांति अजितेंद्रिय वाके आधीन भयो रहै ॥ ५६ ॥ एक समय प्रथमही गर्भवती भई पतिव्रता कपोतिनीने अपने समयके आये पतिके समीपही अपने घरमें अंडा दिये ॥ ५७ ॥ कछु समयपै विन अंडानमें अचिन्तनीय हरिकी शक्तिन करि हाथ पाउ आदि युक्त बच्चा भये और तिनके कोमल अंगमें रोम भये ॥ ५८ ॥ पीछें ये दोऊ कपोत कपोतनी प्रसन्न भये, अपनें बच्चानको पालत भये,पुत्रनमें स्नेह बहुत भयो, तिनके मधुर वचन सुनते अपनें बच्चानतें संतोष बहुत पावत भये ॥ ५९ ॥ विनके पंखनसों जब आपको स्पर्श होइ, तब बहुत सुख पावें,प्रसन्न होजाय अपनें पुत्रनकें मुखकी सुंदर चेष्टा विनके वचन अपनें निकट आइवो सो परम सुख मानि लेतभये ॥ ६० ॥ वा स्नेहसो बद्ध हृदय होइ हरिकी माया करि परस्पर मोहित भये अतिदीनबुद्धि ये स्त्रीपुरुष बच्चानकों पालत भये॥ ६१॥ एक दिन ये दोऊ

दृष्ट्वा ताँल्लुब्धकः कश्चिद् यदृच्छातो वनेचरः ॥ जगृहे
जालमावृत्य चरतः स्वालयान्तिके ॥ ६३ ॥ कपोत-
श्च कपोती च प्रजापोषे सदोत्सुकौ ॥ गतौ पोषणमा-
दाय स्वनीडमुपजग्मतुः॥६४ ॥ कपोती स्वात्मजान्
वीक्ष्य बालकान् जालसंवृतान् ॥ तानभ्यधावत् क्रो-
शन्ती क्रोशतो भृशदुःखिता ॥ ६५ ॥ साऽसकृत्स्ने-
हगुणिता दीनचित्ताऽजमायया ॥ स्वयं चाबध्यत
शिचा बद्धान् पश्यन्त्यपस्मृतिः ॥ ६६ ॥ कपोतश्चा-
त्मजान् बद्धानात्मनोऽप्यधिकान् प्रियान् ॥ भार्यां
चात्मसमां दीनो विललापातिदुःखितः ॥ ६७ ॥ अहो
मे पश्यतापायमल्पपुण्यस्य दुर्मतेः ॥ अतृप्तस्य कृ-
तार्थस्य गृहस्त्रैवर्गिको हतः ॥ ६८ ॥

कुटुंबी कपोत वनमें चारों ओर बालकनके अन्नके अर्थ बडी वेर अभिलाषासों फिरतभये ॥६२॥ अपनी इच्छातें वनमें फिरत कोऊ एक क्रूर वधिक अपनें घोसुवाके निकट चुगत बालकनकों देखि जाल रोपिकै पकरत भयो ॥ ६३ ॥ पीछे ये दोऊ कपोत कपोतनी सदा हर्षसंयुक्त प्रजाको चुगो चारो लेवेको गये ले अपनें घरमें आये ॥ ६४ ॥ तब वह कपोतिनी अपने बालकनकों जालमें अति दुःखित पुकारत देखि आपहू पुकारती दौरी ॥ ६५ ॥ वह कपोतिनी बहुत स्नेहकरि बंधी दुःखित चित्त जालमें बंधे बालकनकों देखि तहां हरिकी माया करि ज्ञान रहित भई जालमें आपुहू बधतिभई ॥ ६६ ॥ पीछें वह कपोतहू आपते अधिक प्यारे बच्चानको देखि और अपनें समान स्त्रीहूको बधी देखि अति दुःखी भयो विलाप करत भयो ॥६७॥ अहो देखो में अल्प पुण्यहूं मूर्ख हूं इन भोगनमें

अनुरूपानुकूला च यस्य मे पतिदेवता ॥ शून्ये गृहे
मां संत्यज्य पुत्रैः स्वर्याति साधुभिः ॥ ६९ ॥ सोऽहं
शून्ये गृहे दीनो मृतदारो मृतप्रजः ॥ जिजीविषे कि-
मर्थं वा विधुरो दुःखजीवितः ॥ ७० ॥ तांस्तथैवावृता-
ञ्छिग्भिर्मृत्युग्रस्तान्विचेष्टतः ॥ स्वयं च कृपणः शिक्षु
पश्यन्नप्यबुधोऽपतत् ॥ ७१ ॥ तं लब्ध्वा लुब्धकः क्रूरः
कपोतं गृहमेधिनम् ॥ कपोतकान्कपोतीं च सिद्धार्थः
प्रययौ गृहम् ॥ ७२ ॥ एवं कुटुम्ब्यशान्तात्मा द्वन्द्वा-
रामः पतत्रिवत् ॥ पुष्णन्कुटुम्बं कृपणः सानुबन्धो-
ऽवसीदति ॥ ७३ ॥

अबहू तृप्त नहीं भयो, देखो मैंनें कछू पुण्य नहीं कियो, धर्म अर्थ कामको साधक मेरो घर नष्ट भयो है ॥ ६८ ॥ यह स्त्री मोकों योग्य अनुकूल और पतिव्रता ही, सो आज मोकों सूनें घरमें छोडिकें साधु पुत्रन समेत स्वर्गको जायहै ॥ ६९ ॥ ऐसी स्त्री पुत्र सब मरे सो मैं दीन भयो, विधुर भयो, दुःखी भयो, या सूनें घरमें कौन अर्थ जीवे-की इच्छा करो मेरो जीवन दुःखरूप है ॥ ७० ॥ वह कपोत या भांति विलाप करत विन बालकनकों और अपनी प्रियाकों मृत्युकरि ग्रसे जालमें चेष्टा करत देखि दीन भयो आपुहू वा पुरुषके देख-तही जालमें परतभयो ॥ ७१ ॥ वा गृहस्थ कपोतको और कपोत-नीकों वाके बालकनकों पाइ कार्य्यसिद्ध भयो, तब वह क्रूर वधिक अपनें घरकोजातभयो ॥ ७२ ॥ अवधूत यदुसों कहैं हैं ऐसी भांति कुटुंबी कपोत अशांतचित्त भयो याही प्रकार यह पुरुष सुखदुःख-हीमें रति मान दीन होइ कुटुंबको भरण पोषण करते कुटुंबसहित दुःखही पावे हैं सुख कबहूं न पावेहै कपोतकी भांति बंधे हैं ॥ ७३ ॥

यः प्राप्य मानुषं लोकं मुक्तिद्वारमपावृतम् ॥ गृहेषु
खगवत्सक्तस्तमारूढच्युतं विदुः ॥ ७४ ॥ इति श्रीभा-
गवते महापुराणे एकादशस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अथ अष्टमोऽध्यायः ।

ब्राह्मण उवाच ॥ सुखमैन्द्रियकं राजन्स्वर्गे नरक एव
च ॥ देहिनां यद्यथा दुःखं तस्मान्नेच्छेत तद् बुधः॥ १॥
ग्रासं सुमृष्टं विरसं महान्तं स्तोकमेव वा ॥ यदृच्छयै-
वापतितं ग्रसेदाजगरोऽक्रियः ॥ २ ॥

जो मुक्तिको खुल्यो द्वाररूप या मनुष्य लोककों पाइकरी कपोतकी-भांति गृहनमें आसक्त होइ, सो उत्तम गति पाइकर अधोगतिमें परे है, गृहमें आसक्ति पक्षीनहूको अनर्थ करे हैं तौं मनुष्यकों तौ अतिही निंदित है, यह विद्या कपोततें सीखी यातें कपोत गुरु भयो ॥ ७४ ॥

इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां एकादशस्कन्धे अवधूतो-
पाख्याने सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

आठये अध्यायके विषें कि अजगर आदि नौ गुरुनतें अवधूतकी वाणिसो विवेकके अर्थ उद्धवसों हरि कहै हैं ॥ प्रारब्ध कर्मनको भोग अवश्य कियेही छूटे हैं, तातें कर्मनके उद्यमकारि वृथा आयु न खोवे, तहां अजगरकी सीख अवधूत कहैं हैं हे राजन् ! जिनकों देहको अभिमान है, विनकों इंद्रियनको सुख नरकहूमें होयहै, जैसे दुःख विना इच्छाकेहू होयहै, तैसें सुखहू होतहै, तातें बुद्धिवंत सुख न चाहैं ॥ १ ॥ उद्यम विना अनायासतें प्राप्त होई अथवा विरस होइ थोरो होइ बहुत होइ ऐसे ग्रासकों लेइ सबतें उदासीन रहे शरीर निर्वाह मात्रही

शयीताहानि भूरीणि निराहारोऽनुपक्रमः ॥ यदि नोपनमेद्ग्रासो महाहिरिव दिष्टभुक् ॥ ३ ॥ ओजःसहोबलयुतं बिभ्रद्देहमकर्मकम् ॥ शयानो वीतनिद्रश्च नेहेतेन्द्रियवानपि ॥४॥ मुनिः प्रसन्नगम्भीरो दुर्विगाह्यो दुरत्ययः ॥ अनन्तपारो ह्यक्षोभ्यः स्तिमितोद इवार्णवः ॥५॥ समृद्धकामो हीनो वा नारायणपरो मुनिः ॥ नोत्सर्पेत न शुष्येत सरिद्भिरिव सागरः ॥ ६ ॥ दृष्ट्वा स्त्रियं देवमायां तद्भावैरजितेन्द्रियः ॥ प्रलोभितः पतत्यन्धे तमस्यग्नौ पतङ्गवत् ॥ ७ ॥

ग्रहण करे यह अजगरकी रहनि है ॥ २ ॥ जा दिन कछू न पावे ता दिन निराहारही सोयरहे, अजगरकी भांति ईश्वर देइगो उद्यम न करे ऐसें धीर्य्यसों रहे ॥ ३ ॥ यद्यपि इन्द्री, समर्थ होइ मन पुष्ट होइ शरीर पुष्ट होइ तथापि कर्म कछु न करे, जागतही पर्यो रहै, काहू वस्तुकी अपेक्षा होइ तऊ यत्न न करे ऐसी भांति निरपेक्ष होइ रहे ॥ ४ ॥ अब समुद्रते सीख्यो सो कहे हैं जैसें समुद्रको निश्चल जल है, तैसें अंतःकरणमें प्रसन्न रहै; समुद्र महागंभीर है ताको पार और अंत नहीं जाकों कोऊ लांघि न सकैं, जाकों कोऊ गोहि न सकै, क्षोभ करि न सके, ए सब गुण समुद्रतें सीखे ऐसेही महात्मानको उचित है ॥ ५ ॥ जैसें समुद्र चौमासेमें नदीनके जलसो चढे नहीं आतपमें नहीं सूखे न घटे तैसें योगीराज जो कछू पावे ताहीमें संतोष करे, न पावे तो खेद न करे, एक नारायण विषे तत्पर होई विषयनतें दूरि रहे ॥६॥ इंद्रियनके पांच विषय है, रूप गंध स्पर्श शब्द रस इनमें आसक्त भयेते यह जीव नष्ट होयहै, जैसे पतंग भ्रमर गज हरिण मीन ये नाशको

योषिद्धिरण्याभरणाम्बरादिद्रव्येषु मायारचितेषु मूढः ॥ प्रलोभितात्मा ह्युपभोगबुद्ध्या पतङ्गवन्नश्यति नष्टदृष्टिः ॥ ८ ॥ स्तोकं स्तोकं ग्रसेद्ग्रासं देहो वर्तेत यावता ॥ गृहानहिंसन्नातिष्ठेद् वृत्तिं मधुकरीं मुनिः ॥ ९ ॥ अणुभ्यश्च महद्भ्यश्च शास्त्रेभ्यः कुशलो नरः ॥ सर्वतः सारमादद्यात्पुष्पेभ्य इव षट्पदः ॥ १० ॥

पावे है तातें ये पांच विषयन विषें आसक्त न होइ, यह बात इन पांचोनके[1] पासतें सीखी है. तहां पहिले पतंगते जो सीखी है सो कहैं हैं जैसें पतंग अग्निको रूप तेज देखि भ्रमतें वामें जाइ परै है ॥ ७ ॥ तैसें यह स्त्री देवमाया है, ताकों देखि वाके सुवर्णके आभरण वस्त्र मायाविलास देखि वाके हावभाव करि मोहित अजितेंद्रिय लोभी भोगकी बुद्धि करि अंध कूपमें परैहै, याकी दृष्टि नष्ट भई है अंध कूपकों जानें नहीं हैं, रूप देखि भ्रमकरि नष्ट होयहैं, यह पतंगतें सीखी जैसे पतंग दीपककी लोइ देखकें नौछावर हैकै वाईमें जरके मरजायहै पन दीपकके भाये नहीं होय है ऐसही ये पुरुष स्त्रीरूप अग्निमें पतंगकी तरह मरैहै पन इनके भायै नहीं होयहै ॥ ८ ॥ अब भ्रमरते जो सीखी सों कहैं है जो मुनि होइ सो थोरो ग्रासमात्र मांगिलेइ. जितने करि देह रहै एकही घरमें सब न मांगे, जातें गृहस्थको पीडा होइ, जैसें भ्रमर सुगंधकें लोभ करि एक कमलडीमें बसे तो वामें बधेहै तैसें यह एक ठौर मांगवेसौ बँधे है ॥ ९ ॥ जो चतुर मनुष्य होइ तो सब शास्त्रनतें सार वस्तु लेइ, शास्त्र छोटे होइ अथवा बडे

१ कुरंगमातंगपतंगभृंगमीना हताः पंचभिरेव पंच ॥ एकः प्रमाथी स कथं न हन्यते यः सेवते पंचभिरेव पंच ॥ १ ॥ मतलब यह है कि जब ये एक एक विषय एक एक जीवके प्राणघातक हैं तब फिर जो पांच इंद्रियनसो पांचौनके सेवन करे है कहौ वो कैसौ न मारौ जाय सो कहै है ॥

सायन्तनं श्वस्तनं वा न संगृह्णीत भिक्षितम् ॥ पाणिपात्रोदरामत्रो मक्षिकेव न संग्रही ॥ ११ ॥ सायन्तनं श्वस्तनं वा न संगृह्णीत भिक्षुकः ॥ मक्षिका इव संगृह्णन् सह तेन विनश्यति ॥१२॥ पदापि युवतीं भिक्षुर्न स्पृशेद्दारवीमपि ॥ स्पृशन् करीव बध्येत करिण्या अङ्गसङ्गतः ॥ १३ ॥ नाधिगच्छेत् स्त्रियं प्राज्ञः कर्हिचिन्मृत्युमात्मनः ॥ बलाधिकैः स हन्येत गजैरन्यैर्गजो यथा ॥ १४॥ न देयं नोपभोग्यं च लुब्धैर्यद्दुःखसञ्चितम्॥भुङ्क्ते तदपि तच्चान्यो मधुहेवार्थविन्मधु॥१५॥

होइ सार सब लेइ, और जैसे वृक्षके कीच काटे आदिको छोड गंधमात्र ग्रहण करैहै ऐसेही शास्त्रनके अनेक दोषनको छोडकें सारांशमात्र अपनो प्रयोजन ग्रहण करै जैसें भ्रमर पुष्पनतें सार मकरंदको लेई है, यह बात भ्रमरते सीखी हैं ॥ १० ॥ भ्रमरको दूसरो नाम मधुकर है, सो मधुकर मधुमाखीनहूमें रहैहैं. ता मधुमाखीते जो सीखी सो कहैं है मुनि भिक्षाको ले आवे, सांझको अथवा दूसरे दिनको संग्रह न राखे, पाणिपात्रमें लेकर उदरपात्र पूर्ण करे, मधुमाखीकीसी भांति संग्रह न करे ॥११॥ जो संग्रह करे तौ नष्ट होइ, जैसे मधुमाखी मधुसहित नष्ट होयहै ॥१२॥ अब हाथीकी सीख कहै हैं, भिक्षुक काष्ठकी स्त्री पूतरीको पावसोहू न छीवै स्पर्श करे तो बधे जैसे हाथी हथिनीके अंगसंगते बधैहै यह मैं हाथीहूते सीखी ॥ १३ ॥ जो बुद्धिवान् होइ तो कबहू स्त्रीके निकट न जाइ. जाइ तो अवलंबन करिके पिटे, स्त्री आत्माको मृत्यु है, जैसे और बलवंत हाथिनसौ हाथी मारौजाय है ॥ १४ ॥ जो कोऊ मधुमाखीनके पासते छुडाइकै मधु हरिकें ले आवे सो मधुहा कहावे, जो मनुष्य लोभी है अनेक दुःखोंसे धनसं-

सुदुःखोपार्जितैर्वित्तैराशासानां गृहाशिषः ॥ मधुहे-
वाग्रतो भुङ्क्ते यतिर्वै गृहमेधिनाम् ॥ १६ ॥ ग्राम्यगीतं
न शृणुयाद् यतिर्वनचरः क्वचित् ॥ शिक्षेत हरिणाद्
बद्धान्मृगयोर्गीतमोहितात् ॥ १७ ॥ नृत्यवादित्रगी-
तानि जुषन् ग्राम्याणि योषिताम् ॥ आसां क्रीडनको
वश्यमृष्यशृङ्गो मृगीसुतः ॥ १८ ॥ जिह्वयाऽतिप्रमा-
थिन्या जनो रसविमोहितः ॥ मृत्युमृच्छत्यसद्बुद्धि-
र्मीनस्तु बडिशैर्यथा ॥ १९ ॥

चय करैं हैं न दान करै है न आप भोग करै है तो वा धनको भोग औरही करैगो, जैसें माखी ठौर ठौरतें मधु ले संग्रह करै है, भोग और कोऊ करैहै, ये धनके उपाइ जानै ॥ १५ ॥ अतिदुःख करि संचयधन करि ग्रहण करे मनोरथको चाहिवेवारे गृहस्थनके पहिले संन्यासी भोजन करे हैं; जैसे मधुहा माखीनतें प्रथम भोजन करे है, संन्यासी और ब्रह्मचारी रांधे अन्नके स्वामी हैं, तिनको दिये विना जो भोजन करे तो चांद्रायण व्रत करि शुद्ध होइ ॥ १६ ॥ संन्यासी वनमें फिरै गामके गीत प्राकृत कबहू न सुनें सुनें तो बंधनमें परै जैसें मृग वधिकके गीत सुनि मरें है यह विद्या हरिणतें सीखी ॥ १७ ॥ गामके गीत नृत्य वादित्र सुनिके विनके वश होइकें बंधन पावें है जैसे शृंगीऋषि मृगीको पुत्र स्त्रीनके वश होई इनको खिलोना भयो ॥ १८ ॥ मीनतें जो सीखी सो कहैहै यह मूर्ख मनुष्य अतिबलवंत जीभके वश होइके मृत्युको पावै है जैसे बंशीके लोहमें मांस लगावे है, ताके स्वादतें मछरी वंशीको पकरे है तब फेरि मरे हैं ॥ १९ ॥

इन्द्रियाणि जयन्त्याशु निराहारा मनीषिणः ॥ वर्जयित्वा तु रसनं तन्निरन्नस्य वर्धते ॥ २० ॥ तावज्जितेन्द्रियो न स्याद्विजितान्येन्द्रियः पुमान् ॥ न जयेद्रसनं यावज्जितं सर्वं जिते रसे ॥ २१ ॥ पिङ्गला नाम वेश्यासीद् विदेहनगरे पुरा ॥ तस्या मे शिक्षितं किंचिन्निबोध नृपनन्दन ॥२२॥ सा स्वैरिण्येकदा कान्तं संकेत उपनेष्यती ॥ अभूत्काले बहिर्द्वारि बिभ्रती रूपमुत्तमम् ॥ २३ ॥

पंडित आहारकों छोडिकै शीघ्र इंद्रिनकों जीतें हैं एक रसनेंद्रियनकों नहीं जीतिसकै है कारण कि आहार त्यागवेसो जिह्वाको लोभ बढै है ॥ २० ॥ जो पुरुषनें और इंद्रिय जीतीहै पर वो तोलौं जितेंद्रिय नहीं होइ है जोलों जिह्वा न जीते, जो जीभ जीते तो जानो सब जीते, तहां यह अभिप्राय जो आहार छोडिये तो केवल और इंद्रियको जय होय रसनेंद्रिय बढै और भोजन करे तो रसकी आसक्तिकरि सब इंद्रियनको लोभ होइ यातें रसकी आसक्ति छोडिकै औषधिकी भांति अन्न लेइ ॥ २१ ॥ अब पिंगलाकों उपाख्यान कहैहै अवधूतजी राजा यदुसों कहैहै पिंगलानाम वेश्या पहलें विदेह नगरमें ही तातें मैंने कछु सीख्योहै ॥ २२ ॥ हे राजन् यदो ! सो तुम सुनो एक दिन वह कामचारिणी वेश्या द्वारेपै नगाडो धरकै यह संकेत करचौ कि जो पुरुष या नगाडेपर जितने डंका मारे वह रात्रिमें मेरे पास आयकै उतने हजार रुपा देयगो ऐसी समस्या बनाई इतनेहीमें हमने जाय वा नगाडे पर दसवीस डंका लगायदीन और सामने जो दुकान खाली परी ही तापै जाय बैठे तब तो वह कांतको रतिस्थानमें लेजायवेकी इच्छासो अतिउत्तम रूपको धरे सायंकाल द्वार-

मार्ग आगच्छतो वीक्ष्य पुरुषान्पुरुषर्षभ ॥ ताञ्छु-
ल्कदान्वित्तवतः कान्तान्मेनेऽर्थकामुका ॥२४॥ आ-
गतेष्वपयातेषु सा सङ्केतोपजीविनी ॥ अप्यन्यो वि-
त्तवान्कोऽपि मामुपैष्यति भूरिदः ॥ २५ ॥ एवं दुरा-
शया ध्वस्तनिद्रा द्वार्यवलम्बिनी॥ निर्गच्छन्ती प्रवि-
शती निशीथं समपद्यत ॥ २६ ॥ तस्या वित्ताशया
शुष्यद्वक्त्राया दीनचेतसः॥ निर्वेदः परमो जज्ञे चि-
न्ताहेतुः सुखावहः ॥ २७ ॥ तस्या निर्विण्णचित्ताया
गीतं शृणु यथा मम । निर्वेद आशापाशानां पुरुष-
स्य यथा ह्यसिः ॥ न ह्यङ्गाजातनिर्वेदो देहबन्धं
जिहासति ॥ २८ ॥

परे स्थितभई ॥ २३ ॥ वह वेश्या मार्गमें आवते धनवंत मोलके दाता पुरुषनकों भोगयोग मानती भई कारणकी वाके अर्थकीही कामना ही ॥ २४ ॥ विनको आयो और गये देखिकरि और कोऊ धनवंत मोको वडो दाता प्राप्ति होइगो या आशा करि सो संकेतकी जीवनहारी वेश्या द्वारपै बैठी रही ॥ २५ ॥ ऐसें दुराशाकरि जागती द्वारपै आवे फिरी भीतर जाइ ऐसी भांति अर्धरात्रि गई ॥ २६ ॥ वाको धनकी आशाकरि चित्त दीन भयो मुख सूखनलग्यो चितासौं परमवैराग्य उपज्यो वानें वैराग्यकरिके जो कह्यो सो सुनो ॥ २७ ॥ वाकों धनकी आशाकरि चित्त दीन भयो मुख सूखन-लग्यो निर्वेद भये चित्तसौं कामकंदलाने जो गायो सो मैं कहूंहूं तुम सुनो वह मनमें विचार करे है कि वैराग्य पुरुषके दुराशा पाशा काटनको खड्ग हैं हे राजन् ! जाको वैराग्य नहीं ताके देहके बंधन

पिङ्गलोवाच ॥ अहो मे मोहविततिं पश्यताऽविजि-
तात्मनः ॥ या कान्तादसतः कामं कामये येन बा-
लिशा ॥२९॥ सन्तं समीपे रमणं रतिप्रदं वित्तप्रदं नि-
त्यमिमं विहाय ॥ अकामदं दुःखभयादिशोकमोह-
प्रदं तुच्छमहं भजेऽज्ञा ॥ ३० ॥ अहो मयात्मा परि-
तापितो वृथा साङ्केत्यवृत्त्यातिविगर्ह्यवार्तया ॥ स्त्रै-
णान्नराद्याऽर्थतृषोऽनुशोच्यात्क्रीतेन वित्तं रतिमात्म-
नेच्छती ॥ ३१ ॥ यदस्थिभिर्निर्मितवंशवश्यस्थूणं
त्वचारोमनखैः पिनद्धम् ॥ क्षरन्नवद्वारमगारमेतद्वि-
ण्मूत्रपूर्णं मदुपैति कान्या ॥ ३२ ॥

नहीं छुटै हैं ॥ २८ ॥ अहो देखो मेरे मोहको विस्तार मैंने मन अपनो न जीत्यो मैं विवेकरहित हूं जो ऐसे दुष्टनको प्रियकरि अपनो अभिलाष पूर्ण कियो चाहूंहूं यासौ मैं मूर्खा हूं ॥ २९ ॥ अपनो अतिप्रिय निकटही सदा रहै हैं अति सुखकारी रतिको दाता धनदाता नित्य प्रियको छोडि दुःखित भई चिंता शोक मोहके देनवारे तुच्छ मनुष्यको मैं सेवन करती भई न तो विनसौ मेरो काम पूर्ण होय है न सुख होय है मैं मूढ हूं ॥ ३० ॥ अहो मैंने यह आत्मा वृथा सतायों जातें अतिनिंदा संयुक्त शोकसो ग्रसे धन और रतिकी इच्छाकारि मेरी देह विकी और अतिनिंदित यह संकेत वृत्ति करी धनमें तृष्णावारे कामी पुरुषनसौ मैंने रतिकी चाहना करके अपनो शरीर बेचौ मोकू धिक् है ॥ ३१ ॥ हाथ पांइके हाड थूनी पांसुरीनके हाड बांस और पीठिको हाड जहां वरेंडा है, ऐसो शरी-ररूप घर त्वचा रोम नखसों ढक्योहै जाके नौ द्वार स्रवै हैं विष्टामू-

विदेहानां पुरे ह्यस्मिन्नहमेकैव मूढधीः ॥ याऽन्यमि-
च्छन्त्यसत्यस्मादात्मदात्काममच्युतात् ॥ ३३ ॥
सुहृत्प्रेष्ठतमो नाथ आत्मा चायं शरीरिणाम् ॥ तं वि-
क्रीयात्मनैवाहं रमेऽनेन यथा रमा ॥ ३४॥ कियत्प्रि-
यं ते व्यभजन्कामा ये कामदा नराः ॥ आद्यन्तवन्तो
भार्याया देवा वा कालविद्रुताः ॥ ३५ ॥ नूनं मे भगवा-
न्प्रीतो विष्णुः केनापि कर्मणा ॥ निर्वेदोऽयं दुराशा-
या यन्मे जातः सुखावहः ॥ ३६॥

त्रसों पूर्ण नरक रूप कांतकों मेरे विना कौन स्त्री सेवैगी ॥ ३२ ॥ या विदेहराजाके नगरमें एक मैंही अति मूढ हों जो में असाध्वी साक्षात् अच्युत परमात्माकों छोडी तुच्छ कामभोगको इच्छा करती भई॥ ३३ ॥ यह ईश्वर सब देहीनको आत्मा है, सुहृद है, परम प्रियनाथ है आपेको देकै वासौ मोल लेके वाहीसों लक्ष्मीकी समान रमण करूंगी ॥ ३४ ॥ विषय और कामके दाता मनुष्य और देवता ये सब उत्पत्ति मरण संयुक्त हैं, कालकारि ग्रस हैं, वे स्त्रीकी कामना कहा करेंगे ॥ ३५ ॥ अब अपनें भाग्यकी सराहना करै है, निश्चय करिकै मोपै भगवान् विष्णु काहू कर्म करि प्रसन्न भये हैं, जातें दुष्ट आशा संयुक्त मोकों सुखदायक ऐसो वैराग्य उपज्यो ॥ ३६ ॥

---

१ मुखं श्लेष्मागारं तदपि च शशांकेन तुलितं कुचौ मांसग्रंथी कनककलशा-वित्युपमितौ ॥ स्रवन्मूत्रक्लिन्नं करिवरकरस्पर्धि जघनं अहो निंद्यं रूपं कविजनवि-शेषैर्गुरु कृतम् ॥ १ ॥ खकारको घर मुख मासकी गाठ दोऊ स्तन और वहते मूत्र युत जाकी योनि ऐसे गये वीते या स्त्रीके शरीरकों कविन्ने अनेक चंद्रमुखआदि उपमानसौ श्रेष्ठ कीनों है ॥

मैवं स्युर्मन्दभाग्यायाः क्लेशा निर्वेदहेतवः ॥ येनानुबन्धं निर्हृत्य पुरुषः शममृच्छति ॥ ३७ ॥ तेनोपकृतमादाय शिरसा ग्राम्यसंगताः॥त्यक्त्वा दुराशाः शरणं व्रजामि तमधीश्वरम्॥ ३८ ॥ सन्तुष्टा श्रद्दधत्येतद्यथालाभेन जीवती॥विहराम्यमुनैवाहमात्मना रमणेन वै ॥३९॥संसारकूपे पतितं विषयैर्मुषितेक्षणम् ॥ ग्रस्तं कालाहिनात्मानं कोऽन्यस्त्रातुमधीश्वरः ॥४० ॥ आत्मैव ह्यात्मनो गोप्ता निर्विद्येत यदाखिलात् ॥ अप्रमत्त इदं पश्येद्ग्रस्तं कालाहिना जगत् ॥ ४१ ॥

कदाचित् कहो धनकी प्राप्ति न भई ताको खेद भयो विष्णु कहा प्रसन्न भये,(तहां कहै है) मंद भागिनीको ऐसे क्लेश वैराग्यके कारण नहीं होते कारण कि याही प्रकार औरहू पहले दिन है गये है जब धनकी प्राप्ति न भईही न कोई पुरुष आयो हो आज मोको क्लेशसौं वह वैराग्य भयो है जा वैराग्यसों यह पुरुष गृहादिक बंधन छोडिकै शांति पावे ॥ ३७ ॥ ईश्वरनें मेरो यह बडो उपकार कियो है जा उपकारकों मैं माथें चढाइ लियो,जो मैं ग्राम्य नीचनसों मिलीही ताके संगकी दुराशा छोडि एक जगदीशकी शरण आवत भई ॥ ३८ ॥ अब मैं संतुष्ट होय परमेश्वरमें श्रद्धा करती यथा लाभसों जीविका करती निश्चय करि आत्माहीको रमण करि आनंदसों विहार करोंगी ॥ ३९ ॥ जो संसारकूपमें पर्‌यो है, विषयनकरि अंधदृष्टि है, कालस्वरूपकरि ग्रस्यों हैं, ऐसें आत्माको रक्षा करिवेकों या आत्मस्वरूप भगवान् विना और कौन समर्थ है ॥ ४० ॥ जब सबतें यह आत्मा विरक्त भयो, तब अपनी आपुही रक्षा करवेमें सावधान भयो, या जगत्कों जो कि कालसर्पसौ ग्रसित है अप्रमत्त हैके देखै देखे ॥ ४१ ॥

ब्राह्मण उवाच ॥ एवं व्यवसितमतिर्दुराशां कान्तत-
र्षजाम् ॥ जित्वोपशममास्थाय शय्यामुपविवेश सा
॥ ४२ ॥ आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम् ॥
यथा सञ्छिद्य कान्ताशां सुखं सुष्वाप पिङ्गला ॥४३॥
इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे अष्ट-
मोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अवधूत बोले या भांति निश्चय मतिसौं धन और विषयभोगकी
आशा छोडि शांतिको पाइ वह वेश्या शय्यापर सोवंती भई ॥४२॥
आशा परम दुःखरूप है, आशा छोडि बैठिनों परम सुख है, जैसे
पिंगला कांतकी आशा छोडि सुखसों सोवतभई ॥ ४३ ॥
इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां एकादशस्कन्धे श्रीभगवदुद्धवसं-
वादे पिङ्गलोपगीतेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

---

१ साधुनको संग्रह करनो उचित नहीं है, यासों दुःख होय है, एक बाबाजीने बडे कष्टसो पचीस असरफी संग्रह करीं, जबतक निकारि है चुटियामें धराकरतेथे, एक दिन काऊने देखे लीनी सो बाबाजीसे आनके बोल्यो महाराज! आपको आज मेरे यहां निमंत्रण हैं, बाबाजी बोले अच्छा, तब वोह घर लिवायगयो और इतनो हलुआ पूरी खवायो कि बाबाजीसे उठयो न गयो तब वाने खाट बिछायदीनी और अपनी स्त्रीते कहा कि इनके चरण खूब दाबियो और मैं जाउंहूं यह तौ सेवा करनेलगी, और वोह पुरुष थोडी देरमें व्याकुलतासे घरमें आय आलेमें ढुंढनेलगो, स्त्रीने कही क्या ढुंढोहो तब वाने कही ह्यां पचास असरफी धरी सो कहां गई, अब बाबाजी सकुचाये वोह स्त्रीको मारनेलगो कि तैंने बाबाजीको देदी होगी बाबाजी बोले हमारे कपडे देख लेउ, दो चार आदमी इकठे भये, तब यह बाबाजीका चुटिया देखो, वामें असरफी निकली, बाबाजी बडे लज्जित भये, धनको धन गवायो चोरके चोर बने, जब बाबाजी चले तौ याने हाथ जोर कही महाराज! फिरभी आइयो, तौ बाबाजी बोले जब पचीस और कर लेऊंगो तब आऊंगा ॥

अथ नवमोऽध्यायः।

ब्राह्मण उवाच ॥ परिग्रहो हि दुःखाय यद्यत्प्रियतमं नृणाम् ॥ अनन्तं सुखमाप्नोति तद्विद्वान्यस्त्वकिञ्चनः ॥ १ ॥ सामिषं कुररं जघ्नुर्बलिनो ये निरामिषाः ॥ तदामिषं परित्यज्य स सुखं समविन्दत ॥ २ ॥ न मे मानावमानौ स्तो न चिन्ता गेहपुत्रिणाम् ॥ आत्मक्रीड आत्मरतिर्विचरामीह बालवत् ॥ ३ ॥ द्वावेव चिन्तया मुक्तौ परमानन्द आप्लुतौ ॥ यो विमुग्धो जडो बालो यो गुणेभ्यः परं गतः ॥ ४ ॥

नौके अध्यायमें कुरर पक्षीतें ले और देहतें जो बुद्धि सीखी ताको सुन यदु कृतार्थ भये यह श्रीकृष्ण उद्धवतें वर्णन करत भये ॥ अब कुरर पक्षीतें जो सीख्यौ हैं सो कहें है, मनुष्यनको जो जो वस्तु प्रिय हैं, सो सो मोकूं दुःखदायी है, यह जानि जो संग्रह छोडे सो अनंत सुख पावे ॥ १ ॥ तहां एक दृष्टांत बतावे हैं, एक कुरर पक्षीने मांस पायो, तब वाते बलवंत मांसरहित और पक्षी आये, ते वाको मारन लगे जब याने वह मांस डारिदियो, तब वे वाको छोडि मांसको लैगये यह छोडिके सुखी भयो ॥ २ ॥ अब बालककी सीख है सो कहें हे राजन्! न तो मोकों मान अपमानको सुख दुःख है, न घरकी चिंता है, न पुत्रनकी चिंता है एक आत्माहीसों क्रीडा करत यहां फिरो हों, जैसें बालक चिन्तातें छुटो परम आनंदमें मग्न होइ हैं ॥३॥ हे राजन्! द्वै मनुष्यही चिंतारहित हैं परमानंदमें मग्न होय हैं एक तो उद्यमतें रहित अज्ञबालक दूसरो गुणरहित ईश्वरको प्राप्त होवेवारो

१ यह ज्ञान दत्तात्रेयके दर्शनसे पिंगलाको प्राप्त भयो ॥

क्वचित्कुमारी त्वात्मानं वृणानान्गृहमागतान् ॥स्वयं
तानर्हयामास क्वापि यातेषु बन्धुषु ॥ ५ ॥ तेषामभ्य-
वहारार्थं शालीन्रहसि पार्थिव ॥ अवघ्नन्त्याः प्रको-
ष्ठस्थाश्चक्रुः शङ्खाः स्वनं महत् ॥६॥ सा तज्जुगुप्सितं
मत्वा महती व्रीडिता ततः ॥ बभंजैकैकशः शङ्खान्
द्वौ द्वौ पाण्योरशेषयत् ॥ ७ ॥ उभयोरप्यभूद् घोषो
ह्यवघ्नन्त्याः स्म शङ्खयोः ॥ तत्राप्येकं निरभिद-
देकस्मान्नाभवद्ध्वनिः ॥ ८ ॥ अन्वशिक्षमिमं तस्या
उपदेशमरिन्दम ॥ लोकाननुचरन्नेताल्लोकतत्त्ववि-
वित्सया ॥ ९ ॥ वासे बहूनां कलहो भवेद्वार्ता द्वयो-
रपि ॥ एक एव चरेत्तस्मात्कुमार्या इव कङ्कणः ॥ १० ॥

॥ ४ ॥ कुमारीतें जो सीख सीखी सो कहै हैं, कहूं एक कन्या ही वाके भाई बंधु पिता सब कहूं गये हे, कन्याको विदा करामन वाके घर पाहुनें आये तब विनको आतिथ्यभाव वह आपुही करती भई ॥ ५ ॥ हे राजन् ! कन्या विनके भोजन कराइवेकों एकांतमें बैठिकैं धान कूटनलगी, तब वाकी चुडिनको बडो शब्द हौन लग्यो ॥ ६ ॥ वह कन्या आपु धान कूटिवो निंदित दरिद्रको कर्म मानिकैं क्रमसों एक एक चूरी फोरती भई हाथनमें द्वै द्वै राखी ॥ ७ ॥ धान कूटत द्वैद्वैहू चूरीनको शब्द होत भयो, तिनहूमेंतें एक एक दूरि करत भई, तब एकते शब्द नहीं होतो भयो ॥ ८ ॥ हे शत्रुनाशक ! लोकनकों तत्त्व जानिवेकी इच्छाकरि सर्वत्र फिरते मैंने एक दिन कुमारी या भांति धान कूटति देखी तब यह उपदेश वातें सीखत भयो ॥ ९ ॥ बहुतनकों जहां वास होइ तहां अवश्य कलह होइ, जो द्वै होय तो

मन एकत्र संयुज्याज्जितश्वासो जितासनः ॥ वैरा-
ग्याभ्यासयोगेन ध्रियमाणमतन्द्रितः ॥ ११ ॥ यस्मि-
न्मनो लब्धपदं यदेतच्छनैः शनैर्मुञ्चति कर्मरेणून् ॥
सत्त्वेन वृद्धेन रजस्तमश्च विधूय निर्वाणमुपैत्यनि-
न्धनम् ॥ १२ ॥ तदैवमात्मन्यवरुद्धचित्तो न वेद किं-
चिद्बहिरन्तरं वा ॥ यथेषुकारो नृपतिं व्रजन्तमिषौ
गतात्मा न ददर्श पार्श्वे ॥ १३ ॥ एकचार्यनिकेतः
स्यादप्रमत्तो गुहाशयः ॥ अलक्ष्यमाण आचारैर्मु-
निरेकोऽल्पभाषणः ॥ १४ ॥

आपुसमें बात तोहू करे, तातें अकेलोइ विचरे, जैसे कुमारीको कंकण ॥ १० ॥ अब बाण बनामनवारेते जो सीख्यो सो कहें हैं मनको ईश्वर विषें स्थिर कर प्राणनकों वशकरै आसन जीते वैराग्यको अभ्यास-कारि मन स्थिर करै सावधान रहे ॥ ११ ॥ गुण और तिनके कार्य्य-रहित यह मन परमानंदरूप भगवान् विषें जब स्थान पावे, तब शनैः शनैः कर्मवासना छोडे, जब याकों सतोगुण बढे तब रजोगुण तमो-गुणको दूरि करिकें ब्रह्ममें लीनहोइ, तब ब्रह्म विना और कुछ दृष्टिमें नहीं आवे है ॥ १२ ॥ या भांति आत्मासों जब चित्त मिलिजाई तब बाहर भीतरको भेद नहीं रहे है सब एकरूप करि देखे है जैसे बाण बनायवेवारेको चित्त बाण बनायवेमें ऐसो लगो हो कि निकट ह्वेकें सेना समेत राजा चल्यो गयो वाने न जान्यो ऐसेही साधुनको चाहिये कि ईश्वरमें ऐसो मन लगावें जो और कछु सुधि न रहें ॥ १३ ॥ सर्पतें सीखीसो कहें हैं सर्पकी नाई सब लोकनतें डरपत अकेलोई रहे, एकही ठौर घर करि न रहे, सदा सावधान रहे, एकांतहीमें वसे, दूसरेको सहाय न चाहें, अपनी गति दूसरेसो छिपाये रखें और

देहो गुरुर्मम विरक्तिविवेकहेतुर्बिभ्रत्स्म सत्त्वनिधनं सततार्त्युदर्कम् ॥ तत्त्वान्यनेन विमृशामि यथा तथापि पारक्यमित्यवसितो विचराम्यसङ्गः ॥ २५ ॥ जायात्मजार्थपशुभृत्यगृहाप्तवर्गान्पुष्णाति यत्प्रियचिकीर्षया वितन्वन् ॥ स्वान्ते सकृच्छ्रमवरुद्धधनः स देहः सृष्ट्वाऽस्य बीजमवसीदति वृक्षधर्मा ॥ २६ ॥ जिह्वैकतोऽमुमपकर्षति कर्हि तर्षा शिश्नोन्यतस्त्वगुदरं श्रवणं कुतश्चित् ॥ घ्राणोन्यतश्चपलदृक् क्व च कर्मशक्तिर्बह्व्यः सपत्न्य इव गेहपतिं लुनन्ति ॥ २७ ॥

देह मेरो गुरु है या देहतें मोकों वैराग्य विवेक उपज्यो यह देह पीडासहित सदा जन्म मरणकों धरें है, या देहसौं यथार्थ करि तत्वनकौ विचार करवैसौं मोकौ वैराग्य भयोहै तौहू में यापै प्रीति नहीं करौहौ क्योंकि यह कुत्ता और स्यारनकौ भक्ष्य है यह निश्चय कर सर्वसंगरहित हो विचरौहूं ॥ २५ ॥ जा देहकी प्रसन्न करवेकी इच्छाकरि स्त्री पुत्र धन पशु दास गृहबंधुके समूहनकों पोखै हैं, बहुत दुःखसों धन जोरें हैं, इतने परहू अन्तमें यह देह आपही नाश है जायहै देहके गयेहूं दुःख नहीं जाइ हैं, दूसरे देहको कर्म बीज उपजाये जाइहै ता कर्मते फिरि दुःख रूप देह या प्रकार उत्पन्न है जायहै जा प्रकार रूख अपनो बीज छोडेहै तातें फेरि रूख होयहै ॥ २६ ॥ और या देहीकों एक ओरतें जिह्वा रसके लियें खेंचे है,कबहूं तृषा जलके लिये खेंचेहै, शिश्न स्त्रीसंगके लिये खेचेहैं, त्वगिंद्रिय एक ओरतें स्पर्शके लियें खेंचेहै, श्रवण शब्दके लियें खेंचेहैं, और घ्राण गंधके लियें खेंचेहै, चंचल दृष्टि रूपके लियें खेंचेंहै, कहूं कहूं कर्म शक्ति अपनें विषयक लियें खेचेहैं, जैसे बहुत सौति गृहस्थपाकों लूटें हैं तैसे ये

सृष्ट्वा पुराणि विविधान्यजयात्मशक्त्या वृक्षान्सरीसृपपशून्खगदंशमत्स्यान् ॥ तैस्तैरतुष्टहृदयः पुरुषं विधाय ब्रह्मावलोकधिषणं मुदमाप देवः ॥ २८ ॥ लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसंभवान्ते मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः ॥ तूर्णं यतेत न पतेदनुमृत्यु यावन्निःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात् ॥ २९ ॥ एवं सञ्जातवैराग्यो विज्ञानालोक आत्मनि ॥ विचरामि महीमेतां मुक्तसङ्गोऽनहङ्कृति ॥ ३० ॥ न ह्येकस्माद्गुरोर्ज्ञानं सुस्थिरं स्यात्सुपुष्कलम् ॥ ब्रह्मैतदद्वितीयं हि गीयते बहुधर्षिभिः ॥ ३१ ॥

सब इंद्रिय देहकों लूटें हैं ॥ २७ ॥ हे देव ! अपनी शक्ति मायासौं वृक्ष सर्प पशु पक्षी डांस माछर नानाविध शरीरनको उपजाइ करि ब्रह्मा संतुष्ट हृदय न भयो परन्तु ब्रह्मज्ञानकी बुद्धि राखनवाले मनुष्यनकी देह रचकै आनन्दको प्राप्त भये ॥ २८ ॥ ताते यह अति दुर्लभ मनुष्य देह अनेक जन्मन पीछें पायों है पुरुषार्थको दाता है, पर अनित्य है,यह जानिकैं शीघ्र मोक्षके निमित्त जौंलों मृत्यु न होइ शीघ्र यत्न करै क्योंकि विषय तो याकूं सब योनिनमें होंइगे ॥ २९ ॥ या भांति मोको वैराग्य उपज्यों ज्ञानको प्रकाश भयो, तब आत्मनिष्ठ भयो, यासौं संग और अहंकार छोडिकैं मैं पृथिवीमें फिरूंहूं ॥ ३० ॥ जो कहो कि तुमने बहुत गुरु काहेको कीने गुरु तो एकही करनौ चाहिये तहां कहैं हैं एक गुरुते अति निश्चल ज्ञान विस्तार नहीं पावे है ताते अद्वितीय ब्रह्मको ऋषि निश्चल बहुत भांति कहैं हैं, कोई कहैं है वह प्रपंचरहित है कोई कहै है सप्रपंच है जाते भ्रम

श्रीभगवानुवाच ॥ इत्युक्त्वा स यदुं विप्रस्तमामन्त्र्य गभीरधीः ॥ वन्दितोऽभ्यर्थितो राज्ञा ययौ प्रीतो यथागतम् ॥३२॥ अवधूतवचः श्रुत्वा पूर्वेषां नः सपूर्वजः ॥ सर्वसङ्गविनिर्मुक्तः समचित्तो बभूव ह ॥ ३३ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

होयहै, सो भ्रम इन गुरुनते निवृत्त होयहै परमगुरु मुख्य ज्ञानको दाता एकही है परन्तु ज्ञानके लिये पीछे अपनी बुद्धिसौं उपदेशके अनुकूल दृष्टान्त लेवेसौं वह ज्ञान दृढ है जायहै ॥ ३१ ॥ इतनो वृत्तांत कहि यदुकी आज्ञा ले गंभीर बुद्धि राजासो प्रणामको प्राप्त हैके वाकी स्वीकार कर प्रसन्न हो अवधूत अपनी इच्छा करि जैसे आये है तैसेई जात भये ॥३२॥ ये अवधूत दत्तात्रेय है, तिनके वचन सुनि हमारे बडेनहूंके बडे राजा यदु सब संग छोडि समचित्त होत भये, यह सबश्रीभगवान् उद्धवजीसो कहत भये, कपोत मत्स्य मृग कुमारी हाथी सर्प पतंग कुरर ये आठ तो त्यागके अर्थ गुरु कीनें, भ्रमर मधुहा पिंगला ये तीनों त्याज्य और ग्राह्य अर्थके लियें गुरु किये ॥ ३३ ॥

इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायामेकादशस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः।

श्रीभगवानुवाच ॥ मयोदितेष्ववहितः स्वधर्मेषु मदाश्रयः ॥ वर्णाश्रमकुलाचारमकामात्मा समाचरेत् ॥१॥ अन्वीक्षेत विशुद्धात्मा देहिनां विषयात्मनाम्॥ गुणेषु तत्त्वध्यानेन सर्वारम्भविपर्ययम् ॥ २ ॥ सुप्तस्य विषयालोको ध्यायतो वा मनोरथः ॥ नानात्मकत्वाद्विफलस्तथा भेदात्मधीर्गुणैः ॥३॥ निवृत्तं कर्म सेवेत प्रवृत्तं मत्परस्त्यजेत् ॥ जिज्ञासायां संप्रवृत्तो नाद्रियेत्कर्मचोदनाम् ॥ ४ ॥

चोवीश गुरुनतें स्थिर ज्ञानकी भूमिका पाये उद्धवको आत्मज्ञान पाइवेके अर्थ इनते अगिले अध्यायनमें साधन कहेंगे अब दशयें अध्यायनमें आत्माको संसार देहसंबंधते हैं आपुतें नहीं; औरनके मतको खंडन करिकैं भगवान् यह वर्णन करैगे ॥ मेरे कहे स्वधर्मनमें सावधान ह्वैकें मेरो आश्रय करे वर्ण आश्रम कुलको आचरण निष्काम ह्वैके करे ॥ १ ॥ जब अन्तःकरण शुद्ध है जाय तब पुरुषको उचित है कि विषयनमें लगे भये प्राणी जो विषयनको निश्चल मानकै उद्योग करे हैं विनके कार्यनके फल विपरीत होतेहैं तिनको विचारतो रहै यासौं निष्कामता प्राप्त होयहै ॥ २ ॥ जे विषय इंद्रियनसौं जाने जाय है वे सदा नहीं रहै है यासो वे अनेक प्रकारके प्रतीत होय हैं और जो अनेक प्रकारके हैं वे अध्रुव है जा प्रकार मनसौं उत्पन्न भए स्वप्न और मनोरथ अनेक ह्वेसो चले है ऐसै अनुमान करवेसो निष्कामता होय है ॥ ३ ॥ निष्काम कर्म करे सकामको त्याग करे, मेरे विषे तत्पर होइ, आत्माके विचारमें रहै, कर्मकी विधिमें आदर न

यमानभीक्ष्णं सेवेत नियमान्मत्परः क्वचित् ॥ मद-
भिज्ञं गुरुं शान्तमुपासीत मदात्मकम् ॥ ५ ॥ अमा-
न्यमत्सरो दक्षो निर्ममो दृढसौहृदः ॥ असत्वरोऽर्थ-
जिज्ञासुरनसूयुरमोघवाक् ॥ ६ ॥ जायापत्यगृहक्षे-
त्रस्वजनद्रविणादिषु ॥ उदासीनः समं पश्यन्सर्व-
ष्वर्थमिवात्मनः ॥ ७ ॥ विलक्षणः स्थूलसूक्ष्माद्देहादा-
त्मेक्षिता स्वदृक् ॥ यथाग्निर्दारुणो दाह्याद्दाहकोऽन्यः
प्रकाशकः ॥ ८ ॥ निरोधोत्पत्त्यणुबृहन्नानात्वं तत्कृता-
न्गुणान् ॥ अन्तः प्रविष्ट आधत्ते एवं देहगुणान्परः ॥ ९ ॥

करे ॥ ४ ॥ जो मो विषें तत्पर ह्वैकें आदरसों संयमनकों सेवे जब सामर्थ होइ तौ शौचादिक नेमनकों सेवे, याहूतें विशेष धर्म कहै हैं सहनशील होइ और मेरे स्वरूपको जानत होइ, शांत होइ, सो मेरोहिरूप है ऐसें गुरुकी सेवा करे ॥ ५ ॥ ऐसी भांति गुरुकी न सेवा करे, सो कहै हैं अभिमान न राखे, आलस्य न करे असहनता न करे, स्त्रीपुत्रादिकमें ममता न करे गुरुनके विषे सुहृदता राखे, कर्ममें व्यग्रचित्त न करे, परमार्थ जानिवेकी इच्छा करे काहूकी निंदा न करे, व्यर्थ बातें न करे ॥ ६ ॥ स्त्री संपत्ति घर खेत स्वजन धन सबतें उदासीन रहे, सबनमें एकही आत्मा है, यातें अपनी भांति सबनमें सुखादिक समान देखे ॥ ७ ॥ यह आत्मा स्थूल सूक्ष्म देहतें भिन्न हैं, सबको द्रष्टा है व्यापक है स्वयं ज्ञानवान् हैं, आकाशवत् हैं जैसें अग्नि दाह्य काष्ठके मध्यही रहैहै, परन्तु काष्ठतें भिन्न हैं प्रकाशक हैं और काष्ठको दाहकर्त्ता है ऐसेही आत्माको जाने ॥ ८ ॥ जैसे काष्ठमें प्रविष्ट अग्नि काष्ठ संग करि उत्पत्ति नाश अलपता महत्व

योऽसौ गुणैर्विरचितो देहोऽयं पुरुषस्य हि ॥ संसारस्तन्निबन्धोऽयं पुंसो विद्याच्छिदात्मनः ॥ १० ॥ तस्माज्जिज्ञासयात्मानमात्मस्थं केवलं परम्॥ संयम्य निरसेदेतद्वस्तुबुद्धिं यथाक्रमम् ॥ ११ ॥ आचार्योऽरणिराद्यः स्यादन्तेवास्युत्तरारणिः ॥ तत्संधानं प्रवचनं विद्यासन्धिः सुखावहः॥ १२॥ वैशारदी सातिविशुद्धबुद्धिर्धुनोति मायां गुणसंप्रसूताम् ॥ गुणांश्च संदह्य यदात्ममेतत् स्वयं च शाम्यत्यसमिद्यथाग्निः १३॥

नानात्व गुणको धरे है ऐसें यह आत्माहू या देहके संगकरि देहके गुणनको धरे हैं, परंतु देहते आत्मा भिन्न हैं नित्य है ॥९॥ और कहे हैं जो आत्मा देहते भिन्न है तो देहके गुण क्यों धरे हैं तहां कहे हैं ईश्वरके आधीन मायाके गुणसो पुरुषको यह सूक्ष्मस्थूल शरीर उपजायो भयो है वा देहमें अहं यह अभिमान करवेसों संसारमें गिरेहैं मेरो यह संसारया मायाके काटवेकों आत्मविद्या उपाय हैं ॥ १० ॥ तातें आपुहीमें स्थित देहके भिन्न आत्माके ज्ञानकी इच्छा करिके आत्मामें चित्तकों मिलाइ क्रम करिकें स्थूलसूक्ष्म देहादिकनमें आत्मबुद्धिकों छोडे ॥ ११ ॥ यह ज्ञान कैसे प्राप्त होयहै सो कहे हैं आचार्यरूप नीचेकी अरणी शिष्यरूप ऊपरकी अरणी तथा उपदेशरूप मंथनका काष्ठनसौ ब्रह्मविद्यारूप परम सुखदायक अग्नि उत्पन्न होयहै ॥ १२ ॥ जा समय बुद्धिमान गुरुसौ चतुर बुद्धिवारो शिष्य यह विद्या पावैहै तब यह विद्या गुणनके कार्यरूप संसारको और जिनसौ निर्मित हैकै यह जगत जीवके संसारको निमित्त होयहै तिन गुणनकों भस्म कर काष्ठरहित अग्निकी समान आपहू शांत है जायहै याही प्रकार कार्य कारण और विद्याकी एकता हैवेसौ जीव परमानन्द

अथैषां कर्मकर्तॄणां भोक्तॄणां सुखदुःखयोः ॥ नाना-
त्वमथ नित्यत्वं लोककालागमात्मनाम् ॥ १४ ॥
मन्यसे सर्वभावानां संस्था ह्यौत्पत्तिकी यथा ॥
तत्तदाकृतिभेदेन जायते भिद्यते च धीः ॥ १५ ॥

रूप होयहै॥ १३॥ हे उद्धव ! आत्मा स्वयंप्रकाश ज्ञानस्वरूप नित्य और एक है यामें कर्ता भोक्ता धर्म देहकी उपाधिसौं प्राप्त होयहै आत्माके सिवाय और सब पदार्थ मायारचित है यासौं विरक्त हैके पुरुष मुक्तिको प्राप्त होयहै परन्तु मीमांसक कहै है कि में हूं ऐसी प्रतीत करवेवारौ आत्मा प्रत्येक शरीरमें भिन्न है वही कर्मकर्ता और सुख दुःख भोक्ता है याकौ स्वरूपभूत कोई दूसरौ निर्विकार परमात्मा नहीं है भोगके स्थान रूप लोक भोगकौ काल भोगरूप कर्मनकौ बतायवेवारो वेद भोगके साधन और भोग भोगनेवारो आत्मा यह अनित्य होय तो वैराग्य होनौ संभव है परन्तु वे सब नित्य हैं यासौं वैराग्य होनौ संभव नहीं भोग्य पदार्थ बीचमें नष्ट है जायहैं अथवा मायामय होय तोहू वैराग्य होनौ संभव है ॥ १४ ॥ माला चंदन आदि भोगनकी स्थिति प्रवाहरूपसौ नित्य है और यथार्थ है यासौ वैराग्य होनौ असंभव है जा दशामें यह संसार देखौ जाय है या दशामें पहलेंहू हो या कारणसौ जगकौ कर्ता कोई ईश्वर नहीं आत्मा स्वयं नित्य ज्ञानमय नहीं है वामें अनेक ज्ञाननकौ विपर्यास होय है एक क्षणमें घटकौ ज्ञान नष्ट हैकै पटकौ ज्ञान होय है या प्रकार अनेक ज्ञान उत्पन्न होते रहै हैं, पूर्व ज्ञानसौ पृथक् है जाय है यासौ आत्मा नित्य ज्ञानमय नहीं सो कहै है ज्ञानके विपर्यास हैवेसौ कहा आत्मा अनित्य है जाय है नहीं आशय यह है कि ज्ञानरूप विकार आत्मामें कछु बाधा नहिं करसकै है मुक्तिमें आत्मा इन्द्रियर-

एवमप्यङ्ग सर्वेषां देहिनां देहयोगतः॥ कालावयवतः सन्ति भावा जन्मादयोऽसकृत्॥ १६॥ अत्रापि कर्मणां कर्तुरस्वातन्त्र्यं च लक्ष्यते॥ भोक्तुश्च दुःखसुखयोः को न्वर्थो विवशं भजेत्॥ १७॥ न देहिनां सुखं किञ्चिद्विद्यते विदुषामपि॥ तथा च दुःखं मूढानां वृथाहंकरणं परम्॥ १८॥

हित है यासौ वामें ज्ञानको परिणाम नहीं हैवेके कारणसौ जडता है जायगी यासौ मुक्तिकी प्राप्ति हौनौ पुरुषार्थ रूप नहीं प्रवृत्ति मार्गही है यासौ श्रेयस्कर है निवृत्ति नहीं॥ १५॥ हे उद्धव! सत्य प्रवृत्ति मार्ग ऐसोही है परंतु आगे अनर्थको हेतु है इन देहीनकूं देहके संयोगतें संवत्सररूप कालते जन्म मरणादिभाव वारंवार होय है॥ १६॥ तुह्मारे मतही विषें कर्मनके कर्तानको और सुख दुःखके भोक्ताहूको पराधीनता देखी जाय है याते ऐसे परवशको भजे यह कोन सिद्धि है और जीव स्वतंत्र होतो तौ वाय दुष्ट कर्म वा दुःखकी प्राप्ति संभव नहीं अभिप्राय यह है कि दुःखसुख भोगवेमेंहू स्वतंत्र नहीं है और कर्म करवेमेंहू जब ये स्वतंत्र नहीं है तब कहौ याकौ कोनसो अर्थ प्रयोजन सिद्धि है सकेहै॥ १७॥ या भांति या लोकमें तो सुख कहूं नहीं, और लोकहूमेंहू सुख नहीं सौ कहेहै ईर्ष्या निंदा नाश हानिसौ स्वर्गादिकमेंहू कर्मनकी विधिके जाननेवारे विद्वान् अभिमानीको किंचित् सुख प्राप्त नहीं होयहै याही प्रकार मूर्खनको दुःख देखवेमें नहीं आवैहै जे कहे है हम कर्ममें निपुण हैं यासौ सुखी हैं यह विनको वृथा अहंकार है यासौ अच्छे कर्म करवेसौ सुख मिलै है यह नियमहू न रह्यो॥ १८॥

यदि प्राप्तिं विघातं च जानन्ति सुखदुःखयोः ॥ तेऽ-
प्यद्धा न विदुर्योगं मृत्युर्न प्रभवेद्यथा ॥ १९ ॥ को
न्वर्थः सुखयत्येनं कामो वा मृत्युरन्तिके ॥ आघातं
नीयमानस्य वध्यस्येव न तुष्टिदः ॥ २० ॥ श्रुतं च
दृष्टवद्दुष्टं स्पर्धासूयात्ययव्ययैः ॥ बह्वन्तरायकाम-
त्वात्कृषिवच्चापि निष्फलम् ॥ २१ ॥

और जो कदाचित् सुख दुःखकी प्राप्ति और विघात अर्थात् नाशकूं जाने है परंतु या उपायको वेहू नहीं जानते जासो साक्षात् मृत्यु न होय ॥ १९॥ जब मृत्यु अपने निकट है तौ अर्थ अथवा कामके प्राप्त हैवेसो कौन सुखी हैसकैहै, जैसे अपराधीको मारवेको लैजायमें वा पुरुषको अर्थ काम सुख नहीं देयं ॥ २० ॥ या प्रकार जैसे यहां सुख नहीं ऐसैही परलोकमेंहू नहीं है स्वर्गादिकमेंहू पराये सुखकी असह-नता ईर्षादिक रहै है यासौं यह कि समान वहांहू दोष है जैसे कृषिके सफल हैवेमें अनेक विघ्न होयहै ऐसेही यजनसौं मिले स्वर्गमेंहू भूल-चूकके अनेक विघ्न होय हैं ॥ २१ ॥

१ आघातमिति वध्यस्येति याको अर्थ यह है कि जो बलि देवेको बकरा या कोउ है जाके मूढ काटवेके लिये शिरके ऊपर नंगी तरवार लिये कोई खडो है वाकौ हरीरदूब या कोई लड्डू भोगको अगारी धैरहै वाकौ कहौ वे कछु आनंदके देनेवारे होय है ऐसेही जाके लिये मृत्यु मारवेको तयार है वाके ताईं ये संसारके सब भोग व्यर्थ समझनो ॥ २ मूर्ख गुणकी कदर नांय जाने है, एक सेठ बीमार भये हकीमने कस्तूरी बताई, सो रूपैया लेकै नौकरको बजारमें भेजो, वाने जाकै अतारसों बूझी कि कस्तूरी है अतार बोलो है तब याने कही एक रुपैयाकी लाओ याने चार रत्ती बांधके एक पुडियामें देदी, याने जानी बांनगी दी है, सो पुडिया खोल सब फांकगयो, और फिर चद्दर बिछायकै बोलो तोल दो अच्छी है, अतारने रुपैया फेर दियो, और कही जाओ रुपैयासेही बीची, यासे मूर्ख गुण नहीं जाने हैं तासो समान रहै हैं ॥

अन्तरायैरविहतो यदि धर्मः स्वनुष्ठितः ॥ तेनापि निर्जितं स्थानं यथा गच्छति तच्छृणु ॥ २२ ॥ इष्ट्वेह देवता यज्ञैः स्वर्लोकं याति याज्ञिकः ॥ भुञ्जीत देववत्तत्र भोगान्दिव्यान्निजार्जितान् ॥ २३ ॥ स्वपुण्योपचिते शुभ्रे विमान उपगीयते ॥ गन्धर्वैर्विहरन् मध्ये देवीनां हृद्यवेषधृक् ॥ २४ ॥ स्त्रीभिः कामगयानेन किङ्किणीजालमालिना ॥ क्रीडन्न वेदात्मपातं सुराक्रीडेषु निर्वृतः ॥ २५ ॥ तावत् प्रमोदते स्वर्गे यावत्पुण्यं समाप्यते ॥ क्षीणपुण्यः पतत्यर्वागनिच्छन्कालचालितः ॥ २६ ॥ यद्यधर्मरतः सङ्गादसतां वाऽजितेन्द्रियः ॥ कामात्मा कृपणो लुब्धस्त्रैणो भूतविहिंसकः ॥ २७ ॥

इतनेपै विघ्नको निवारणकरि जो धर्म अच्छी भांति करे विन धर्मनसो पाये स्थानमें जैसे यह प्राणी जाँयहैं सो सुनो ॥ २२ ॥ या लोकमें देवतानको यज्ञकरि संतुष्टकरि यज्ञके कर्ता स्वर्गमें जायहै, देवतानकीसी भांति आपुकरी उपजे दिव्य भोग करै हैं ॥ २३ ॥ और तहां अपनें पुण्यकरि पाये उत्तम विमानमें बैठ सुंदर भेष धरें अप्सरानके विषें विहार करते फिरे हैं गंधर्व विनकी बडाई करै हैं ॥ २४ ॥ स्वेच्छाचारी क्षुद्र घंटिकानके समूहकरि शोभित विमानमें चढ्यो सुखी भयो देवतानके भोगनमें देवस्त्रीनसों विहार करते फिरे है परन्तु आत्मपातकों नहीं जाने है नंदनादि वननमें विहार करते आनंदमें मग्न होयहै ॥ २५ ॥ स्वर्गमें तहांलों सुख करैं हैं जहां ताईं पुण्य पूर्ण होई, जब पुण्य क्षीण होई तब कालकरि अनचाहत नीचे डारि दिये जायहै ॥ २६ ॥ यह फल सकाम कर्म करे ताको है

पशूनविधिनाऽऽलभ्य प्रेतभूतगणान् यजन् ॥ नरकानवशो जन्तुर्गत्वा यात्युल्बणं तमः ॥२८॥ कर्माणि दुःखोदर्काणि कुर्वन् देहेन तैः पुनः ॥ देहमाभजते तत्र किं सुखं मर्त्यधर्मिणः ॥२९॥ लोकानां लोकपालानां मद्भयं कल्पजीविनाम् ॥ ब्रह्मणोऽपि भयं मत्तो द्विपरार्धपरायुषः ॥३०॥ गुणाः सृजन्ति कर्माणि गुणोऽनुसृजते गुणान् ॥ जीवस्तु गुणसंयुक्तो भुङ्क्ते कर्मफलान्यसौ ॥३१॥

तहांऊ जो निषिद्ध प्रकार न करे जब होइ और जो असत संग करे अधर्मी होई इंद्रिय जीती न होइ, स्त्रीलंपट होई कामहींमें चित्त होइ, प्राणीनकों दुःख देतहोइ, लोभी होइ कृपण होइ प्राणीनकी हिंसा करनवारे होय ॥ २७ ॥ और जो अविधिसों पशुनको मारिकरि भूत प्रेतगणनको पूजते है ऐसे जीव परवश होइ नरकमें परे स्थावरके भावको प्राप्त होयहै ॥ २८ ॥ विन कर्मनमें दुःखही फल हैं, ऐसे कर्मनकों देहसों करते मरे पीछें फेरि उन कर्मनकरि दुःख भोगकों वैसीही देह धरैहैं, तातें जो मरेंगो ताको कौन सुख हैं ॥ २९ ॥ लोकपाल कल्पपर्य्यंत जीवेहै, तोहू विनकों विनके लोकनकों मोतें भय रहै है, मेरे भयतें ये सब देवता अपनो अपनो काम करैहैं, ब्रह्माकी आयु दोइ परार्द्ध है तोहू वाहूको मोतें भय है ॥ ३० ॥ और कहें हैं कर्म कछू ईश्वर नहीं, ईश्वर नियंता फलको दाता मैं हों, पर मोसों विन कर्मनसों संबंध नहीं, कर्मको संबंध या देहको है, सो प्रकार बतामें हैं, प्रथम सब इंद्रिय कर्मनसों सृजीहैं, गुण सतोगुण रजोगुण तमोगुण ये इंद्रियनकों सृजे है, आत्मा कछू नहीं करैहैं, परि यह जीव तो इंद्रियनके संग करि अहंकर्त्ता अभिमान

यावत्स्याद्गुणवैषम्यं तावन्नानात्वमात्मनः ॥ नानात्वमात्मनो यावत्पारतन्त्र्यं तदेव हि ॥ ३२॥ यावदस्याऽस्वतन्त्रत्वं तावदीश्वरतो भयम् ॥य एतत् समुपासीरंस्ते मुह्यन्ति शुचार्पिताः ॥३३ ॥ काल आत्मागमो लोकः स्वभावो धर्म एव च ॥ इति मां बहुधा प्राहुर्गुणव्यतिकरे सति ॥३४॥ उद्धव उवाच ॥ गुणेषु वर्तमानोऽपि देहजेष्वनपावृतः ॥ गुणैर्न बध्यते देही बध्यते वा कथं विभो ॥ ३५ ॥

धरेहैं, तातें कर्मनके फल भोगेहै ॥ ३१ ॥ जो कहो यह आत्मा अनेक क्यों दीखे हैं आत्मा तौ एकही सुनी हैं तहां कहैहै कि इन गुणनके धर्मसौ जबतक अहंभाव है, तबतक अनेक प्रतीत होयहैं, जब ये मायाके गुण छूटि जाइगे तब आत्मा एकही दीखेगो और जहांलों ताकों आत्मा अनेक लगेहैं, तबहीलों पराधीनहू हैं॥ ३२ ॥ जबलों याकू पराधीनता है, तबलों ईश्वरके भय है यह प्रवृत्तिमार्गमें ऐसो दोष है ताकों जे सेवन करैं है वे मोहमें परे शोकही युक्त हैं ॥ ३३ ॥ काल आत्मा शास्त्र लोक स्वभाव धर्म यह नाम गुण संबंधते कहैहै, गुणसंबंध छूटे यह मेरेही स्वरूप है सबमेंही हो, मायासंबंधतें अनेकरूप दीखै हें तातें निवृत्ति मार्गही उत्तम मुक्तिको कारण है ॥ ३४ ॥ उद्धवजी बोले हे भगवन्! यह आत्मा गुणनसों मिल्योहै, तोहू गुणकों कार्य्य सुख दुःख कर्मसों बद्ध नहीं हैं, यातें आकाशकी भांति सर्वत्र व्यापक है, और निर्लेप है आवरणरहित जब तुह्मारे मतमें आत्मा एकही है तौ वह कैसे बंधनमें आवैहै कि जासौ वाको मुक्तिकी अपेक्षा होय है यह कहिये ॥ ३५ ॥

कथं वर्तेत विहरेत्कैर्वा ज्ञायेत लक्षणैः ॥ किं भुञ्जीतो-
त विसृजेच्छयीतासीत याति वा ॥ ३६ ॥ एतदच्युत
मे ब्रूहि प्रश्नं प्रश्नविदां वर ॥ नित्यबद्धो नित्यमुक्त
एक एवेति मे भ्रमः ॥ ३७ ॥ इति श्रीभागवते महा-
पुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे दशमो-
ऽध्यायः ॥ १० ॥

अथ एकादशोऽध्यायः ।

श्रीभगवानुवाच ॥ बद्धो मुक्त इति व्याख्या गुणतो
मे न वस्तुतः ॥ गुणस्य मायामूलत्वान्न मे मोक्षो न
बन्धनम् ॥ १ ॥

और बंधे पीछें कौन भांति रहै है मुक्ति होइ तब कैसें रहै सो कहो, कौन भांति रहै, कैसें विहार आहार करे, कौन लक्षणसों जान्यो जाइ, कहां भोजन करे, कहां छोडे, कहां सोवे; कैसें बैठे कहां जाइ, यह दोनो बद्धमुक्त कौन लक्षणनसों दूसरनको जाननेमें आवे है ॥ ३६ ॥ हे अच्युत ! हे विदांवर ! ये मेरो जो प्रश्न है सो सब मोसों कहो, यह एक नित्यही बद्ध है नित्यमुक्त है सो मोकों भ्रम है ॥ ३७ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां एकादशस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

ग्यारहें अध्यायमें बद्ध और मुक्त और साधु भक्तिके लक्षण हरिने कहेहैं तहां पहिले यह बद्ध और मुक्त जैसे होय हैं सो कहें हैं ॥ आत्मा बद्ध है, मुक्त है, यह कथन मेरे गुणसंबंधते है, सांचो नहीं, गुणको मूल माया है, मै तो मायाको नियंता हों तातें मोको न बंधन हैं न मोक्ष हैं ॥ १ ॥

शोकमोहौ सुखं दुःखं देहोत्पत्तिश्च मायया ॥ स्वप्नो यथात्मनः ख्यातिः संसृतिर्न तु वास्तवी ॥२॥ विद्याविद्ये मम तनू विद्धयुद्धव शरीरिणाम् ॥ मोक्षबन्धकरी आद्ये मायया मे विनिर्मिते॥३॥ एकस्यैव ममांशस्य जीवस्यैव महामते ॥ बन्धोऽस्याविद्ययाऽनादिर्विद्यया च तथेतरः ॥ ४ ॥ अथ बद्धस्य मुक्तस्य वैलक्षण्यं वदामि ते ॥ विरुद्धधर्मिणोस्तात स्थितयोरेकधर्मिणि॥५॥सुपर्णावेतौ सदृशौ सखायौ यदृच्छयैतौ कृतनीडौ च वृक्षे ॥ एकस्तयोः खादति पिप्पलान्नमन्यो निरन्नोऽपि बलेन भूयान् ॥ ६ ॥

बंधनगये पीछे धर्म कहें हैं, मोको मोह सुख दुःख देहकी प्राप्ति ये सब संसारके धर्म मायाकरि होय है, जैसें स्वप्नसौं बुद्धिको विवर्त है तैसें संसार हैं सांचो नहीं है॥२॥ हे उद्धव ! एक विद्या दूसरी अविद्या ये दोऊ मेरी मायाकरि रचीहै, मेरी देहरूपशक्ति है, अनादि देहधारीनकों मोक्ष और बंधन करें हैं ॥३॥ हे महाबुद्धिवंत उद्धव ! ये सब मेरोही एक अंश जीव है ताको अविद्याकरि अनादि बंध हैं विद्याकरि मोक्ष हैं, मोकों न बंध है, न मोक्ष हैं ॥४ ॥ अब याको भेद बतावे हैं परस्पर आत्मा परमात्मा विरुद्धधर्मा हैकै एकही देहमें स्थित हैं इनमें एक तो जीव ईश्वरको भेद द्वितीय जीवको जीवसौ भेद यह दो भेद है एक शरीरमें स्थित जीव ईश्वरमें ईश्वरको धर्म आनंद और जीवको धर्म दुःख है एक नियंता ईश्वर एक जीव है देहाभिमान धरे बद्ध हैं इन दोऊनको भेद दृष्टांतसो कहोहों ॥ ५ ॥ दोऊ पक्षी है चैतन्यरूप करि समान है, दोऊ मित्र हैं, अपनी इच्छा करि एक

आत्मानमन्यं च स वेद विद्वानपिप्पलादो न तु पिप्पलादः ॥ योऽविद्यया युक्तस तु नित्यबद्धो विद्यामयो यः स तु नित्यमुक्तः ॥७॥ देहस्थोऽपि न देहस्थो विद्वान् स्वप्नाद्यथोऽत्थितः ॥ अदेहस्थोऽपि देहस्थः कुमतिः स्वप्नदृग् यथा॥८॥ इन्द्रियैरिन्द्रियार्थेषु गुणैरपि गुणेषु च ॥ गृह्यमाणेष्वहं कुर्यान्न विद्वान् यस्त्वविक्रियः ॥ ९ ॥

देहरूप वृक्षऊपर आइ बैठे हैं तिनमें एक या देहके फलको भोग करे है दूसरो साक्षी भयो देखे है, भोग नहीं करें, तथापि ज्ञान शक्ति करि अति बलिष्ठ है या भांति एकही रूपके दोऊ विरुद्ध कर्म करै है ॥ ६ ॥ जो परमात्मा ईश्वर साक्षी ज्ञाता है वह अपने स्वरूपको और जीवके स्वरूपकोहू जाने हैं, और जो जीवात्मा है सो न आपकों जाने हैं न ईश्वरकों जाने है, वह अज्ञ है, तातें जो अविद्यासों मिल्यो है सो नित्य बद्ध है जो विद्यासों संयुक्त है सो नित्य मुक्त है ॥ ७ ॥ ज्ञानकों विलक्षणता कहिकें स्थितिकी विलक्षणता कहैं हैं, वही पंडित हैं जो अपने स्वरूप और परमात्माको जाने हैं, सो यद्यपि देहहीमें है पर देहते न्यारे हैं, देहके धर्म वाको व्याप्त नहीं जैसें स्वप्नतें उठेको स्वप्नकी देहके धर्म नहीं लगे है जो अज्ञानी हैं सो यद्यपि वस्तुतें देहतें न्याराई है पर देहके अभिमानसों देहमें स्थित हैं, सुख दुःखको भोग करैं हैं, जैसे स्वप्नके देहमें स्थित स्वप्नके सुख दुःख भोगे है ॥ ८ ॥ औरहू विलक्षणता कहें हैं इंद्रिय अपनें विषयनकों ग्रहण करैं है तौहु रागद्वेषादिरहित मुक्त पुरुषमें इन विषयनको भोगताई ऐसे नहीं माने है कारण यही है कि विषयनको जो इन्द्री स्वीकार करै है वह गुणनके कार्यको गुणही ग्रहण करैहै हे ज्ञानी ! वासो

दैवाधीने शरीरेऽस्मिन्गुणभाव्येन कर्मणा ॥ वर्तमा-
नोऽबुधस्तत्र कर्तास्मीति निबध्यते ॥ १० ॥ एवं वि-
रक्तः शयन आसनाटनमज्जने ॥ दर्शनस्पर्शनघ्रा-
णभोजनश्रवणादिषु ॥ ११ ॥ न तथा बध्यते विद्वां-
स्तत्र तत्रादयन्गुणान् ॥ प्रकृतिस्थोऽप्यसंसक्तो यथा
खं सवितानिलः ॥ १२ ॥ वैशारद्येक्षयाऽसङ्गशितया
छिन्नसंशयः ॥ प्रतिबुद्ध इव स्वप्नान्नानात्वाद्विनिवर्त-
ते ॥१३ ॥ यस्य स्युर्वीतसंकल्पाः प्राणेन्द्रियमनोधि-
याम् ॥ वृत्तयः स विनिर्मुक्तो देहस्थोऽपि हि तद्गुणैः १४

आपको निर्लेप माने हैं ॥ ९ ॥ यह देह पूर्व कर्मके आधीन हैं, ता देहमें स्थित इंद्री अपने विषयनमें प्रवृत्त होय हैं तहां मैं कर्त्ता हों या अभिमान करि यह आत्मा बंधे हैं, यह अज्ञ है शयन आसन गमन स्नान दर्शन स्पर्श आघ्राण भोजन श्रवण ये सब इंद्रियनके धर्म हैं; मेरे धर्म नहीं, वृथा अभिमान करिकें बंधे हैं ॥ १० ॥ ऐसे वैराग्य और विवेक जाको होइ सो बद्ध नहीं होइ है क्योंकि इंद्रियनको विषयभोग करावे हैं; आपु नहीं करें हैं यातें बंधनको नहीं पावे है ॥११॥ तहां दृष्टांत है जैसे आकाश सर्वत्र व्याप्त है पर सबतें निर्लेप हैं, जैसे सूर्य जलादिकनमें प्रतिबिंबित है तोऊ कंपरूप जलके धर्मते न्यारो है, जैसे वायु सर्वत्र फिरें हैं तोऊ निर्लेप है तैसें आत्मा या देहमें स्थित है इंद्रियनके स्वभावकरि तिन तिन विषयनकों ग्रहण करे है पर विनते भिन्न है ॥ १२ ॥ वैराग्य द्वारा तीक्ष्ण निर्मल ज्ञानसों सकल संशय काटि नानाविधिके या प्रपंचतें निवृत्त होइ, जैसें स्वप्नते जागिकें स्वप्नके धर्मनतें निवृत्त होइहै ॥ १३ ॥ जाकें प्राण इंद्रिय

यस्यात्मा हिंस्यते हिंस्रैर्येन किञ्चिद्यदृच्छया ॥ अ-
र्च्यते वा क्वचित्तत्र न व्यतिक्रियते बुधः ॥ १५ ॥ न
स्तुवीत न निन्देत कुर्वतः साध्वसाधु वा ॥ वदतो
गुणदोषाभ्यां वर्जितः समदृङ् मुनिः ॥ १६ ॥ न कुर्या-
न्न वदेत्किञ्चिन्न ध्यायेत्साध्वसाधु वा ॥ आत्मारा-
मोऽनया वृत्त्या विचरेज्जडवन्मुनिः ॥ १७ ॥ शब्दब्रह्म-
णि निष्णातो न निष्णायात्परे यदि ॥ श्रमस्तस्य
श्रमफलो ह्यधेनुमिव रक्षतः ॥ १८ ॥

मन बुद्धिकी वृत्ति संकल्प विकलपरहित होय सो देहमेंस्थित है तौहू देहके धर्मनते मुक्त है ॥ १४ ॥ जाको देह स्वेच्छासौं दुर्जनकरि पीडित होइ वा काहूसौं पूजित होइ तो जाको यामें सुख दुःख न होय कछु विकार न उपजे वही ज्ञानवान् है ॥ १५ ॥ कोई भलौ करै अथवा बुरौ अच्छौ कहे वा बुरौ आप काहूकी निन्दा स्तुति न करै लौकिक व्यवहारते न्यारो रहै गुणदोषनकरके वर्जित जो मुनि है वो समान दृष्टि ह्वैके रहै वही मुक्त हैं ॥ १६ ॥ कर्मादिकनमें उदा-सीन रहै, न कछु करे, न कछु विचारे भलो बुरो मनमें न धरे, एक आत्माहीसों रमतरहै, या वृत्तिकरि जडकीसी भांति मुनि फिरै ॥ १७ ॥ मुक्त पुरुषके जो लक्षण है वही मुमुक्षुके साधन है जो पुरुष वेदार्थमें निपुण है वह प्रथम कहे सा धनसौं वेदमें निष्ठा राखके ईश्वरको ध्यानादिक करे तो विनको शास्त्र पढौ भयो जैसे बहुत दिननकी प्रसूता गोसौं फिर दूध मिलनौं संभव न होय तौ वाके दूधकी आशावाले पुरुषको श्रमकौफल केवल श्रमही होय है ऐसेही क्रिया न करनेसौं शास्त्राभ्यास व्यर्थ है मतलब यह है कि जो वेदमें निष्णात हैके परब्रह्ममें पारंगत न होय तब वाको वेद पढवेको श्रमके

गां दुग्धदोहामसतीं च भार्यां देहं पराधीनमसत्प्रजां च ॥ वित्तं त्वतीर्थीकृतमङ्ग वाचं हीनां मया रक्षति दुःखदुःखी ॥ १९॥ यस्यां न मे पावनमङ्ग कर्म स्थित्युद्भवप्राणनिरोधमस्य ॥ लीलावतारेप्सित जन्म वा स्याद्वन्ध्यां गिरं तां बिभृयान्न धीरः ॥२० ॥ एवं जिज्ञासयाऽपोह्य नानात्वभ्रममात्मनि ॥ उपारमेत विरजं मनो मय्यर्प्य सर्वगे ॥२१ ॥ यद्यनीशो धारयितुं मनो ब्रह्मणि निश्चलम् ॥ मयि सर्वाणि कर्माणि निरपेक्षः समाचर ॥२२॥ श्रद्धालुर्मे कथाः शृण्वन्सुभद्रा लोकपावनीः ॥ गायन्ननुस्मरन्कर्म जन्म चाभिनयन्मुहुः ॥ २३ ॥

श्रमही फल है जैसे वृद्ध गऊकी रक्षा करनवारेको श्रमही फल है ॥ १८ ॥ हे उद्धव ! जो कोई दूध दुही गौ, दुष्टनी स्त्री, पराधीन देह, और दुष्ट संगति, पात्र विषे न दियो धन, मेरे नामरहित वचन, इतनी बातै वारे सदा दुःखी रहे हैं और आगेहू दुःख पावेंगे अर्थात् वे पुरुष दुःखीसो दुःखी है नाम महादुःखी है ॥ १९ ॥ मेरो नाम जा वाणीमें न होई तैसी बात न कहे या विश्वकी मर्यादा जन्म पालन नाशरूप पावन मेरे कर्म और लीला अवतारन विषे जगत्को प्रिय श्रीरामकृष्णादिक जन्म जा वाणी विषें न होइ वा वाणीकूं बुद्धिमान नहीं धारण करै॥२०॥या भांति ज्ञानमार्ग कहि समाप्ति करैं है,जिज्ञासामार्गसो ऐसे निश्चय करि आत्मा विषें नाना प्रकारको भ्रम दूरि कर विचारसों निर्मल मन मो अंतर्यामी विषे स्थिर करि निवृत्त होइ॥२१॥ जो मेरे विषे मन निश्चल करि धरिवेकों समर्थ न होइ तौ सब कर्म मेरे विषे अर्पण करे, निरपेक्ष होइ कर्म करे ॥२२ ॥ ज्ञानमार्ग कठिन है,

मदर्थे धर्मकामार्थानाचरन्मदपाश्रयः ॥ लभते नि-
श्चलां भक्तिं मय्युद्धव सनातने ॥२४॥ सत्सङ्गलब्ध-
या भक्त्या मयि मां समुपासिता ॥ स वै मे दर्शितं
सद्भिरञ्जसा विन्दते पदम् ॥ २५ ॥ उद्धव उवाच ॥
साधुस्तवोत्तमश्लोक मतः कीदृग्विधः प्रभो ॥ भक्ति-
स्त्वय्युपयुज्येत कीदृशी सद्भिरादृता ॥ २६ ॥ एतन्मे
पुरुषाध्यक्ष लोकाध्यक्ष जगत्प्रभो ॥ प्रणतायानुर-
क्ताय प्रपन्नाय च कथ्यताम् ॥ २७ ॥ त्वं ब्रह्म परमं
व्योम पुरुषः प्रकृतेः परः ॥ अवतीर्णोऽसि भगव-
न्स्वेच्छोपात्तपृथग्वपुः ॥ २८ ॥

भक्तिमार्गहीं करि कृतार्थ होइगो यह कहैं हैं, प्रथम तो श्रद्धासंयुक्त होइ, पीछे अतिसुंदर लोकनकों पवित्र करनेकों समर्थ मेरी कथा सुने, मेरे जन्म कर्म गावे, स्मरण करे, वारंवार वैसीई लीला करे ॥ २३ ॥ धर्म अर्थ काम मेरे निमित्तही करे, विषयभोगार्थ न करे, मेरोही आश्रय करे, हे उद्धव ! तब सनातन स्वरूप मेरे विषे निश्चल भक्तिकों पावे ॥ २४ ॥ ऐसे सत्संगकरि प्राप्त भई भक्तिसों मोको सेवन करे, सो मेरे स्थानको निश्चय प्राप्त होयगो यह मेरे पाइवेको मार्ग साधन करि दिखायो है तब वो अनायास मेरे पदको पावे है ॥ २५ ॥ तब उद्धवजी साधुके और भक्तिके लक्षण पूछे हैं, हे उत्तम श्लोक ! हे प्रभो ! साधु कैसे होइहैं उनके चिह्न कैसे है और उनकी करी भई भक्ति कैसी होइहै जा भक्तिकों तुम मानो हो और साधु आदर करें है ॥ २६ ॥ हे पुरुषके नियंता ! हे जगत्पते ! मैं तुह्मारे विषे प्रणाम करों हों, अनुरक्त हूं, शरण आयो हूं, तातें यह मोसों कहिये ॥ २७॥ हे भगवन् ! तुम साक्षात् परब्रह्म प्रकट भयेहो, प्रकृ-

श्रीभगवानुवाच ॥ कृपालुरकृतद्रोहस्तितिक्षुः सर्वदेहिनाम् ॥ सत्यसारोऽनवद्यात्मा समः सर्वोपकारकः ॥ २९ ॥ कामैरहतधीर्दान्तो मृदुः शुचिरकिंचनः ॥ अनीहो मितभुक् शान्तः स्थिरो मच्छरणो मुनिः ॥३०॥ अप्रमत्तो गभीरात्मा धृतिमाञ्जितषड्गुणः ॥ अमानी मानदः कल्पो मैत्रः कारुणिकः कविः॥३१॥ आज्ञायैवं गुणान्दोषान्मयाऽऽदिष्टानपि स्वकान् ॥ धर्मान्संत्यज्य यः सर्वान्मां भजेत स सत्तमः ॥ ३२ ॥

तिहूते परे हो, पुरुष हो, आकाशकी भांति निर्लेप हो, भक्तनकी इच्छाकरि रूप धरोहो ॥ २८ ॥ श्रीकृष्ण बोले जो परायो दुःख न देखिसके और काहूसों द्रोह न करे, क्षमावंत होइ, सत्यही बोलैं निंदा आदि दोषरहित होइ समदृष्टि होइ, सुख दुःखमें समान होइ, यथाशक्ति सबको उपकार करे, सब प्राणिनको अपराध सहे ॥२९॥ काम करकैं बुद्धि चंचल न होइ, बाहिरकी इंद्रिय जीतिहोई कोमल शुद्ध चित्त होइ, परिग्रही न होइ, व्यर्थ कार्य न करे भोजन अल्प करे, शांत होइ स्वधर्ममें स्थितहोइ, मेरोई एक आश्रय करे मेरोई स्मरण करे ॥३०॥ सावधान रहे, निर्विकार रहे, धैर्यवंत होइ, क्षुधा, प्यास, शोक, मोह, जरा, मृत्यु ये सब जीतें होइ, अभिमानी न होइ, दूसरेकों मान देइ, औरके प्रबोधकों समर्थ होइ, मित्र होइ, सबको भलो चाहें, दयावंत होइ, पूर्ण ज्ञानवान होइ ॥ ३१ ॥ ऐसेही पुरुष साधु कहातें हैं मेरे स्वरूपभूत वेदके धर्म करवेमें अन्तःकरण

१ जब तृष्णा बढती है फिर शांति नहीं होती ॥ सवैया–तिनहुँ लोक अहार किया सब सात समुद्र पिया पुनि पानी। और जहां तहां ताकत डोलत काढत आंख डरावत प्रानी ॥ दांत दिखावत जीभ हलावत याहिते मैं यह डांकिनि जानी। सुंदर खात भये कितनो दिन ये तृष्णा अजहुं न अघानी ॥ १ ॥

ज्ञात्वाऽज्ञात्वाऽथ ये वै मां यावान्यश्चास्मि यादृशः ॥
भजन्त्यनन्यभावेन ते मे भक्ततमा मताः ॥ ३३ ॥
मल्लिङ्गमद्भक्तजनदर्शनस्पर्शनार्चनम् ॥ परिचर्या
स्तुतिः प्रह्वगुणकर्मानुकीर्तनम् ॥ ३४ ॥ मत्कथाश्र-
वणे श्रद्धा मदनुध्यानमुद्धव ॥ सर्वलाभोपहरणं दा-
स्येनात्मनिवेदनम् ॥ ३५ ॥ मज्जन्मकर्मकथनं मम
पर्वानुमोदनम् ॥ गीतताण्डववादित्रगोष्ठीभिर्मद्गृहो-
त्सवः ॥ ३६ ॥ यात्राबलिविधानं च सर्ववार्षिकपर्वसु ॥
वैदिकी तान्त्रिकी दीक्षा मदीयव्रतधारणम् ॥ ३७ ॥

शुद्ध होय है नहीं करवेमें दोष है यह जानेपैहू यह धर्म स्वामीके ध्यानमें विक्षेप करनवारे हैं और जो यह धर्म में न करूं तौ भक्तिसोही सिद्ध हैजांयगे ऐसै भक्तिकी दृढताके निमित्त दृढ निश्चय करके अपने धर्मकौ अधिकार रुद्ध हैजाय वैसो विन धर्मनको छोडकै जो प्राणी मेरौ भजन करैं वोहू महात्मा हैं ॥ ३२ ॥ तब जैसें मेरे चरित्र है तैसें मोकों जानि, अथवा विना जानेंहू जैसे होय तैसे जे कोऊ अनन्यभाव करि मोकों भजें हैं, वे मेरे परमभक्त हैं ॥ ३३ ॥ साधुनके लक्षण कहि अब भक्तिके लक्षण कहैं हैं मेरे चिह्न प्रतिमा आदि ले अनेक भांतिके और मेरे भक्तजनको दर्शन स्पर्शन पूजा सेवा स्तुति प्रणाम गुण कर्म कीर्तन ॥ ३४ ॥ हे उद्धव! मेरी कथा श्रवण करिवेमें श्रद्धा मेरो ध्यान करे जो कछू मिले सो सब मोकों समर्पण करे, दास्यभावकारि अपनी आत्मा निवेदन करे ॥ ३५ ॥ मेरे जन्म कर्म गावे, मेरे जन्माष्टमी आदि पर्व विषे फूल नैवेद्य आदि कर पूजे, गीत नृत्य वादित्र गोष्ठीकारि मेरे मंदिरमें उत्सव करे ॥ ३६ ॥ मेरे निमित्त यात्रा करे, पुष्पादिकनकारि पूजा करे, भेट समर्पै, वर्ष प्रतिवर्ष उत्सव करे,

ममार्चास्थापने श्रद्धा स्वतः संहत्य चोद्यमः ॥ उद्यानोपवनाक्रीडपुरमन्दिरकर्माणि ॥ ३८ ॥ संमार्जनोपलेपाभ्यां सेकमण्डलवर्तनैः ॥ गृहशुश्रूषणं मह्यं दासवद्यदमायया ॥ ३९ ॥ अमानित्वमदम्भित्वं कृतस्यापरिकीर्तनम् ॥ अपि दीपविलोकं मे नोपयुञ्ज्यान्निवेदितम् ॥ ४० ॥ यद्यदिष्टतमं लोके यच्चातिप्रियमात्मनः ॥ तत्तन्निवेदयेन्मह्यं तदानन्त्याय कल्पते ॥ ४१ ॥

वैदिक तांत्रिक दीक्षा लेइ, मेरे व्रत करे ॥ ३७ ॥ और मेरी प्रतिमा स्थापनमें श्रद्धा राखे, आपुतें अथवा औरसों मिलिकैं मेरे निमित्त फूलनको बाग मंदिर क्रीडा स्थल नगर गामके करिवेविषे उद्यम करे ॥ ३८ ॥ मेरे मंदिरमें बुहारी देनों, लीपनों, छिरकाउ करनो, चौक पूरे और रंगवल्ली आदि चित्राम करनो, ऐसें मेरे गृहकी सेवा करे दासकी भांति निष्कपट सेवा करे ॥ ३९ ॥ आपु अभिमान न करे, दंभ न करे जो करे सो कहे नहीं, मेरे निवेदित दीपादि वस्तुसों अपनो गृह कार्य न करे ॥ ४० ॥ "और ग्रंथनमें कह्यो है छै मासके उपवासन करि जो फल होइ सो कलियुगमें विष्णुके नैवेद्यके शेषसों पुण्य होई जाके हृदयमें हरिको रूप होइ मुखमें हरिनाम होइ उदरमें हरिको प्रसादी नैवेद्य होइ माथेमें प्रसादी पुष्पादिक होइ सो हरिको रूप है, अथवा और देवताको समर्पी वस्तु मोकों न अर्पण करे" यह अर्थ और ग्रंथनमें हैं, "विष्णुके नैवेद्य अन्नकरि और देवतानकों पूजिये, फेरि वुह प्रसादी नैवेद्य पितरनकों दीजिये, तो अनंत पुण्य होइ, पितरनको शेष जो हरिको देइ तो पितर वीर्य्य खानहारे होयहैं फेरि क्लेश पावे, दीपक पर्यंत मेरे मंदिरमें निवेदन कियो होइ ताके प्रकाशसों अपनों कार्य न करे" जो वस्तु या लोकमें आपुको

सूर्योऽग्निर्ब्राह्मणो गावो वैष्णवः खं मरुज्जलम् ॥ भू-
रात्मा सर्वभूतानि भद्र पूजापदानि मे ॥४२॥ सूर्ये तु
विद्यया त्रय्या हविषाग्नौ यजेत माम् ॥ आतिथ्येन तु
विप्राग्र्ये गोष्वङ्ग यवसादिना ॥ ४३ ॥ वैष्णवे बन्धुस-
त्कृत्या हृदि खे ध्याननिष्ठया ॥ वायौ मुख्यधिया
तोये द्रव्यैस्तोयपुरस्कृतैः ॥४४॥ स्थण्डिले मन्त्रहृद-
यैर्भोगैरात्मानमात्मनि ॥ क्षेत्रज्ञं सर्वभूतेषु समत्वेन
यजेत माम् ॥ ४५ ॥ धिष्ण्येष्वेष्विति मद्रूपं शङ्ख-
चक्रगदाम्बुजैः ॥ युक्तं चतुर्भुजं शान्तं ध्यायन्नर्चे-
त्समाहितः ॥ ४६ ॥

अति प्रिय होइ, निषिद्ध न होइ सो मोकों अर्पणकरे तो वुह वस्तु अनंत फलकों करे ॥ ४१ ॥ अब ये ग्यारे ठौर पूजनकों कहेहैं हे उद्धव ! सूर्य्य अग्नि ब्राह्मण गौ वैष्णव आकाश वायु जल भूमि आत्मा सब प्राणिमात्र मेरी पूजाके स्थल हैं ॥४२॥ तहां जाकी पूजा जैसें कीजे सो कहें हैं, वेदोक्त विद्याकरि सूर्य्यमें मेरी पूजा करे, अग्निमें घृत होमकरि मोकों पूजे, ब्राह्मणमें आतिथ्य अभ्यागतकरि पूजे, गायमें अच्छे सुन्दर तृणादिक करि सेवा करे ॥ ४३ ॥ वैष्णवमें अपने बंधुकी भांति आदर करि मेरी पूजा करे हृदयआकाशमें ध्यानकरि पूजे वायुमें प्राण बुद्धिकरि पूजे जलमें तर्पण आदि द्रव्यकरि पूजे ॥४४॥ भूमिमें गोपमंत्र न्यासकरि मेरी पूजा करे अपनपेमें आत्माकी पूजा भोग करिकें जो भोग करे सो सब आत्माकों समर्पे, सब प्राणिमात्रमें समदृष्टि करि मेरी पूजा करे, मैं अंतर्यामी हो ॥ ४५ ॥ एकाग्र मन हो इन स्थलनमें शंख चक्र गदा पद्म धरे चतु-

इष्टापूर्तेन मामेवं यो यजेत समाहितः ॥ लभते मयि सद्भक्तिं मत्स्मृतिः साधुसेवया ॥ ४७ ॥ प्रायेण भक्तियोगेन सत्सङ्गेन विनोद्धव ॥ नोपायो विद्यते सध्र्यङ् प्रायणं हि सतामहम् ॥ ४८ ॥ अथैतत्परमं गुह्यं शृण्वतो यदुनन्दन ॥ सुगोप्यमपि वक्ष्यामि त्वं मे भृत्यः सुहृत् सखा ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवाद एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

भुंज शांतिरूपकों ध्यान कर मेरी पूजा करे जो निश्चयमन ह्वैकरि यज्ञ वापी कूप तडाग बागसों मेरी पूजा कर साधुकी ॥ ४६ ॥ सेवा करि मेरा स्मरण करते २ मोमें परम भक्ति प्राप्त करै हैं ॥ ४७ ॥ या प्रकार ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग कहकर विशेषतें भक्तिमार्गकों श्रेष्ठ कहैं हैं, हे उद्धव ! पहेले सत्संग होइ तातें भक्ति होइ, संसार तरणकों यातें और उपाय उत्तम नहीं है जातें साधुनको एक मैंही आश्रय हो तातें अतिश्रेष्ठ उत्तम वैष्णवनको सत्संग अति श्रेष्ठ है ॥ ४८ ॥ हे उद्धव ! तुम सब ओरतें मेरे हो सुहृद् सखा हो तातें तुमसों कह्यो हैं यह जो भक्तियोग गुप्त है सो तुम्हारे सुनाइबेको में कहूंगो ॥ ४९ ॥

इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां एकादशस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः ।

श्रीभगवानुवाच ॥ न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव च ॥ न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्त्तं न दक्षिणा ॥ १ ॥ व्रतानि यज्ञश्छन्दांसि तीर्थानि नियमा यमाः ॥ यथावरुन्धे सत्सङ्गः सर्वसङ्गापहो हि माम् ॥ २ ॥ सत्सङ्गेन हि दैतेया यातुधाना मृगाः खगाः ॥ गन्धर्वाप्सरसो नागाः सिद्धाश्चारणगुह्यकाः ॥ ३ ॥ विद्याधरा मनुष्येषु वैश्याः शूद्राः स्त्रियोऽन्त्यजाः ॥ रजस्तमःप्रकृतयस्तस्मिंस्तस्मिन्युगेऽनघ ॥ ४ ॥ बहवो मत्पदं प्राप्ताः स्त्वाष्ट्रकायाधवादयः ॥ वृषापर्वा बलिर्बाणो मयश्चाथ बिभीषणः ॥ ५ ॥

बारहें अध्यायमें सत्संगकी पहेलें सत्संगकी महिमा और कर्मनकों करिवो कहकर तातें आगे तिनके त्यागकी अवस्था कहैं हैं श्रीभगवान् बोले ॥१॥ हे उद्धव ! योग और तत्वनको विवेक और अहिंसा आदि धर्म विद्याको अध्ययन तप त्याग अग्निहोत्रादिक वापी कूप तडाग दक्षिणा ॥ १ ॥ व्रत यज्ञ वेद तीर्थ नेम संयम ये सब मोको ऐसे वश नहीं करि सकेहै जैसे श्रेष्ठ विष्णुभक्तको सत्संग मोको वश करे हैं कारण कि सत्संग सब कुसंगनकौ छुडायवेवारौ है ॥ २ ॥ दैत्य राक्षस पक्षी मृग गंधर्व अप्सरा नाग सिद्ध चारण गुह्यक ॥ ३ ॥ विद्याधर और मनुष्यनमें वैश्य शूद्र स्त्री ये सब नीच जाति राजस तामस स्वभाव युक्तहू विन विन युगनमें ॥ ४ ॥ मेरे पदको प्राप्त भयेहैं, औरहू बहुत हैं, वे वृत्रासुर प्रह्लाद वृषपर्वा बलि बाणासुर मय बिभीषण ॥ ५ ॥

सुग्रीवो हनुमानृक्षो गजो गृध्रो वणिक्पथः॥ व्याधः कुब्जा व्रजे गोप्यो यज्ञपत्न्यस्तथा परे॥ ६॥ ते नाधीतश्रुतिगणा नोपासितमहत्तमाः॥ अव्रतातप्ततपसः सत्सङ्गान्मामुपागताः॥ ७॥ केवलेन हि भावेन गोप्यो गावो नगा मृगाः॥ येऽन्ये मूढधियो नागाः सिद्धा मामीयुरञ्जसा॥ ८॥ यं न योगेन सांख्येन दानव्रततपोऽध्वरैः॥ व्याख्यास्वाध्यायसंन्यासैः प्राप्नुयाद्यत्नवानपि॥ ९॥ रामेण सार्धं मथुरां प्रणीते श्वाफल्किना मय्यनुरक्तचित्ताः॥ विगाढभावेन न मे वियोगतीव्राधयोऽन्यं ददृशुः सुखाय॥ १०॥ तास्ताः क्षपाः प्रेष्ठतमेन नीता मयैव वृन्दावनगोचरेण॥ क्षणार्धवत्ताः पुनरङ्ग तासां हीना मया कल्पसमा बभूवुः ११

सुग्रीवहनुमान् जाम्बवान् गजेंद्र जटायु तुलाधार वैश्य व्याध कुब्जा गोपी व्रजविषे यज्ञपत्नी ऐसें और अनेक मोकों प्राप्त भये॥ ६॥ ये कोऊ वेदार्थ नहीं पढे हैं; महत्पुरुषकी उपासना नहीं करी, व्रत, दान, तप कछु न करेहे, एक मेरे संगते मोकों प्राप्तभये॥ ७॥ गोपी गाय यमलार्जुन मृग ये और मूढ बुद्धि कालीतें लेकें नाग सिद्ध अनायास मोकों प्राप्त होतभये॥ ८॥ सांख्य योग दान व्रत तप यज्ञ व्याख्यान अध्ययन संन्यास इतने जतनहू करि जो मोकूं न पावतभये, ताकों एकभावमात्र करि पावतभये॥ ९॥ अब मुख्य उत्तम भावगोपीनको कहें हैं, तातें पहिलें गोपीनके भावकी स्तुति करें हैं, हे उद्धव! जब अक्रूर आइकें बलदेवसहित हमको मथुरा लेगये, तब दृढ प्रीति करि मोविषें आसक्त चित्तवारी वियोग करि दुःसह चित्त गोपी सुखके अर्थ मोतें औरकों न देखत भई॥ १०॥ हे उद्धव! वृंदावनमें

ता नाविदन्मय्यनुषङ्गबद्धधियः स्वमात्मानमद-
स्तथेदम् ॥ यथा समाधौ मुनयोऽब्धितोये नद्यः प्र-
विष्टा इव नामरूपे ॥ १२ ॥ मत्कामा रमणं जारम-
त्स्वरूपविदोऽबलाः ॥ ब्रह्म मां परमं प्रापुः सङ्गाच्छ-
तसहस्रशः ॥ १३ ॥ तस्मात्त्वमुद्धवोत्सृज्य चोदनां
प्रतिचोदनाम् ॥ प्रवृत्तं च निवृत्तं च श्रोतव्यं श्रुत-
मेव च ॥ १४ ॥ मामेकमेव शरणमात्मानं सर्वदेहि-
नाम् ॥ याहि सर्वात्मभावेन मया स्या ह्यकुतोभयः
॥ १५ ॥ उद्धव उवाच ॥ संशयः शृण्वतो वाचं तव
योगेश्वरेश्वर ॥ न निवर्त्तत आत्मस्थो येन भ्राम्यति
मे मनः ॥ १६ ॥

फिरते विनकों अतिप्रिय मेरे संग जे जे रात्रि एकक्षणकी समान वीती वे वे रात्रि मो विना विन गोपीनको कल्प समान भई ॥ ११ ॥ मेरेमें गोपियनकी बुद्धि अधिक आसक्त हैगईही विन्है पति पुत्रादि तथा देहको तथा लोक परलोककौ कछु ध्यान न रह्यो जैसे समाधिमें मुनियनको नाम स्वरूपको ध्यान नहीं रहैहै वा जैसे नदी समुद्रमें मिल जाय हैं तैसे गोपी मेरे स्वरूपमें लीन होई ॥ १२ ॥ या प्रकार केवल मेरी इच्छावारी सहस्रशः स्त्री यद्यपि मेरे स्वरूपकों नहीं जानतीही तौहू जारबुद्धिसौ जाने भए मोपै ब्रह्मके सत्संगकी महिमासौ मुक्त हैगई ॥ १३ ॥ हे उद्धव ! मेरे भजनकों ऐसो प्रभाव है,जो जारबुद्धिसौ भजन करेकेंहू मोकों प्राप्त भई,तातें तुम श्रुति स्मृतिके विधि निषेध छोडि प्रवृत्तिनिवृत्तिधर्म छोडि सुनोसुनायो छोड ॥१४॥सब देहधारीनकी आत्मा में हूं, तातें सबनमें मेरो भाव राखि मेरी एक शरणकों प्राप्त हैकै तुम निर्भय होउगे॥१५॥तहां उद्धव पूछे

॥ श्रीभगवानुवाच ॥ स एष जीवो विवरप्रसूतिः प्राणेन घोषेण गुहां प्रविष्टः ॥ मनोमयं सूक्ष्ममुपेत्य रूपं मात्रा स्वरो वर्ण इति स्थविष्ठः ॥ १७॥ यथाऽनलः खेऽनिलबन्धुरूष्मा बलेन दारुण्यधिमथ्यमानः ॥ अणुः प्रजातो हविषा समिध्यते तथैव मे व्यक्तिरियं हि वाणी ॥ १८ ॥

हे ,हे योगेश्वरनके ईश्वर! तुह्मारी बात सुनकर आत्मा विषे मेरो संदेह निवर्त नहीं होयहै ताते मन भ्रमें है, प्रथम तुमने कह्यो मेरो भजन करो अब कहोहो सब धर्म छोडि मेरे शरण आओ, तहां अब कहा कीजे त्याग करिये अथवा भजन करिये, यह भ्रम तुम दूरि करो, तब श्रीकृष्ण कहेहै ॥ १६ ॥ हे उद्धव! पहिलें तो यह जीव-ईश्वर है, ब्रह्म है, सो अविद्याके संग करि अपनो धर्म भूलिगयोहै, अविद्याके धर्महीकों अपनें धर्म समझि अहंकर्त्ता अभिमानकरि बंधे है, जब अविद्याके धर्म दूरि होई, तब चित्त शुद्ध होइ, ताके निमित्त निष्काम कर्म करनो कह्यो, जब चित्त शुद्ध भयो तब कर्मको त्याग कह्यो वाको विवेक भयो तब विवेक करि सर्वत्र वह मेरो रूप जानें है अब कर्मको अधिकार भयो ज्ञानको अधिकार भयो ताते सब कर्म तजिकें मेरी शरण आउ यह उपदेश देतभये, अब ईश्वरतें वाणी इंद्रियद्वारा जीवके संसारको कारण भूतप्रपंचकी उत्पत्ति कहें हैं सो ईश्वर आधारादि चक्रनमें प्रगट होय हैं वा प्रकटताकों कहें हैं, सो ईश्वर नादवंत पर नाम प्राणसहित आधार चक्रनमें प्रविष्ट होइकरि मनोमय सूक्ष्म रूप देखें, और मध्यमा नाम मणिपूरक और विशुद्धचक्र विषें आइकरि मुखमेंहूंस्वरादिक मात्रा उदात्तादिक स्वर अकारादि अक्षररूप वैखरी नाम अतिस्थूल नाना विधि रूप होयहैं ॥ १७ ॥ तहां दृष्टांत कहैहैं जैसें आकाशमें गर्मीरूप,

एवं गदिः कर्मगतिर्विसर्गो घ्राणो रसो दृक्स्पर्शः श्रु-
तिश्च ॥ संकल्पविज्ञानमथाभिमानः सूत्रं रजःसत्त्व-
तमोविकारः ॥ १९ ॥ अयं हि जीवस्त्रिवृदब्जयोनिर-
व्यक्त एको वयसा स आद्यः ॥ विश्लिष्टशक्तिर्बहुधेव
भाति बीजानि योनिं प्रतिपद्य यद्वत् ॥ २० ॥ यस्मि-
न्निदं प्रोतमशेषमोतं पटो यथा तन्तुवितानसंस्थः॥य
एष संसारतरुः पुराणः कर्मात्मकः पुष्पफले प्रसूते २१

अग्निरूप अप्रकट है, बलकरि काष्ठमें मथतें वायुके सहाइकरि पहिलें सूक्ष्मरूपनिकसे, पीछें हविष्य करि बढेहै, तैसे यह वाणी मेरे प्रगट होवेको स्थान है ॥ १८॥ हाथनको धर्म क्रिया, चरणको धर्म गमन, और गुह्येंद्रियको धर्म मलादिविसर्जन, आघ्राण रस दर्शन श्रवण ये सब ज्ञानेंद्रियके धर्म, संकल्प मनको धर्म, विज्ञान और बुद्धि चित्तको धर्म, अभिमान अहंकारको धर्म, सूत्र मायाको धर्म सत्त्व रज तम इन तीनि गुणको विकार अधिदैव अध्यात्म अधिभूत ये सब मेरे प्रगट होयवेके स्थान हैं ॥ १९ ॥ यह आत्मा ब्रह्म है एकही है अप्रगट है कालकरि न्यारी करी वाणीरूप इंद्रियकी शक्ति याको अनेक भांति प्रकाश है जाते आदि है तीन गुणनको आश्रय हैं सृष्टिकमलको कारण भूत है जैसें बीज खेतकों पाइ अनेक भांति प्रकाशे है ऐसेही यह आदि कारण ईश्वरभी कालकी गतिसौं मायाको अंगीकार कर प्रपंचरूप है जाय है ॥ २० ॥ तहां दृष्टांत कहे हैं, तंतुके विस्तारमें स्थितिमान पट जैसें तंतुनमें ओत प्रोत है और तंतुनसो पृथक् नहीं है याही प्रकार यह सब जगत् ब्रह्ममें है वासौं भिन्न नहीं है या प्रकार समष्टि व्यष्टिरूप अविद्यासौं आत्मामें अध्यास कियो भयो प्रपंचरूप वृक्षही जीवके कर्ता भोक्ता आदि

द्वे अस्य बीजे शतमूलस्त्रिनालः पञ्चस्कन्धः पञ्चरसप्रसूतिः ॥ दशैकशाखो द्विसुपर्णनीडस्त्रिवल्कलो द्विफलोऽर्कं प्रविष्टः ॥ २२ ॥ अदन्ति चैकं फलमस्य गृध्रा ग्रामेचरा एकमरण्यवासाः ॥ हंसा य एकं बहुरूपमिज्यैर्मायामयं वेद स वेद वेदम् ॥ २३॥ एवं गुरूपासनयैव भक्त्या विद्याकुठारेण शितेन धीरः ॥ विवृश्च्य जीवाशयमप्रमत्तः संपद्य चात्मानमथ त्यजास्त्रम् ॥२४॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे द्वादशोऽध्यायः ॥१२ ॥

संसारकौ कारण है यासौ जब यथार्थ रीतिसौ आत्माकी सत्यता और प्रपंचकी अनित्यता जाननेमें आवै वा समय कामादि सबको त्याग करनौ कह्यो है यह अनादि कालसो प्रवृत्तिवारो प्रपंचरूप वृक्ष अपने भोगादिरूप पुष्पफलनको उत्पन्न करै हैं ॥ २१ ॥ द्वै पुण्य पाप याके बीज हैं अनेक भांतिकी वासना याकी जर है, तीनों गुण (रजोगुण तमोगुण सतोगुण) याकी पीडि हैं, पांच रूप रस गंध स्पर्श शब्द ये रस होय हैं, पांच महा भूत याके स्कंध हैं, एकादश इंद्रिय शाखा हैं, दो पक्षी जीव और परमात्माकों घर हैं, वात पित्त कफ तीनी वल्कल है, दो फल सुख दुःख हैं, सूर्यमंडलपर्यंत यह वृक्ष है तातें आगें संसार नहीं ॥ २२ ॥ याके फलके भोक्तानको कहैं हैं, याके एक फल दुःख रूपकों गृहस्थ ग्रामचारी कामी समान गीदड भोग करै है दूसरो फल सुख अरण्यवासी परमहंस संन्यासी भोग करै हैं तातें यह एकही परमात्मा मायामय अनंत रूप हैं इतनों तत्वार्थ गुरुद्वारा जानें जानो ताते सब देह जान्यो ॥ २३ ॥ या भांति धीर सावधान तुमहू गुरुकी

अथ त्रयोदशोऽध्यायः ।

श्रीभगवानुवाच ॥ सत्त्वं रजस्तम इति गुणा बुद्धेर्न चात्मनः ॥ सत्त्वेनान्यतमौ हन्यात्सत्त्वं सत्त्वेन चैव हि ॥ १ ॥ सत्त्वाद्धर्मो भवेद्वृद्धात्पुंसो मद्भक्तिलक्षणः ॥ सात्त्विकोपासया सत्त्वं ततो धर्मः प्रवर्तते ॥२॥ धर्मो रजस्तमो हन्यात्सत्त्ववृद्धिरनुत्तमः ॥ आशु नश्यति तन्मूलो ह्यधर्म उभये हते ॥ ३ ॥

सेवा करियो एकांत भक्त करिकैं तीक्ष्ण ज्ञानरूप कुठारसों त्रिगुणमय या लिंगशरीरकों काटि परमात्माकों मिलि पीछें सब साधन छोडि दीजो ॥ २४ ॥

इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां एकादशस्कन्धे
द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

तेरहें अध्यायमें सतोगुणकी बुद्धिकारि विद्याको उदय होयहै तातें गुणबंधन छूटे सो प्रकार हंसकी कथाकारि श्रीकृष्ण कहेहैं श्रीभगवान बोले सुनो उद्धवजी जब सतोगुण रजोगुण तमोगुण ये तीनों गुण प्रकृतिके हैं आत्माके नहीं या कारण सत्वगुणकी वृद्धि कर रजोगुण तमोगुणकी वृत्तिनकौ नाश करै और सत्वदयादि रूप सत्वगुणकौ उपशमरूप सत्वगुणसौ नाश करनौ ॥ १ ॥ अब कहे हैं रजोगुण तमोगुणके आगे सतोगुण कैसें बढे, जब सतोगुणबढे, तब मेरी भक्ति लक्षण धर्म होइ, वातें रज तम दूरि होइ ॥ २ ॥ सत्त्वकी वृद्धि यातें होयहै यातें भक्ति अतिश्रेष्ठ है रज तमके दूरि भये रज तम मूलवारो अधर्म निश्चय करि शीघ्र दूरि होय हैं ॥ ३ ॥

आगमोऽपः प्रजा देशः कालः कर्म च जन्म च॥ ध्यानं मन्त्रोऽथ संस्कारो दशैते गुणहेतवः॥ ४॥ तत्तत्सात्त्विकमेवैषां यद्यद्वृद्धाः प्रचक्षते॥ निन्दन्ति तामसं यत्तद्राजसं तदुपेक्षितम्॥५॥ सात्त्विकान्येव सेवेत पुमान्सत्त्वविवृद्धये॥ ततो धर्मस्ततो ज्ञानं यावत्स्मृतिरपोहनम्॥ ६॥ वेणुसंघर्षजो वह्निर्दग्ध्वा शाम्यति तद्वनम्॥ एवं गुणव्यत्ययजो देहः शाम्यति तत्क्रियः॥ ७॥

शास्त्र जल प्रजा देश काल कर्म जन्म ध्यान मंत्र संस्कार ये सब गुणके हेतु हैं॥ ४॥ येऊ दश सात्त्विक राजस तामस हैं, इनके मध्ये जाकी वृद्धपुरुष बडाई करें हैं सो सात्त्विक हैं, जाकी निंदा करें हैं सो तामस हैं, न जाकी स्तुति करें हैं न निंदा करें हैं सो राजस है॥५॥ सतोगुण बढायवेकों पुरुष सात्विक निवृत्तिशास्त्र सेवे, प्रवृत्ति मार्गके पाखण्डीनके शास्त्र न देखे, जल तीर्थहीकों सेवे, और सुगंध जल न सेवे, संग निवृत्तिमार्गनकोही करे, दुराचारिनकों न करे देश एकांतही सेवे चोर ठग जूआ खेलनवारेनको संग न करे, ध्यानको काल ब्रह्म मुहूर्त आदि सेवे अर्धरात्र प्रदोष काल न सेवे कर्म नित्यही कर काम्यकर्म अभिचार कर्म न करे, वैदिक तांत्रिक दीक्षारूप जन्म लेय, क्षुद्र देवतानकी दीक्षा न लेइ; श्रीकृष्णहीको गुरु करे, अस्त्रनकों शत्रुनकों ध्यान न करे, जब प्रणवआदि उत्तम मंत्रको जपे, काम्यमंत्र क्षुद्र मंत्र न जपै, जो संसारसों आत्माको शोधक होइ सो करे देह गृहकों न करे या प्रकार सब सात्त्विक सेवे तब सतोगुणकी वृद्धि होइ राजस तामस छूटे, तब भक्तिरूपी तप धर्म होइ, तातें मेरे स्वरूपकों ज्ञान होइ॥ ६॥ जैसें बांसनके वनकी अग्नि आपुसमें घिसिके उठ सब अरण्यकों जारि ईंधन

उद्धव उवाच ॥ वदन्ति मर्त्याः प्रायेण विषयान्पद-
मापदाम् ॥ तथापि भुञ्जते कृष्ण तत्कथं श्वखराज-
वत् ॥ ८॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहमित्यन्यथा बुद्धिः
प्रमत्तस्य यथा हृदि ॥ उत्सर्पति रजो घोरं ततो वै-
कारिकं मनः ॥ ९ ॥ रजोयुक्तस्य मनसः संकल्पः
सविकल्पकः ॥ ततः कामो गुणध्यानाद्दुःसहः स्या-
द्धि दुर्मते ॥ १० ॥ करोति कामवशगः कर्माण्यवि-
जितेन्द्रियः ॥ दुःखोदर्काणि संपश्यन्रजोवेगविमो-
हितः ॥११॥ रजस्तमोभ्यां यदपि विद्वान्विक्षिप्तधीः
पुनः॥ अतन्द्रितो मनो युञ्जन्दोषदृष्टिर्न सज्जते ॥ १२॥

घटे पर आपुही शांत होइ है तैसें गुणके क्षोभतें उपज्यो देह आपुही शांत होइहै ॥ ७ ॥ तब उद्धवजी पूछें हैं हे श्रीकृष्णजी ! बहुधा सब मनुष्य कहें है विषय दुःखरूप है, वातें दुःख पावे हैं; तऊ क्यों वाहीको यह पुरुष कूकर गर्दभ बकराकी समान निर्लज्ज होइ वाहीमें प्रवृत्त होय है ॥८॥ श्रीकृष्ण बोले हे उद्धव ! जब यह विवेककरि रहित होय है, तब याके हृदयमें अहंभाव बुद्धि सांचीसी होयहै, तब सात्विकहू मन दुःखरूप राजस धर्मसों व्याप्त होयहै ॥ ९ ॥ जब रजोगुणसों व्याप्त होइ, तब मनमें संकल्प उपजें, संकल्पतें विषयको ध्यान करे, तातें या दुष्टबुद्धि पुरुषकों काम उपजे ॥ १० ॥ पीछें तिनके वश होइ रजोगुण वेगकरि मोहित भयो यह अजितेंद्रिय दुःखही फलवारे कर्मनको करे ॥ ११ ॥ याहूमें जो विवेकी होइ सो यद्यपि रजोगुण तमोगुण करि विक्षिप्त मन है सावधान है तौहू मनकूं खेचि खेचि करि राखे, तब वह दोष जानिकें विषयमें आसक्ति न होइ ॥ १२ ॥

अप्रमत्तोऽनुयुञ्जीत मनो मय्यर्पयञ्छनैः ॥ अनिर्विण्णो यथाकालं जितश्वासो जितासनः ॥ १३ ॥ एतावान्योग आदिष्टो मच्छिष्यैः सनकादिभिः॥ सर्वतो मन आकृष्य मय्यद्धाऽऽवेश्यते यथा ॥ १४॥ उद्धव उवाच ॥ यदा त्वं सनकादिभ्यो येन रूपेण केशव ॥ योगमादिष्टवानेतद्रूपमिच्छामि वेदितुम् ॥१५॥ श्रीभगवानुवाच ॥ पुत्रा हिरण्यगर्भस्य मानसाः सनकादयः ॥ पप्रच्छुः पितरं सूक्ष्मां योगस्यैकान्तिकीं गतिम् ॥ १६ ॥ सनकादय ऊचुः ॥ गुणेष्वाविशते चेतो गुणाश्चेतसि च प्रभो ॥ कथमन्योन्यसंत्यागो मुमुक्षोरतितितीर्षोः ॥ १७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एवं पृष्टो महादेवः स्वयंभूर्भूतभावनः ॥ ध्यायमानः प्रश्नबीजं नाभ्यपद्यत कर्मधीः ॥ १८ ॥

जो विवेकी सनेहते मेरे विषें मन लगावे आलस्य छोडि श्वास रोंकि आसन दृढकारि मेरे विषें मन स्थिर करे ॥ १३॥ हे उद्धव ! मेरे शिष्य सनकादिकनने इतनोही योग बतायो है कि यह जीव सबतें मन खैंचि प्रत्यक्ष मोविषें राखे ॥ १४॥ उद्धवजी बोले हे केशव ! सनकादिकनको जा रूपसों जा समय यह योग तुमने कह्यो, सो तुह्मारो रूप और वह समय जानवेकी इच्छा है सो कहिये ॥ १५ ॥ श्रीकृष्ण बोले एक समय ब्रह्माके मानसी पुत्र सनकादिक योगकी सूक्ष्म गति ब्रह्मदेवसों पूछतभये ॥ १६॥ यह चित्त विषय धर्ममें प्रविष्ट है और विषय चित्तमें प्रविष्ट है हे प्रभो ! तातें जो कोऊ मोक्ष चाहे, संसारपार भयो चाहे वाको चित्तको विषय संबंध क्योंकर छूटेहै ॥ १७॥ पुत्रनके पूछेतें ब्रह्मा

स मामचिन्तयद्देवः प्रश्नपारतितीर्षया ॥ तस्याहं हं-
सरूपेण सकाशमगमन्तदा ॥ १९ ॥ दृष्ट्वा मां त उप-
व्रज्य कृत्वा पादाभिवन्दनम् ॥ ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा
पप्रच्छुः को भवानिति ॥ २० ॥ इत्यहं मुनिभिः पृष्ट-
स्तत्त्वजिज्ञासुभिस्तदा ॥ यदवोचमहं तेभ्यस्तदुद्धव
निबोध मे ॥ २१ ॥ वस्तुनो यद्यनानात्वमात्मनः
प्रश्न ईदृशः ॥ कथं घटेत वो विप्रा वक्तुर्वा मे क
आश्रयः ॥ २२ ॥

जो कहतभये सो श्रीकृष्ण उद्धवसों कहैंहैं या प्रकार पूछेतें स्वयंभू ब्रह्मा बडे देव विश्वके पालक विचारनलगे, परन्तु प्रश्नको पार न पावतभये जाते कर्म करि विनकी विक्षिप्त बुद्धिही ॥ १८ ॥ तब प्रश्नके उत्तरके निमित्त ब्रह्माने मेरो चिंतवन कियो तब मैं हंसरूप होइ ब्रह्माके निकट आवतभयो ॥ १९ ॥ ता मोकों देखिके सब प्रणाम करि ब्रह्माको आगे करि सनकादिक मेरे निकट आइकै तुम कौन हो ऐसे पूछतभये ॥ २० ॥ हे उद्धव! तत्वके जानिवेकी इच्छाकरि मुनिने जब या भांति मोसों पूछो तब मैं जो विनसो कहत भयो सो तुम सुनो ॥ २१ ॥ हंसरूप भगवान् सनकादिकनसूं कहैंहैं तुम आत्माको आगे कर प्रश्न करौ हो वा आत्माके उपाधिरूप भूतसमूहको लेकै प्रश्न करौहो जो आत्माकौ अधिकार कर प्रश्न करौ हो तौ परमार्थसौं आत्मामें अभेद हेवेके कारण तुम कौन हो यह प्रश्न करनौ कि जो अनेकनमें एकको निश्चय करवेके लिये है संभव नहीं हो सकैहै और मैं तुह्मैं कोनविषे लैकै उत्तर देउँ आत्मा कोई जाति वा गुणादि रूप होयतौ उत्तर दिये जाय कि मेरी यह जाति और मोमें यह गुण है परन्तु आत्मामें कोई बात नहीं यासौं तुह्मारा प्रश्न नहीं बन सका ॥ २२ ॥

पञ्चात्मकेषु भूतेषु समानेषु च वस्तुतः ॥ को भवा-
निति वः प्रश्नो वाचारम्भो ह्यनर्थकः ॥ २३ ॥ मनसा
वचसा दृष्ट्या गृह्यतेऽन्यैरपीन्द्रियैः ॥ अहमेव न
मत्तोऽन्यदिति बुध्यध्वमञ्जसा ॥२४॥ गुणेष्वाविश-
ते चेतो गुणाश्चेतसि च प्रजाः ॥ जीवस्य देह उभयं
गुणाश्चेतो मदात्मनः ॥२५॥ गुणेषु चाविशच्चित्तम-
भीक्ष्णं गुणसेवया॥ गुणाश्च चित्तप्रभवा मद्रूप उभयं
त्यजेत् ॥ २६ ॥ जाग्रत्स्वप्नः सुषुप्तं च गुणतो बुद्धि-
वृत्तयः ॥ तासां विलक्षणो जीवः साक्षित्वेन विनि-
श्चितः ॥ २७ ॥

और जो पंचभूत संघात रूपको प्रश्न है अनर्थ रूप है देव मनुष्य आदि देह सब पंचभूतात्मक है वस्तुते सब समान हैं अपने कारणते न्यारे नहीं, वे सब कारणरूप एकही है, ब्रह्मरूपही है, ये नाम रूप न्यारे न्यारे धर लिये है सो अज्ञान हैं ताते याके मैं उत्तर कहा देउँ ॥ २३ ॥ मन करि वचनकरि दृष्टिकरि और इंद्रिनकरि जो ग्रहण कियोजाय हैं सो में हूं और मोते न्यारो नहीं, यह तत्वके विचार करि-जानो ॥ २४ ॥ या प्रकार विनके प्रश्नके खंडनके मिसकरि आत्माको स्वरूपकह्यो अब ब्रह्माहूको जो अशक्य उत्तर हो ताको उत्तर देइहै ये विषय और चित्त दोऊ गुथेहैं ब्रह्मरूप जीवको देह है सो उपाधि है सांचो नहीं आपुको ब्रह्मरूप करि जानें विषयनकों मिथ्या करि जानें वैराग्यकरि भगवान्को भजनकरे तब उपाधि छोडि मुक्त होइ ॥ २५ ॥ तातें वारंवार विषयनकी सेवा करत विनकी वासनातें विषयनमें चित्त प्रविष्ट होयहै ताते विषय और चित्त ये दोऊ मेरो रूप जाने तब छूटे ॥ २६ ॥ जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति ये तीनि अवस्थाकरि रहित जीव शुद्ध

यर्हि संसृतिबन्धोऽयमात्मनो गुणवृत्तिदः ॥ मयि
तुर्ये स्थितो जह्यात्त्यागस्तद्गुणचेतसाम् ॥२८॥ अहं-
कारकृतं बन्धमात्मनोऽर्थविपर्ययम् ॥ विद्वान्निर्विद्य
संसारचिन्तां तुर्ये स्थितस्त्यजेत् ॥ २९ ॥ यावन्नाना-
र्थधीः पुंसो न निवर्त्तेत युक्तिभिः॥जागर्त्यपि स्वप-
न्नज्ञः स्वप्ने जागरणं यथा ॥३०॥ असत्त्वादात्मनो-
ऽन्येषां भावानां तत्कृता भिदा ॥ गतयो हेतवश्चास्य
मृषा स्वप्नदृशो यथा ॥ ३१ ॥

आत्मरूप कैसे होइ तहां कहैहै ये अवस्था तीनि गुण करिके होयहै सो बुद्धिहीकी वृत्ति अवस्था है जीव इन अवस्थानते न्यारो है यह निश्चय कीनोहै याते जीव इन सबनको साक्षी है ॥ २७ ॥ जो यह साक्षी भयो तो न्यारो क्यों है तो मैं सोयो जाग्यो ऐसे क्यों कहै है जब अहंकारके धर्मकारि संसारको बंधन है तब मैं जागतहूं सोवतहूं यह बुद्धि है जब अहंकार देहते छूटे आत्माविषे दृष्टि होइ तब ये अवस्थाहू सब जातरहैं विषय और चित्तको परस्पर त्याग होइ ॥ २८ ॥ यह बंधन देहके अभिमानतें हैं, याहीतें आत्माहूकी अनर्थ लगै है, ऐसें समझि वैराग्य करि आत्मामें चित्त राखि संसारकी सब चिन्ता छोडे ॥ २९ ॥ जहांलों याकी भेद बुद्धि युक्तिन करि न निवृत्त होइ, तहांलो यह अज्ञानी कर्मादिकमें जागतों अर्थात् जानकैहू स्वप्नमें अपनेको जाग्रत मानते भये मनुष्यकी भांति स्वप्नकोही देखै है कारण कि वासो यथार्थ ज्ञान नहीं है ॥ ३० ॥ ये सब देह और देहको कियो सबनसों भेद वर्ण आश्रम स्वर्ग आदि फल कर्म सब आत्माके धर्म नहीं; ये देहके धर्म हैं, अविद्यातें होय हैं, तातें मिथ्या हैं उत्तम नहीं जैसें स्वप्नके देखनवारेके सब मिथ्या मनोरथ हैं ॥ ३१ ॥

यो जागरे बहिरनुक्षणधर्मिणोऽर्थान् भुङ्क्ते समस्तकरणैर्हृदि तत्सदृक्षान्॥ स्वप्ने सुषुप्त उपसंहरते स एकः स्मृत्यन्वयात्त्रिगुणवृत्तिदृगिन्द्रियेशः ॥ ३२॥ एवं विमृश्य गुणतो मनसस्त्र्यवस्था मन्मायया मयि कृता इति निश्चितार्थाः॥ संछिद्य हार्दमनुमानसदुक्तितीक्ष्णज्ञानासिना भजत माऽखिलसंशयाधिम् ॥ ३३॥ ईक्षेत विभ्रममिदं मनसो विलासं दृष्टं विनष्टमतिलोलमलातचक्रम्॥ विज्ञानमेकमुरुधेव विभाति माया स्वप्नस्त्रिधा गुणविसर्गकृतो विकल्पः॥ ३४॥

यह जीव जगत्में विषयभोग करै हैं, सो भोग एक क्षण है, नित्य नहीं जैसें बाल्य और तारुण्य आये और गये, जाग्रतके समान स्वप्नमें भोग करै हैं, और सुषुप्तिमें ये सब धर्म लीन होंय हैं, एकही आत्मा रहै हैं, मैंने पहिलें स्वप्न देख्यो पीछें मैं सुखसों सोयो, कछु होस न रह्यो, या अनुभवके स्मरणते तीनिहू अवस्था बुद्धिकी हैं, तिनको साक्षी एक आत्मा रहै है, और सब लीन होय है आत्मा सब इंद्रियनको ईश्वर है॥ ३२॥ या प्रकार ये तीनों अवस्था मनके वशहैं, आत्माको नहीं, सो मेरी शक्ति अविद्या करि आपकों मानलेय है ऐसो निश्चय करि सब संदेहके स्थान अहंकारको विवेक अनुमान प्रमाण वचनसों उपजे ज्ञानरूप खड्गसों काटिकें हृदयमें सदा स्थिति मोको भजन करे ॥ ३३॥ अनुमान कौन प्रकारको हैं सो कहै हैं यह जगत् जो दीखे है सो सब मनको विलास हैं भ्रम और मिथ्या है यह द्वैतहू भ्रांतिरूप है कारण यह कि अति चंचल हैं जो चंचल हो वह अलातचक्रकी समान भ्रांतिरूप है ब्रह्ममें द्वैतकी अनेक भ्रांति होय है यासों भ्रांतिको अधिष्ठानरूप एक ब्रह्मही अनेक प्रकारसों दिखावै है और जो यथार्थ

दृष्टिं ततः प्रतिनिवर्त्य निवृत्ततृष्णस्तूष्णीं भवेन्निजसुखानुभवो निरीहः ॥ संदृश्यते क्व च यदीदमवस्तुबुद्ध्या त्यक्तं भ्रमाय न भवेत्स्मृतिरानिपातात् ॥ ३५ ॥ देहं च नश्वरमवस्थितमुत्थितं वा सिद्धो न पश्यति यतोऽध्यगमत्स्वरूपम् ॥ दैवादपेतमुत दैववशादुपेतं वासो यथा परिकृतं मदिरामदान्धः ॥ ३६ ॥ देहोऽपि दैववशगः खलु कर्म यावत्स्वारम्भकं प्रतिसमीक्षत एव सासुः ॥ तं सप्रपञ्चमधिरूढसमाधियोगः स्वाप्नं पुनर्न भजते प्रतिबुद्धवस्तुः ॥ ३७ ॥

विचारसौं देखै हैं तौ यह त्रिगुणात्मक मायाको भ्रम स्वप्नकी समान है ॥ ३४ ॥ तातें हे उद्धव! ऐसें प्रपंचते दृष्टि फेरि तृष्णा छोडि आत्मसुखके विचारमें तत्पर होय इंद्रियनके धर्म सब छोडि देई, कदाचित् कहो देहवंतकों देहकी चेष्टा कैसे छुट सकैहै और न छुटेंवैसों द्वैतही हे जायगो तहां कहै हैं जो कदाचित् कहूं वैसेही देहकी चेष्टा देखी जायहै परि वह चेष्टा अहंकाररहित हैं, सांची नहीं जातें प्रपंचमें विनकी मिथ्या बुद्धि है जो मिथ्या जानिकै छोड दियो जाय है वह फिर मोह उत्पन्न नहीं करैहै यह निश्चय हैं देहपर्यंत कर्मनके संस्कार हैं ॥ ३५ ॥ जीवन्मुक्त ज्ञानी पुरुष या विनाशी देहको दैवगतिसो आसन उठा वा आसनमें स्थित उठकर खडो भयो बाहरको गयो अथवा दैवगतिसो फिर आयोभया नहीं देखै है जैसे मदिराके पानसौ मत्तभयो पुरुष पहरे वस्त्रको नहीं जाने याही प्रकार ज्ञानी ब्रह्मको प्राप्त हो चुकौहै ॥ ३६ ॥ तहां तर्क करे हैं जो देहको न जानें तो देह क्यों नहीं गिरे तहां कहैहैं देहहू यह दैवके आधीन हैं जबलों याको प्रारब्ध कर्म है तहांलों प्राण इंद्रिय समेत देह रहैहै तातें जो समाधि योगमें आरूढ हैं परमार्थ वस्तु

मयैतदुक्तं वो विप्रा गुह्यं यत्सांख्ययोगयोः ॥ जानीतमागतं यज्ञं युष्मद्धर्मविवक्षया ॥ ३८ ॥ अहं योगस्य सांख्यस्य सत्यस्यर्तस्य तेजसः ॥ परायणं द्विजश्रेष्ठाः श्रियः कीर्तेर्दमस्य च ॥ ३९ ॥ मां यजन्ति गुणाः सर्वे निर्गुणं निरपेक्षकम् ॥ सुहृदं प्रियमात्मानं साम्याऽसङ्गादयो गुणाः ॥४०॥ इति मे च्छिन्नसंदेहा मुनयः सनकादयः ॥ सभाजयित्वा परया भक्त्याऽगृणत संस्तवैः ॥ ४१ ॥ तैरहं पूजितः सम्यक्संस्तुतः परमर्षिभिः ॥ प्रत्येयाय स्वकं धाम पश्यतः परमेष्ठिनः ॥ ४२ ॥ इति श्रीभागवत एकादशस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

आत्मस्वरूपकों जानें हैं सो प्रपंचसहित स्वप्नसमान या देहको नहीं भजे है ॥३७॥ हे ब्राह्मणो! मैं यह मैंने तुमसो आत्मदेहको विवेक सांख्ययोगको रहस्य कह्यो, तुमसो धर्म और ज्ञान कहिवेकूं मैं यज्ञरूप विष्णु आयोहूं सो जानो ॥३८॥ हे द्विजश्रेष्ठ! योगसांख्य, सत्यऋत अर्थात् शास्त्रोक्त धर्म तेज श्री कीर्ति धर्मनको मैंही परमस्थान हों ये सब मोहिमें रहेहैं ॥ ३९ ॥ सब गुण मेरे आश्रय रहे हैं, मैं निरपेक्ष हूं सुहृद परम प्रिय हूं सबको आत्मा सब मोकों समान हैं, संग काहूसो नहीं ऐसे गुण मोहीमें हैं ॥ ४० ॥ ऐसे मेरे वचन सुनि संदेह निवर्त्तकरि सनकादिकमुनि अतिभक्तिसों मेरो आदर करत भये ॥ ४१ ॥ जब विन ऋषीननें भली भांति स्तुति कीनी और पूजा करी तब ब्रह्माके देखतेही मैं अपनें धामको आवतभयो ॥ ४२ ॥

इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां एकादशस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः॥१३॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः।

उद्धव उवाच ॥ वदन्ति कृष्ण श्रेयांसि बहूनि ब्रह्मवादिनः ॥ तेषां विकल्पप्राधान्यमुताहो एकमुख्यता ॥ १ ॥ भवतोदाहृतः स्वामिन्भक्तियोगोऽनपेक्षितः॥ निरस्य सर्वतः सङ्गं येन त्वय्याविशेन्मनः ॥२॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कालेन नष्टा प्रलये वाणीयं वेदसंज्ञिता ॥ मयादौ ब्रह्मणे प्रोक्ता धर्मो यस्यां मदात्मकः ॥३॥ तेन प्रोक्ता च पुत्राय मनवे पूर्वजाय सा ॥ ततो भृग्वादयोऽगृह्णन्सप्त ब्रह्ममहर्षयः ॥ ४ ॥ तेभ्यः पितृभ्यस्तत्पुत्रा देवदानवगुह्यकाः ॥ मनुष्याः सिद्धगन्धर्वाः सविद्याधरचारणाः ॥५॥

अब चौदहके अध्यायमें परम श्रेष्ठ भक्ति है यह कहैंगे, और साधन समेत ध्यान कहैंगे ॥ उद्धव बोले हे श्रीकृष्ण महाराज ! जो ब्रह्मको विचार करें हैं, वे ब्रह्मकी प्राप्तिके साधन बहुत बतामें हैं, विन सबनमें जो मुख्य एक साधन है, सो कहो ॥ १ ॥ हे ईश्वर ! तुमने निरपेक्ष भक्तिही एक मुख्य साधन कहोह्यौ कि सब संग छोडि भक्ति योगकरि तुमारे विषे चित्त राखे ॥ २ ॥ श्रीकृष्णजी बोले हे उद्धव ! भक्तिही सबसैं श्रेष्ठ है यह मेरी वेदरूप वाणी प्रलय कालमें नष्ट हैगईही यह वह वाणी है जासों प्राणीको मनमोमें लगजाय यह पेहले मैंने ब्रह्माजीसो कहीही ॥ ३ ॥ ब्रह्माने अपने बडे पुत्र मनुसो वह वाणी कही, मनुने महर्षि भृगु मरीचि अंगिरा पुलस्त्य पुलह क्रतु ए सात ब्रह्माके पुत्र वे वा वाणीको ग्रहण करतभये॥४॥ विनसों विनके पुत्र दैत्य देवता गुह्यक मनुष्य सिद्ध गंधर्व विद्याधर ॥ ५ ॥

किंदेवाः किन्नरा नागा रक्षःकिंपुरुषादयः ॥ बह्वच-स्तेषां प्रकृतयो रजःसत्त्वतमोभुवः ॥ ६ ॥ याभिर्भूतानि भिद्यन्ते भूतानां मतयस्तथा ॥ यथाप्रकृति सर्वेषां चित्रा वाचः स्रवन्ति हि ॥ ७ ॥ एवं प्रकृतिवैचित्र्याद्भिद्यन्ते मतयो नृणाम् ॥ पारम्पर्येण केषांचित्पाखण्डमतयोऽपरे ॥ ८ ॥ मन्मायामोहितधियः पुरुषाः पुरुषर्षभ ॥ श्रेयो वदन्त्यनेकान्तं यथाकर्म यथारुचि ॥ ९ ॥ धर्ममेके यशश्चान्ये कामं सत्यं दमं शमम् ॥ अन्ये वदन्ति स्वार्थं वा ऐश्वर्यं त्यागभोजनम् ॥ १० ॥

चारण किंदेव (मनुष्य जातिमें देवतुल्य) किन्नर नाग राक्षस किंपुरुषादिक ये सब वह वाणी ग्रहण करतभये जिनकी वासना रजोगुण तमोगुण आदिसों अनेक प्रकारकी हैं ॥ ६ ॥ जिन वासनानसो देव दैत्य मनुष्यादिक प्राणिनके शरीर भिन्न भिन्न होय हैं और तिनकी बुद्धिनमेंहू भेद पडे हैं इन सबनने अपनी वासनाके अनुसार भिन्न २ वेदको व्याख्यान कियो है ॥ ७ ॥ या भांति प्रकृतिकी विचित्रतासे मनुष्यनकी बुद्धि विचित्र भई और मतिनमें भेद पडगये काहू प्राणीके उपदेशकी परंपराते वेदविरुद्ध पाखंड बुद्धि भई ॥ ८ ॥ हे पुरुषनमें श्रेष्ठ ! मेरी मायाकारि मोहितबुद्धि पुरुष अनेक प्रकार इच्छा अनुसार कल्याणके साधन कहै हैं ॥ ९ ॥ कोऊ धर्महीको मुख्य कहै है, कोऊ यशको, कोऊ कामको, कोऊ सत्यको, कोऊ शमदमको, कोई ऐश्वर्यको, स्वार्थको कहैं हैं कोऊ दान दीजे भोग कीजे यही कहैं हैं कोऊ यज्ञ तप दान व्रत नेम संयम ये सब साधन कहैं हैं ॥ १० ॥

केचिद्यज्ञतपोदानं व्रतानि नियमान्यमान् ॥ आद्य-
न्तवन्त एवैषां लोकाः कर्मविनिर्मिताः ॥ दुःखोदर्का-
स्तमोनिष्ठाः क्षुद्रानन्दाः शुचार्पिताः ॥ ११ ॥ मय्य-
र्पितात्मनः सभ्य निरपेक्षस्य सर्वतः ॥ मयात्मना
सुखं यत्तत् कुतः स्याद्विषयात्मनाम् ॥ १२ ॥ आकिं-
चनस्य दान्तस्य शान्तस्य समचेतसः ॥ मया संतुष्ट-
मनसः सर्वाः सुखमया दिशः ॥ १३ ॥ न पारमेष्ठ्यं न
महेन्द्रधिष्ण्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ॥ न यो-
गसिद्धीरपुनर्भवं वा मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनाऽ-
न्यत् ॥ १४ ॥ न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शंक-
रः ॥ न च संकर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान् ॥ १५ ॥

इन प्राणिनको अपने कर्मानुसार लोक कर्म फलसो मिलै हैं वे सब परिणाममें दुःखसो पूर्ण किंचित आनन्दयुक्त शोकसो व्याप्त आदि अन्तवारे नाशवान् हैं ॥ ११ ॥ हे सौम्य ! मेरे विषें जिनने आत्मा समर्पण कियो है, जे सबसौ निरपेक्ष हैं विनकों मेरे परमानन्द स्वरूपकी प्राप्तिसौ सुख मिल रहैहै वह सुख विषयनमें लगे पुरुषनको प्राप्त नहीं होयहै जो भक्तनको सुख है वह विषयी पुरुषनकों कहां ?॥ १२ ॥ जो अकिंचन दांत समचित्त वाहीसे संतुष्ट मन हैं तिनको सब दिशा सुखरूप हैं ॥ १३ ॥ जिनने मेरे विषें आत्मा समर्प्यो है विनको मो विना और कछु न चाहिये, एक मैंही वाको प्रिय हो, ब्रह्मलोक, इंद्रको समस्त राज्य भूमिको राज्य पातालको राज्य अणिमा महिमादिक योगसिद्धि मोक्ष पर्यंतहू विनको वांछित नहीं ॥ १४ ॥ तातें भक्तनके समान मोकों कोऊ प्यारो नहीं, हे

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम् ॥ अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः ॥१६॥ निष्किंचना मय्यनुरक्तचेतसः शान्ता महान्तोऽखिलजीववत्सलाः ॥ कामैरनालब्धधियो जुषन्ति यत् तन्नैरपेक्ष्यं न विदुः सुखं मम ॥ १७ ॥ बाध्यमानोऽपि मद्भक्तो विषयैरजितेन्द्रियः ॥ प्रायः प्रगल्भया भक्त्या विषयैर्नाभिभूयते ॥ १८ ॥ यथाग्निः सुसमृद्धार्चिः करोत्येधांसि भस्मसात् ॥ तथा मद्विषया भक्तिरुद्धवैनांसि कृत्स्नशः ॥ १९ ॥

उद्धव ! अब मैं तेरे आगे अधिक कहा कहूं, मेरी आत्माहू मोको प्रिय नहीं, हे उद्धव ! जैसे तुम मोको प्यारे हो तैसें मेरो पुत्र ब्रह्मा महादेव संकर्षण लक्ष्मीहू मोको प्रिय नहीं, यह अतिसंतोषसों श्रीकृष्ण कहत भये ॥ १५ ॥ जो मेरो भक्त निरपेक्ष शांत निर्वैर समदृष्टि होइ ताके संग मैं नित्य रहोंहों, जहां वह जाइ तहां वाके संग जाऊंहूं विनके चरणरेणुसों मैं अपनेमें रहनेवारे सब ब्रह्माण्डनको पवित्र करौंहूं ॥ १६ ॥ जे महांत निरभिमान मोविषें अनुरक्तचित्त शांत सब जीवनपर परमस्नेह संयुक्त निष्काम निष्किंचन हैं, जिन्हें मेरे विना और कछु इच्छा नहीं जिनको चित्त विषयनसौ पृथक् है ऐसे भक्त मोय प्रसन्न राखे हैं वेही निरपेक्ष हैवेके सुखको जानते हैं दूसरे नहीं ॥ १७॥ उत्तमभक्तनकी कथा रहो जे सामान्यहू मेरे भक्त हैं वेऊ कृतार्थ हैं जे मेरे भक्त विषयनसौ पीडित अजितेंद्रिय हैं विनकौहू दृढ भक्ति हैवेके कारण विषय पराभव नहीं कर सकें ॥ १८ ॥ हे उद्धव ! जैसै प्रचण्ड अग्नि काष्ठको भस्म कर देयहै यही प्रकार मेरी दृढ भक्ति सब पापनको नाश कर देय है ॥ १९ ॥

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव ॥ न स्वा-
ध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ॥ २० ॥
भक्त्याऽहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयात्मा प्रियः सताम् ॥
भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि संभवात् ॥२१॥
धर्मः सत्यदयोपेतो विद्या वा तपसान्विता ॥ मद्भ-
क्त्यापेतमात्मानं न सम्यक् प्रपुनाति हि ॥२२॥
कथं विना रोमहर्षं द्रवता चेतसा विना ॥ विनानन्दा-
श्रुकलया शुध्येद् भक्त्या विनाऽऽशयः ॥ २३ ॥

तातें भक्तिविना और कछु उपाय नहीं है, हे उद्धव ! योग सांख्य धर्म पाठ तप त्याग ये कोऊ मोको वश नहीं करि सकें जैसी एक दृढ-भक्ति मोको वश करै है ॥ २० ॥ भक्तनको प्रिय आत्मा रूपमें श्रद्धासौं उत्पन्न भई भक्तिसौंही महात्मानकें वश हैजाउहूं मेरी भक्ति चांडालहू करै तौ वाके जाति दोष पवित्र है जांय हैं ॥ २१ ॥ सत्य और दया संयुक्त धर्म और तपसौं संयुक्त विद्याहू वा पुरुषको पवित्र नहीं कर सकैहै जाके चित्तमें मेरी भक्ति नहींहै ॥ २२ ॥ जाके रोमांच न होइ, द्रवीभूत चित्त न होइ आनंदअश्रु न चले, ताके

१ यापर एक दृष्टान्त है । तिलोक सुनार बडे साधुसेवी थे, जो कुछ वस्तु पास होती सब साधुसेवामें व्यय कर देते थे, एक समय राजाके यहांके कुछ भूषण बनने आये, सो इनके बहुत साधु आगये, इन्होंने उस राजाके द्रव्यकी भोजन सामग्री मंगाकर साधुओंको खवायदी और आप टाल बाल करते रहे, जब राजाके यहां व्याहका दिन आया, तौ यह जंगलको भाग गये भगवान्ने भक्तकी रक्षा करी और तिलोकका रूप बना गहना लेकर राजाके घरगये, वहांसे अच्छे भूषण बनानेके कारण बहुत कुछ पुरस्कार पाया और गहना लिया, भगवान् वोह पुरस्कारका द्रव्य तिलोकके घर दे जंगलमें जाकर उससे कहने लगे घरको जा राजाने बहुत द्रव्य दिया है, तिलोक सुनतेही घर आय बडे प्रसन्न हुए ईश्वरके भक्त कभी नष्ट नहीं होते ॥

वाग्गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च ॥ विलज्ज उद्गायति नृत्यते च मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति ॥ २४ ॥ यथाऽग्निना हेम मलं जहाति ध्मातं पुनः स्वं भजते स्वरूपम् ॥ आत्मा च कर्मानुशयं विधूय मद्भक्तियोगेन भजत्यथो माम् ॥२५॥ यथा यथात्मा परिमृज्यतेऽसौ मत्पुण्यगाथाश्रवणाभिधानैः ॥ तथा तथा पश्यति वस्तु सूक्ष्मं चक्षुर्यथैवाञ्जनसंप्रयुक्तम् ॥ २६ ॥ विषयान् ध्यायतश्चित्तं विषयेषु विषज्जते ॥ मामनुस्मरतश्चित्तं मय्येव प्रविलीयते ॥ २७ ॥

भक्ति कैसे जानीजाइ और भक्तिविना हृदय कैसें शुद्ध होइ ॥ २३ ॥ अब भक्तिको लक्षण कहै है जाकी वाणी गद्गद होइ, चित्त द्रवीभूत कोमल होइ, नेत्रनतें वारंवार आंशू चले, कबहूं हँसे कबहूं लज्जा छोडि ऊंचे स्वरते गावे नाचे याभांति मेरी भक्तिसों युक्त होइ सो लोकनकों पवित्र करे ॥ २४ ॥ जैसे सोनो अग्निमें तपानेसों श्यामता छोड निर्मल हो अपने रूपको पावै है तैसे यह आत्मा मेरे भक्तियोगसे कर्म वासना त्यागकर मेरे रूपको पावै है ॥ २५ ॥ ज्ञान विना अविद्या नहीं जायहै अविद्याके गये विना तुम नहीं मिलैहै सो कहै हैं यह पुरुष जैसें जैसें मेरी पुण्य कथा श्रवण कीर्तन करैं हैं तैसें तैसेंई चित्त शुद्ध होइ है नेत्र जैसें जैसें अंजनसो शुद्ध होयहै तैसें तैसें सूक्ष्म पदार्थ देखनेमें आवै है ॥ २६॥ विषयके ध्यानतें मन विषयमें रहै है, मेरे ध्यानसों चित्त शुद्ध हैके मेरे स्वरूपको प्राप्त होजाय है भाव यह है मेरी भक्ति विना ज्ञान नहीं होयहै और मेरे स्वरूपकी प्राप्ति होनी यही ज्ञान है ॥ २७ ॥

तस्मादसदभिध्यानं यथा स्वप्नमनोरथान् ॥ हित्वा
मयि समाधत्स्व मनो मद्भावभावितम् ॥ २८ ॥
स्त्रीणां स्त्रीसङ्गिनां सङ्गं त्यक्त्वा दूरत आत्मवान् ॥
क्षेमे विविक्त आसीनश्चिन्तयेन्मामतन्द्रितः ॥ २९ ॥
न तथाऽस्य भवेत् क्लेशो बन्धश्चान्यप्रसङ्गतः ॥ यो-
षित्सङ्गाद्यथा पुंसो यथा तत्सङ्गिसङ्गतः ॥ ३० ॥
उद्धव उवाच ॥ यथा त्वामरविन्दाक्ष यादृशं वा यदा-
त्मकम् ॥ ध्यायेन्मुमुक्षुरेतन्मे ध्यानं मे वक्तुमर्हसि
॥ ३१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सम आसन आसीनः
समकायो यथासुखम् ॥ हस्तावुत्सङ्ग आधाय स्व-
नासाग्रकृतेक्षणः ॥ ३२ ॥

हे उद्धव ! तातें स्वप्न मनोरथकी समान मिथ्या वस्तुको ध्यान छोडि मेरी भावना करि चित्त शुद्ध करि मेरे स्वरूपमें राखे ॥ २८ ॥ स्त्रीनको संग स्त्रीसंगीनकों संग दूरितें छोडि, आत्माकों जानि धीर होइ एकांत बैठके परम कल्याणरूप मेरो चिंतवन करै ॥२९॥ जैसें स्त्रीके संगसो और स्त्रीसंगीनके संगतें याकों क्लेशबंध होइ तैसों औरके संगते नहींहोइ है ॥३०॥ उद्धव बोले हे कमलनयन ! जो मोक्ष चाहे सो तुह्मारो ध्यान कैसो करे, कौन स्वरूपको करे, यह मोसों कहो कारण कि मैं तो आपके दासभावके पुरुषार्थको प्राप्त है चुको हूं ॥ ३१ ॥ श्रीकृष्ण बोले हे उद्धव ! समान आसन करै बैठे अपनी देह सम राखै जैसें सुख होइ तैसें बैठे, अपने दोनों हाथ गोदपर राखे,

प्राणस्य शोधयेन्मार्गं पूरकुम्भकरेचकैः॥ विपर्ययेणापि शनैरभ्यसेन्निर्जितेन्द्रियः॥ ३३ ॥ हृद्यविच्छिन्नमोंकारं घण्टानादं बिसोर्णवत् ॥ प्राणेनोदीर्य तत्राथ पुनः संवेशयेत् स्वरम् ॥ ३४ ॥

नाशिकाके अग्रपर दृष्टि राखे ॥ ३२॥ ऐसें बैठि प्राणके मार्ग पूरक कुंभक रेचक करके शुद्ध होइ जितेंद्रिय होइ शनैः शनैः प्राणायामको अभ्यास कर रेचक पूरक कुंभक क्रमसौ अभ्यास करै चाहै तौ पूरक कुंभक रेचक या क्रमसौ प्राणायाम करै अथवा रेचक कुंभक पूरक या विपरीत क्रमसौ करै दोउ तरह प्रभुकी आज्ञा है ॥ ३३ ॥ प्राणायाम दो प्रकारकौ है एक तो प्रणवसहित है, एक प्रणवरहित है यहां प्रणवसहित प्राणायाम करै, सो मूलाधार चक्रसौ ब्रह्मरंध्रतक कमलनालके तन्तुकी नांई सूक्ष्म अवच्छिन्न है वाको मनमें प्राणसौ प्रगट करके ॐकारमें घंटाके शब्दकी समान उदात्तनाद स्थित करैं॥३४॥

---

१ एक तौ यह प्रयोजन है कि जो आंखनको बिलकुल मीचैगो तो निद्रा आय जायगी और जो खुली राखैगो तौ मन चलायमान रहैगो यासौ नाकके अग्रभागको देखत रहै। अथवा लोकमें नाककीही बडी लाज होय है नेकसी कछु बात भई और हाई हमारी नाक कटजायगी ऐसें कहै है सो बात विचारै कि जो में कही अब भ्रष्ट भयौ तो मेरी नाक कट जायगी क्योंकि अब मेरी योगिनमें गिनती हैगई है यासूं भगवाननेहू कही है कि नाककेमाउ देखत रहै जैसै नाक रहे सो करै ऐसो न करै जासो नाक जाति रहै ॥ २ नाकके दहिने नथुनाको दहिने हाथके अंगूठासों दाबके श्वासको ऊपर खेचवेको नाम पूरक कहैहै फिर मध्यतर्जनी दोनों अंगुलीनके विन अनामिका कनिष्ठिका दोनों अंगुलीनसो नाकके वायें नथुनाको बंद करकें जितने देर वायु रुक सके वितनी देर वायुको रोके वाकू कुंभक कहे है फिर दाहिने नथुनाके मार्गसो अंगूठाको हटायकें धीरे २ पवनको निकासें एकदमसौ न निकासै याको रेचक कहे है यह प्राणायाम कहावे है सो करै ॥

एवं प्रणवसंयुक्तं प्राणमेव समभ्यसेत्॥ दशकृत्वस्त्रिषवणं मासादर्वाग्जितानिलः ॥३५॥ हृत्पुण्डरीकमन्तस्थमूर्ध्वनालमधोमुखम् ॥ ध्यात्वोर्ध्वमुखमुन्निद्रमष्टपत्रं सकर्णिकम् ॥ ३६ ॥ कर्णिकायां न्यसेत् सूर्यसोमाग्नीनुत्तरोत्तरम् ॥ वह्निमध्ये स्मरेद्रूपं ममैतद्ध्यानमङ्गलम् ॥ ३७ ॥ समं प्रशान्तं सुमुखं दीर्घचारुचतुर्भुजम् ॥ सुचारुसुन्दरग्रीवं सुकपोलं शुचिस्मितम् ॥ ३८ ॥ समानकर्णविन्यस्तस्फुरन्मकरकुण्डलम्॥हेमाम्बरं घनश्यामं श्रीवत्सश्रीनिकेतनम् ३९

या प्रकार प्रणवसंयुक्त प्राणको अभ्यास कारि प्रगट करे और प्रणवमें घटामनो वढामनो संधानकों स्थित अभ्यास करै दश प्राणायाम तीनों काल करे या प्रकार अभ्यास करवेसौ एक महीनामें प्राणवायु वशमें होजाय है ॥ ३५ ॥ या देहके भीतर हृदयकमल अधोमुख है डांडी वाकी ऊपर रहैं है जैसें केराकी फरी होय हैं, तैसी कमलकी कली है ताको ध्यान ऐसो करै कि वह नीचें नालवारो और ऊपर मुखवारो खिलोहु भयो आठ पखुरीसौ युक्त है कर्णिकासहित मनमें चितवन करै ॥ ३६ ॥ वामें सूर्य चंद्र और अग्निकौ क्रमसौ ध्यान करै वामें प्रथम अग्निके बीचमें आगे कहे ध्यानके मंगलविषयरूप मेरे स्वरूपको ध्यान करनो ॥ ३७ ॥ सम अतिशांत सुंदरमुख दीर्घ सुंदर चारिभुजा धारण करे, अति सुंदर ग्रीवा, उत्तम गोल कपोल, अति उज्ज्वल मंद मुसिक्यानि युक्त ॥ ३८ ॥ समान काननमें प्रकाशमान मकराकृत कुंडल धारे पीतांबर धरे मेघकीसी भांति श्यामसुंदर श्रीवत्ससंयुक्त लक्ष्मीको वक्षःस्थलमें धरे ॥ ३९ ॥

शङ्खचक्रगदापद्मवनमालाविभूषितम् ॥ नूपुरैर्विलसत्पादं कौस्तुभप्रभया युतम् ॥ ४० ॥ द्युमत्किरीटकटककटिसूत्राङ्गदाऽऽयुतम् ॥ सर्वाङ्गसुन्दरं हृद्यं प्रसादसुमुखेक्षणम् ॥ ४१ ॥ सुकुमारमभिध्यायेत् सर्वाङ्गेषु मनो दधत् ॥ इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यो मनसाऽऽकृष्य तन्मनः ॥ बुद्ध्या सारथिना धीरः प्रणयेन्मयि सर्वतः ॥ ४२ ॥ तत् सर्वव्यापकं चित्तमाकृष्यैकत्र धारयेत् ॥ नान्यानि चिन्तयेद्भूयः सुस्मितं भावयेन्मुखम् ॥ ४३ ॥ तत्र लब्धपदं चित्तमाकृष्य व्योम्नि धारयेत् ॥ तच्च त्यक्त्वा मदारोहो न किंचिदपि चिन्तयेत् ॥ ४४ ॥

शंख, चक्र, गदा, पद्म, वनमालासों भूषित नूपुरनसों शोभित चरणकमल कौस्तुभमणिकी कांतिकरि संयुक्त ॥ ४० ॥ प्रभासों दीप्त मुकुट कंकण कटि मेखला बाजूबंद धारे सर्वांग सुंदर मनोहर प्रसन्नताके कारण अति सुन्दर शोभित मुख और नेत्र अति सुकुमार रूपको ध्यान करै सब अंगनमें मन देई ॥ ४१ ॥ प्रथम इंद्रियनकों विषयतें खेंचि मनमें मिलावे, मनको बुद्धि सारथी करि विषयनतें काढि मेरे स्वरूपमें मिलावे ॥ ४२ ॥ यह चित्त सर्वत्र व्याप्त है अंग अंगमें फिरे हैं, ताको विन २ अंगनते काढि मेरे मुखकी भावनामें राखे मंदहास्य संयुक्त मेरे मुखको बहुत काल चिंतवन करे और कुछ मनमें न धारे ॥४३॥ जब मुखमें मन स्थिर हैजाय तब मुखहूंते खेंचकर सबके मूलभूत साक्षात् मेरे स्वरूपमें राखे फिर वाकों वहांते छुडाइ साक्षात् शुद्ध ब्रह्मरूप मेरे संपूर्ण स्वरूपमें संलग्न होई तब और कछु चिंतवन न करे ॥ ४४ ॥

एवं समाहितमतिर्मामेवात्मानमात्मनि ॥ विचष्टे मयि सर्वात्मञ्ज्योतिज्योंतिषि संयुतम् ॥ ४५ ॥ ध्यानेनेत्थं सुतीव्रेण युञ्जतो योगिनो मनः ॥ संयास्यत्याशु निर्वाणं द्रव्यज्ञानक्रियाभ्रमः ॥ ४६ ॥ इति श्रीभागवत एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

या प्रकार समाधिमें दृढ मति होइ, अपने आत्मामें आत्मरूप मोहीकूं देखे, जैसे ज्योतिमें ज्योति मिलि जाइ तैसें सर्वात्मरूप मेरे रूपमें आपनो आत्माकों मिलौ देखे ॥४५॥ या प्रकार सुदृढ तीक्ष्ण ध्यान करि योगी मो विषें मन संयुक्त करे, तब वह द्रव्य ज्ञान क्रियारूप भ्रम शीघ्रही निवृत्त हैवेंसो शांतिकों प्राप्त होयं है ॥ ४६ ॥

इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां एकादशस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

---

१ ऊधो क्रोध लोभ अरु काम॥इनसे बचै सोई ज्ञानी नर और एक माया वाम॥ जप तप नियम समाधी व्रतको देत न यह रिपु ठाम ॥ इन तीनोंको तज सुख पावे भज मोहिं आठौं जाम ॥ धन दारा सुत अटा अटारी नगर धरणि पुर ग्राम ॥ यह सारे मायासे भासत त्याग जपो मम नाम ॥ वस ज्वालाप्रसाद यही एक तारैंगे सुखधाम ॥

अथ पंचदशोऽध्यायः।

श्रीभगवानुवाच ॥ जितेन्द्रियस्य युक्तस्य जितश्वासस्य योगिनः ॥ मयि धारयतश्चेत उपतिष्ठन्ति सिद्धयः ॥ १ ॥ उद्धव उवाच ॥ कया धारणया का स्वित्कथं वा सिद्धिरच्युत ॥ कति वा सिद्धयो ब्रूहि योगिनां सिद्धिदो भवान् ॥ २ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सिद्धयोऽष्टादश प्रोक्ता धारणायोगपारगैः ॥ तासामष्टौ मत्प्रधाना दशैव गुणहेतवः ॥३॥ अणिमा महिमा मूर्तेर्लघिमा प्राप्तिरिन्द्रियैः ॥ प्राकाश्यं श्रुतदृष्टेषु शक्तिप्रेरणमीशिता ॥ ४ ॥

पंद्रहके अध्यायमें जे धारणासहित सिद्धि सब कही वे सिद्धि भगवान्की प्राप्तिको अंतराय है, तातें इनको छोडि परमेश्वरसो तत्पर होइ सो कहैं हैं ॥ श्रीभगवान् बोले कि जो जितेंद्रिय होई श्वास जीते चित्त मेरे विषे राखै होई योगी होइ, स्थिरचित्त होइ ताकों ये सिद्धि अपने आप विनाही चाहै प्राप्त होय हैं ॥ १ ॥ तब उद्धवजी बोले हे श्रीकृष्ण ! कैसी धारणसौं ये सिद्धि होय हैं, सिद्धि कितनी हैं इनको रूप कहाहै, सो सब मोसो कहो, क्योंकि तुम योगीनहूको सिद्धिके दाता हो ॥ २ ॥ श्रीकृष्ण बोले धारणा और योगके पारंगतनने अठारह सिद्धि कही हैं, तामें आठ मेरे आश्रय रहैं हैं, ते मोहीकों होयहैं कि, तथा जो मेरे सारूप्यको प्राप्त होइहै वाकों होय हैं, पर कछु न्यून होयहैं और दश सिद्धि गुणनको कार्य्य है सतोगुणको उत्कर्ष बढामें हैं ॥ ३ ॥ तिनकूं कहै हैं अणिमा महिमा लघिमा ये तीन्यो

१ बडे शरीरको छोटा बना लेना अणिमा छोटेको बडा बना लेना महिमा, भारी शरीरको हलका बना लेना लघिमा सिद्धि है ॥

गुणेष्वसङ्गो वशिता यत्कामस्तदवस्यति ॥ एता मे सिद्धयः सौम्य अष्टावौत्पत्तिका मताः ॥ ५ ॥ अनुर्मिमत्त्वं देहेऽस्मिन्दूरश्रवणदर्शनम् ॥ मनोजवः कामरूपं परकायप्रवेशनम् ॥ ६ ॥ स्वच्छन्दमृत्युर्देवानां सहक्रीडानुदर्शनम् ॥ यथासंकल्पसंसिद्धिराज्ञाऽप्रतिहताऽऽगतिः ॥ ७ ॥ त्रिकालज्ञत्वमद्वन्द्वं परचित्ताद्यभिज्ञता ॥ अग्न्यर्काम्बुविषादीनां प्रतिष्टम्भोऽपराजयः ॥ ८ ॥

देहकी सिद्धि हैं प्रांप्ति सिद्धि इंद्रियनकी है इंद्रियनसों मिलि इंद्रियनके देवतानसो संग होनौ परलोक और या लोकके विषयनके भोग देखवेकी सामर्थ्य तथा भूमिके गुप्त पदार्थनको ज्ञान होनौ प्राकाश्य सिद्धि है ईश्वरमें मायाकी और दूसरेनमें मायाके अंशनकी प्रेरणा करवेकी सामर्थ्यको ईशिता सिद्धि कहे हैं ॥ ४ ॥ गुणमें असंग होई विषयभोग करें और संग दोष न लगे सो वशिंता सिद्धि कहिये, जाको कामना करे ताकों पावे यह प्राकाम्य सिद्धि है हे उद्धव ! ये आठ सिद्धि मेरे आश्रय रहैहैं ॥ ५ ॥ क्षुधा पिपासा आदि धर्म शरीरमें न व्यापे यह अनूर्मि सिद्धि है दूरकी वस्तु सुने और देखे ए सिद्धि दोई सिद्धि हैं, मनके वेगकरि देहकी गति होइ यह मनोवेग नाम है जैसो रूप कियो चाहैं तैसो होइ यह कामरूप सिद्धि हैं, परकायां प्रवेश करे एक यह सिद्धि हैं ॥ ६ ॥ स्वेच्छामृत्यु होइ यह एक सिद्धि है अप्सरानके संग देवताहे के क्रीडा करें हैं तिनकों देखवेकी सिद्धि है जो मनमें चाहे सों पावे अप्रतिहत गति होइ और आज्ञाभंग न होइ यह दश सिद्धि सतोगुणकी वृद्धिसो मिलती है ॥ ७ ॥ पांच सिद्धि तुच्छ हैं ते कहें हैं त्रिकालको ज्ञान होइ १ शीत,

एताश्चोद्देशतः प्रोक्ता योगधारणसिद्धयः ॥ यया धारणया या स्याद्यथा वा स्यान्निबोध मे ॥९॥ भूतसूक्ष्मात्मनि मयि तन्मात्रं धारयेन्मनः॥ अणिमानमवाप्नोति तन्मात्रोपासको मम ॥१०॥ महत्यात्मन्मयि परे यथासंस्थं मनो दधत् ॥ महिमानमवाप्नोति भूतानां च पृथक् पृथक् ॥ ११ ॥ परमाणुमये चित्तं भूतानां मयि रञ्जयन्॥ कालसूक्ष्मार्थतां योगी लघिमानमवाप्नुयात् ॥ १२ ॥ धारयन्मय्यहंतत्त्वे मनो वैकारिकेऽखिलम् ॥ सर्वेन्द्रियाणामात्मत्वं प्राप्तिं प्राप्नोति मन्मनाः ॥ १३ ॥

उष्ण, कछु न लगे २ पराये चित्तको धर्म जानें ३ अग्नि, सूर्य, जल, विषकों रोकेः इनको दोष होने न देइ ४ पराजय कहूं न होई ५ ॥ ८ ॥ हे उद्धव! ये सब योग धारणाकी सिद्धि-मात्र कही अब ज्ञान धारणाते जो सिद्धि होइ और जैसे होई सो मोते सुनो ॥ ९ ॥ मनको भूत सूक्ष्म अर्थात् शब्द स्पर्श रूप रस गंध सूक्ष्म तन्मात्राके आकार करके या भूत सूक्ष्म उपाधिमान मेरे स्वरूपमें धारण करवैसो सूक्ष्म रूपको उपासक पुरुष अणिमा सिद्धिको प्राप्त होय है ॥ १०॥ ज्ञानशक्ति महत्तत्त्वरूपमें महत्तत्त्वरूप मन धरे तो महिमा सिद्धि पावै और न्यारे न्यारे आकाश आदि भूतनहीकी रूपमें मन धरे तो भूतनकीमहिमा सिद्धि पावे ॥ ११ ॥ पंचभूतनके परमाणु अतिसूक्ष्म हैं सो मेरो रूप है तामें चित्त अनुरक्त करे तब योगी परमाणु कालके रूपको प्राप्ति होइ, सो लघिमा सिद्धि कहिये ॥१२॥ सात्विक अहंकारतत्त्वरूप मोविषे एकाग्र मन धरे तो सब इंद्रियनको अधिष्टाता होइ मोमेंही मन राखवेके प्रभावसों यह प्राप्ति सिद्धि

महत्यात्मनि यः सूत्रे धारयेन्मयि मानसम् ॥ प्राकाश्यं पारमेष्ठ्यं मे विन्दतेऽव्यक्तजन्मनः ॥१४॥ विष्णौ त्र्यधीश्वरे चित्तं धारयेत्कालविग्रहे ॥ स ईशित्वमवाप्नोति क्षेत्रक्षेत्रज्ञचोदनाम् ॥ १५ ॥ नारायणे तुरीयाख्ये भगवच्छब्दशब्दिते ॥ मनो मय्यादधद्योगी मद्धर्मा वशितामियात् ॥१६॥ निर्गुणे ब्रह्मणि मयि धारयन् विशदं मनः ॥ परमानन्दमाप्नोति यत्र कामोऽवसीयते ॥ १७ ॥ श्वेतद्वीपपतौ चित्तं शुद्धे धर्ममये मयि ॥ धारयन् श्वेततां याति षडूर्मिरहितो नरः ॥ १८ ॥मय्याकाशात्मनि प्राणे मनसा घोषमुद्वहन् ॥तत्रोपलब्धा भूतानां हंसो वाचः शृणोत्यसौ १९

होयहै ॥१३॥ प्रकृतिते क्रियाशक्तिरूप महत्त्व होयहै, सो रूप है तामें मन धरे तब सबते उत्तम मायाते उपजे प्रकामको पावे सो प्राकाम्य सिद्धि कहिये ॥ १४ ॥ त्रिगुणमायाके नियंता अंतर्यामी कालरूपी व्यापक मेरे स्वरूपमें मन धरे तो सब जीव और चर अचर शरीरकों नियंता होइ सो ईशिता सिद्धिकों पावे ॥ १५ ॥ विराट् हिरण्यगर्भ और कारणते चौथे तुरीयब्रह्म भगवान् नारायणमें मन धरैं तो योगी मेरे धर्मकों पावें, तब वशितासिद्धिकों पावे ॥ १६ ॥ निर्गुण ब्रह्मके विषें निर्मल मन राखे तौ परमानंद पावे, जहां सब कामना समाप्त होयहै ॥ १७ ॥ अब गुण हेतु सिद्धि कहैं हैं, श्वेतद्वीपके पति शुद्ध धर्ममय मेरे रूपमें मन धरे तो मनुष्य शुद्धताकों प्राप्तहोइ वासों क्षुधा प्यास आदि ले जे छैः ऊर्मी लहरी है वे नहीं व्यापें है ॥ १८ ॥ आकाशरूप प्राण हैं सो मेरो रूप है, तामें मनकरिकें शब्दको चित-

चक्षुस्त्वष्टरि संयोज्य त्वष्टारमपि चक्षुषि ॥ मां तत्र मनसा ध्यायन्विश्वं पश्यति सूक्ष्मदृक् ॥ २० ॥ मनो मयि सुसंयोज्य देहं तदनु वायुना ॥ मद्धारणाऽनुभावेन तत्रात्मा यत्र वै मनः ॥ २१ ॥ यदा मन उपादाय यद्यद्रूपं बुभूषति ॥ तत्तद्भवेन्मनोरूपं मद्योगबलमाश्रयः ॥ २२ ॥ परकायं विशन् सिद्ध आत्मानं तत्र भावयेत् ॥ पिण्डं हित्वा विशेत् प्राणो वायुभूतः षडङ्घ्रिवत् ॥ २३ ॥ पार्ष्ण्याऽऽपीड्य गुदं प्राणं हृदुरःकण्ठमूर्धसु ॥ आरोप्य ब्रह्मरन्ध्रेण ब्रह्म नीत्वोत्सृजेत् तनुम् ॥ २४ ॥

वन करे तब वह आकाशमें भूतनकी वाणी प्रगट दूरिहीतें सुने है ॥ १९ ॥ यह नेत्र सूर्यमें मिलावै मन करिकैं मेरो ध्यान धरे; तब सूक्ष्म दृष्टिहोइ, दूरितें विश्वकों देखे ॥ २० ॥ मन वायुके संग देहको मेरे विषें संयुक्त करिकैं जो मेरी धारणा करे तौ या धारणाकें प्रतापसो जहां मन करे तहां देह जाई ॥ २१ ॥ जब मन मेरे विषें मनकी धारणाकरि धरे तब मेरे प्रभावकरि जैसो रूप कियो चाहैं है तैसो रूप करे, कारण कि विन्हैं मेरे योगबलको आश्रय है ॥ २२ ॥ जो सिद्ध परकायामें प्रवेश कियो चाहैं सो आत्माकों चितवन करे, तब अपनी देह छोडि प्राणरूप होइ बाहिरकी वायुमें प्रविष्ट होइ वायुके संग परकायामें प्रविष्ट होयहैं जैसें भ्रमर पुष्पतें दूसरे पुष्पमें अनायास चले जायहैं ॥ २३ ॥ अब स्वच्छंद मृत्युको प्रकार कहैं हैं, योगधारणा करते प्रथम एडीसों गुदद्वार दाबकर रोके पीछें प्राणको हृदयमें लेआवे. पीछें हृदयमें उर वक्षःस्थलमें मिलावे, पीछें कंठमें ले आवे कंठते माथेमें लावे, तब ब्रह्मरंध्र द्वारा या देहको छोडे

विहरिष्यन्सुराक्रीडे मत्स्थं सत्त्वं विभावयेत् ॥ वि-
मानेनोपतिष्ठन्ति सत्त्ववृत्तीः सुरस्त्रियः ॥ २५ ॥यथा
संकल्पयेत् बुद्ध्या यदा वा मत्परः पुमान् ॥ मयि
सत्ये मनो युञ्जंस्तथा तत्समुपाश्नुते ॥ २६ ॥ यो
वै मद्भावमापन्न ईशितुर्वशितुः पुमान् ॥ कुतश्चिन्न
विहन्येत तस्य चाज्ञा यथा मम ॥ २७ ॥ मद्भक्त्या
शुद्धसत्त्वस्य योगिनो धारणाविदः ॥ तस्य त्रैकालि-
की बुद्धिर्जन्ममृत्यूपबृंहिता ॥ २८ ॥ अग्न्यादिभिर्न
हन्येत मुनेर्योगमयं वपुः ॥ मद्योगश्रान्तचित्तस्य
यादसामुदकं यथा ॥ २९ ॥

ना स्थानमें जायो चाहै तहां जाइ ॥ २४ ॥ जब देवतानके क्रीडास्थ-
लमें विहार कियो चाहें तब मेरे सतोगुणरूपी मूर्तिको ध्यान धरे, तब
सतोगुणके अंशते तहांई विमान समेत देवांगना आइ ठाड़ी होयहैं
॥ २५ ॥ पुरुष मोविषें विश्वासकरि बुद्धिसो मनोरथ करे तब सत्य
संकल्परूप मेरे रूपमें मन संयुक्तकर तैसोही मनोरथ पावे है ॥२६ ॥
मैं सबनको ईश्वर नियंता हौं, स्वतंत्र हौं, मेरे भावकों प्राप्तभयो पुरुष
कहूं प्रतिहत नहीं होयहै जैसे मेरी आज्ञा सब मानेहैं तैसै वाहूकी
आज्ञा सब मानें उल्लंघन न करिसके, ये सब गुणहेतु सिद्धि कही
॥ २७ ॥ अब तुच्छ सिद्धि कहैं हैं मेरीभक्ति करि शुद्ध सत्वरूपमय
होइ योगी त्रिकालके ज्ञाता ईश्वर मेरी धारणा करे, तब जन्म मृत्यु
सहित तीनों कालको ज्ञान होइ और यही दूसरेके चित्तकी सब बात
जानी जायहै ॥ २८ ॥ मेरे योग करिकैं जाको चित्त युक्त होइ ताकी
देह भोगमय होइ सो अग्नि करकें और अनेक उपाधिसो उपहत नहीं

मद्विभूतीरभिध्यायञ्छ्रीवत्सास्त्रविभूषिताः॥ ध्वजातपत्रव्यजनैः स भवेदपराजितः॥ ३०॥ उपासकस्य मामेवं योगधारणया मुनेः॥ सिद्धयः पूर्वकथिता उपतिष्ठन्त्यशेषतः॥ ३१॥ जितेन्द्रियस्य दान्तस्य जितश्वासात्मनो मुनेः॥ मद्धारणां धारयतः का सा सिद्धिः सुदुर्लभा॥ ३२॥ अन्तरायान् वदन्त्येता युञ्जतो योगमुत्तमम्॥ मया संपद्यमानस्य कालक्षपणहेतवः॥ ३३॥ जन्मौषधितपोमन्त्रैर्यावतीरिह सिद्धयः॥ योगेनाप्नोति ताः सर्वा नान्यैर्योगगतिं व्रजेत्॥ ३४॥

होइहै जैसें जलजंतुको जल बाधा नहीं करैहै तैसें याकों कोई बाधा नहीं करिसकैहै॥ २९॥ श्रीवत्स, अस्त्र, ध्वज, छत्र चमर युक्त मेरी विभूति अवतारको ध्यान करे तब याको पराजय कबहू न होई॥ ३०॥ या प्रकार मेरी उपासना कर तब मेरी योगधारणा करवेसों पहलै कही सब सिद्धि वाके आगे हाथ जोरें ठाढी रहैं हैं॥ ३१॥ अनेक भांतिकी धारणामें कष्ट बहुत हैं याते एकही धारणा ऐसी करे जाते सब सिद्धि होइ सो कहैं हैं जितेंद्रिय दांत जितश्वास हो मन जीत तुरीय ब्रह्म नारायण स्वरूपमें मेरी धारणा धरनवारे गुणिनको कौन सिद्धि दुर्लभ है॥ ३२॥ जो मेरे साक्षात् स्वरूपकी धारणा करैं हैं ताकों मेरी प्रीतिमें ये सिद्धि विघ्न करैहै तातें इन सिद्धिनसों व्यर्थ काल न खोवे इन सिद्धिनको न चाहना करे॥ ३३॥ एक सिद्धि जन्महीतें होयहै जैसे देवतानको सिद्धि समेतही जन्म होयहै सहजही सिद्धिहै एक मंत्रकरि औषधी करि तपकरि जितनी सिद्धि होयहै वे सब सिद्धि योगकरि पावे पर इन करिके सालोक्यादिक मुक्तिको

सर्वासामपि सिद्धीनां हेतुः पतिरहं प्रभुः ॥ अहं योगस्य सांख्यस्य धर्मस्य ब्रह्मवादिनाम् ॥ ३५ ॥ अहमात्मान्तरो बाह्योऽनावृतः सर्वदेहिनाम् ॥ यथा भूतानि भूतेषु बहिरन्तः स्वयं तथा ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

अथ षोडशोऽध्यायः ।

उद्धव उवाच ॥ त्वं ब्रह्म परमं साक्षादनाद्यन्तमपावृतम् ॥ सर्वेषामपि भावानां प्राणस्थित्यप्ययोद्भवः ॥ १ ॥ उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयमकृतात्मभिः ॥ उपासते त्वां भगवन् यथातथ्येन ब्राह्मणाः ॥ २ ॥

नहीं पावेहै ॥ ३४ ॥ यातें हे उद्धव ! सब सिद्धिनको एक मैंही प्रभु हूं कारण पालक हों मैं मोक्ष सांख्य ज्ञान धर्म और ब्रह्मके ज्ञातानको पालक हों ॥ ३५ ॥ मैं सब देही जीवनको आत्मा हों अंतर्यामी हों सर्वत्र व्यापक हों जैसे भूतनमें महाभूत सर्वत्र व्याप्तहै और आवरणरहित है याकों ऐसेही जानो ॥ ३६ ॥

इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां एका० पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

अब सोलहें अध्यायमें प्रकटतासंयुक्त हरिकी विभूतिज्ञान वीर्य प्रभाव सहित विशेष करिकै कहैंगे उद्धव बोले हे श्रीकृष्ण ! तुम साक्षात् परब्रह्म निरावरण हो स्वतंत्र हो जिनमें सब भूत मात्रकी उत्पत्ति प्रलय रक्षा जीवन होयहै, ते तुम हो सबके कारण हो, आदि अंतसों रहित हो ॥ १ ॥ हे भगवन् ! जे वेदके तत्वको जाने हैं वे

येषु येषु च भावेषु भक्त्या त्वां परमर्षयः ॥ उपा-
सीनाः प्रपद्यन्ते संसिद्धिं तद्वदस्व मे ॥३॥ गूढश्चर-
सि भूतात्मा भूतानां भूतभावन ॥ न त्वां पश्यन्ति
भूतानि पश्यन्तं मोहितानि ते ॥ ४॥ याः काश्च भूमौ
दिवि वै रसायां विभूतयो दिक्षु महाविभूते॥ ता मह्य-
माख्याह्यनुभाविताास्ते नमामि ते तीर्थपदाङ्घ्रिपद्मम्
॥ ५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एवमेतदहं पृष्टः प्रश्नं प्रश्न-
विदां वर ॥ युयुत्सुना विनशने सपत्नैरर्जुनेन वै ॥६॥
ज्ञात्वा ज्ञातिवधं गर्ह्यमधर्मं राज्यहेतुकम् ॥ ततो
निवृत्तो हन्ताऽहं हतोऽयमिति लौकिकः॥ ७ ॥

सर्वत्र ऊंचे नीचे पदार्थनमें कारणरूप तुमको जानि तुह्मारी उपासना करेहै ॥ २ ॥ जे आत्मतत्व नहीं जाने हैं तुम तिनकों जानिवेकों अशक्य हो जिन जिन भावनाविषे ऋषीश्वर भक्ति करिकैं तुमकों उपासना करते सिद्धिकों पावेहै मोको विन पदार्थनके नाम कहो ॥ ३॥ सब प्राणीनके मध्यमें गुप्त तुम अंतर्यामी हो, प्राणीनको कार्य कारण सामर्थ्यके दाता तुह्मे सब भूत तुह्मारी माया करिकै मोहित-होइ नहीं देखैहै ॥ ४ ॥ जिनमें गुप्त रहोहो तिन विभूतिनको पूछेहै, हे महाविभूतिके पति ! जे तुह्मारी विभूति भूमिसों स्वर्ग पाताल दिशानमें निश्चय करिहै, और जे विभूति तुह्मारे प्रताप संयुक्त हैं ते मोसूं कहो तुह्मारे तीर्थरूप चरणारविंदनको नमस्कार करोंहों ॥ ५ ॥ याप्रकार उद्धवको प्रश्न सुनिके संतुष्ट होई श्रीकृष्ण बोले हे प्रश्नके ज्ञातानमें श्रेष्ठ ! याही भांति शत्रुनसों युद्ध करवेकी इच्छा-वारे अर्जुनने युद्धके समय कुरुक्षेत्रमें मोसों प्रश्न कियोहो ॥ ६ ॥ कदाचित् कहो युद्धके समयमें या प्रश्नको कौन प्रसंग हो तापे कहें है

स तदा पुरुषव्याघ्रो युक्त्या मे प्रतिबोधितः ॥ अ-
भ्यभाषत मामेवं यथा त्वं रणमूर्धनि ॥८॥ अहमा-
त्मोद्धवामीषां भूतानां सुहृदीश्वरः ॥ अहं सर्वाणि
भूतानि तेषां स्थित्युद्भवाप्ययः॥ ९ ॥ अहं गतिर्ग-
तिमतां कालः कलयतामहम् ॥ गुणानां चाप्यहं
साम्यं गुणिन्यौत्पत्तिको गुणः ॥१०॥ गुणिनामप्यहं
सूत्रं महतां च महानहम् ॥ सूक्ष्माणामप्यहं जीवो
दुर्जयानामहं मनः॥ ११ ॥ हिरण्यगर्भो वेदानां म-
न्त्राणां प्रणवस्त्रिवृत् ॥ अक्षराणामकारोऽस्मि पदानि
च्छन्दसामहम् ॥ १२ ॥

राज्यके निमित्त अपने जातिवारेनके वधको करनौ अनुचित अति-
निन्दित और अधर्म रूप जानके कि मैं इन्हें मारूंगो यह मरैंगे
यासौ करुणा व्याप्त बुद्धि हैवेसौ पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन युद्ध करवेसौ
निवृत्त हेकै स्थितभयो ॥ ७ ॥ तब मैंने युक्ति करिकें पुरुषसिंह
अर्जुनको समझायो तब यही प्रश्न रणभूमिमें कियोहो अब तुमहूं
तैसेंई पूछोहो मैं तुमहूंसो वही कहूंगो ॥ ८ ॥ हे उद्धव ! इन प्राणि-
मात्रको आत्मा मैं हों सुहृद मित्र ईश्वर नियंता मैं हों और सब
प्राणिमात्रहू मैं हों सबको जन्म पालन प्रलयको कर्ताहू मैं हों ॥ ९ ॥
गतिमंत जे चलें फिरें है तिनहूंको योग मन कर्म मैं हों जे सबको वश
करै है तिनमें मेरो रूप है अनंतगुण है तिनमें समता गुण मेरो रूप
है गुणसंयुक्त पुरुषको स्वाभाविक गुण मैं हूं ॥ १० ॥ गुणीनको प्रथम
कार्य्य हों जे बडे पदार्थ हैं तिनमें महत्तम मैं हो सूक्ष्मनमें प्रथम जीव
मैं हो दुर्जयोंमें मन मैं हो ॥ ११ ॥ देवनको अध्यापक मैं हो मंत्रनमें

इन्द्रोऽहं सर्वदेवानां वसूनामस्मि हव्यवाट्॥ आदि-
त्यानामहं विष्णू रुद्राणां नीललोहितः॥ १३ ॥ ब्रह्म-
र्षीणां भृगुरहं राजर्षीणामहं मनुः॥ देवर्षीणां नारदो-
ऽहं हविर्धान्यस्मि धेनुषु॥ १४॥ सिद्धेश्वराणां कपि-
लः सुपर्णोऽहं पतत्रिणाम् ॥ प्रजापतीनां दक्षोऽहं
पितॄणामहमर्यमा॥ १५ ॥ मां विद्ध्युद्धव दैत्यानां
प्रह्लादमसुरेश्वरम् ॥ सोमं नक्षत्रौषधीनां धनेशं यक्ष-
रक्षसाम् ॥ १६ ॥ ऐरावतं गजेन्द्राणां यादसां वरुणं
प्रभुम्॥ तपतां द्युमतां सूर्यं मनुष्याणां च भूपतिम्
॥ १७॥ उच्चैःश्रवास्तुरङ्गाणां धातूनामस्मि काञ्चन-
म्॥यमः संयमतां चाहं सर्पाणामस्मि वासुकिः॥१८॥
नागेन्द्राणामनन्तोऽहं मृगेन्द्रः शृङ्गिदंष्ट्रिणाम् ॥
आश्रमाणामहं तुर्यो वर्णानां प्रथमोऽनघ ॥ १९ ॥

प्रणव मैं हो अक्षरनमें अकार मैं हो छंदनमें गायत्री मैं हो॥ १२॥ सब देवतानमें इन्द्र मैं हो आदित्यनमें विष्णु मैं हो रुद्रनमें नीललोहित मैं हो॥ १३॥ ब्रह्मऋषिनमें भृगु मैं हो, राजऋषिनमें मनु मैं हो, देवऋषिनमें नारद मैं हो, धेनुनमें कामधेनु मैं हो॥ १४॥ सिद्धेश्वरनमें कपिलदेव मैं हो, पक्षीनमें गरुड मैं हो, प्रजापतिनमें दक्षप्रजापति मैं हो, पितरनमें अर्यमा मैं हो॥ १५॥ हे उद्धव! दैत्यनमें दैत्यनको राजा प्रह्लाद मैंहो, नक्षत्र औषधीनको पति प्रभु चंद्रमा मैं हो, यक्ष राक्षसनको प्रभु कुबेर मैंई हूं ॥ १६॥ गजेंद्रनमें ऐरावत, जलजंतुनमें प्रभुवरुण, प्रतापवंतनमें दीप्तमंतनमें सूर्य्य, मनुष्यनमें नराधिप राजा मैं हों॥ १७॥ घोडानमें उच्चैःश्रवा, धातुनमें सुवर्ण, दंडकर्त्तानमें यम, सर्पनमें वासुकी मैं हो॥ १८॥ नागेंद्रनमे अनंत

तीर्थानां स्रोतसां गङ्गा समुद्रः सरसामहम् ॥ आयुधानां धनुरहं त्रिपुरघ्नो धनुष्मताम् ॥२०॥ धिष्ण्यानामस्म्यहं मेरुर्गहनानां हिमालयः ॥ वनस्पतीनामश्वत्थ औषधीनामहं यवः ॥२१॥ पुरोधसां वसिष्ठोऽहं ब्रह्मिष्ठानां बृहस्पतिः ॥ स्कन्दोऽहं सर्वसेनान्यामग्रण्यां भगवानजः ॥२२॥ यज्ञानां ब्रह्मयज्ञोऽहं व्रतानामविहिंसनम् ॥वाय्वग्न्यर्काम्बुवागात्मा शुचीनामप्यहं शुचिः ॥२३॥ योगानामात्मसंरोधो मन्त्रोऽस्मि विजिगीषताम् ॥ आन्वीक्षिकी कौशलानां विकल्पः ख्यातिवादिनाम् ॥ २४ ॥

शेषनाग मैं हो, शृंगीनमें और डाढवारेनमें प्रभु सिंह मैंहो, आश्रमनमे संन्यास मैंहो, हे निष्पाप ! वर्णनमे ब्राह्मणमैंहो ॥ १९ ॥ तीर्थनमे और प्रवाहनमे गंगा मैंहो, स्थिर जलनमे समुद्र मैंहुं, आयुधनमे धनुष मैंहूं, धनुषधारीनमे त्रिपुरके घाती महारुद्र मैंहो ॥ २० ॥ निवासस्थानमे सुमेरु, दुर्गम स्थलनमे हिमालय, वनस्पतीनमें अश्वस्थ औषधिनमें जव मैंहों ॥ २१ ॥ पुरोहितनमें वशिष्ठ, वेदार्थज्ञातानमें बृहस्पति मैंहों, सेनापतिनमें स्वामिकार्तिकेय, उत्तम मार्ग प्रवर्तकमें ब्रह्मा मैंहों ॥ २२ ॥ यज्ञमें ब्रह्मयज्ञ व्रतमें हिंसारहित व्रत मैंहों, शोधकनमें वायु अग्नि सूर्य जल वाणी रूप शोधक मैंहों, ये सदा पवित्रकारी है ॥२३ ॥ योगीनमें समाधि मैंहो जयको चाहेहै तिनमें नीति मोहीकू जानि, विवेकीनमें आत्मा अनात्माके विवेककारी विद्या मेरो रूप है पांच प्रकारके ख्यातिवादी है तिनमें यह यों होयहै अथवा योंहै ऐसो विकल्प मैंहीहो ॥ २४ ॥

स्त्रीणां तु शतरूपाऽहं पुंसां स्वायंभुवो मनुः ॥ नारायणो मुनीनां च कुमारो ब्रह्मचारिणाम् ॥ २५॥ धर्माणामस्मि संन्यासः क्षेमाणामबहिर्मतिः ॥ गुह्यानां सूनृतं मौनं मिथुनानामजस्त्वहम् ॥ २६ ॥ संवत्सरोऽस्म्यनिमिषामृतूनां मधुमाधवौ ॥ मासानां मार्गशीर्षोऽहं नक्षत्राणां तथाऽभिजित् ॥ २७ ॥ अहं युगानां च कृतं धीराणां देवलोऽसितः ॥ द्वैपायनोऽस्मि व्यासानां कवीनां काव्य आत्मवान् ॥ २८ ॥ वासुदेवो भगवतां त्वं तु भागवतेष्वहम् ॥ किंपूरुषाणां हनुमान् विद्याध्राणां सुदर्शनः ॥ २९ ॥ रत्नानां पद्मरागोऽस्मि पद्मकोशः सुपेशसाम् ॥ कुशोऽस्मि दर्भजातीनां गव्यमाज्यं हविष्वहम् ॥ ३० ॥

स्त्रीनमें शतरूपा मैंहो पुरुषनमे स्वायंभुव मनु मैंहो मुनिनमें नारायण मुनि मैं हों ब्रह्मचारीनमे सनत्कुमार मैंहों ॥ २५ ॥ धर्मनमें अभयदान मेरो रूप है निर्भयस्थाननमे आत्मनिष्ठा मैंहों अतिरहस्यनमे प्रियवचन और मौन मैहो मिथुन स्त्रीपुरुषनमें ब्रह्मा मैंहो, जाके अर्धदेहते स्त्री और पुरुष भयेहैं ॥२६॥ जे धर्ममें सावधानहै तिनको संवत्सर रूपी काल मैहो, ऋतुनमे वसंत मैहो, महीनानमे मार्गशीर मैहो संपूर्ण नक्षत्रमें अभिजित मैहो ॥ २७ ॥ युगनमे सतयुग, धीरनमें असितदेवल मैं हो वेदके विभागकर्त्तानमें द्वैपायन व्यास मैं हो कविनमें काव्य शुक्र मेरो रूप है ॥ २८ ॥ प्राणीनकी उत्पत्ति प्रलयगति आगति विद्याअविद्याको जानेवारे भयमान्के मध्य वासुदेव मैं हो, हे उद्धव! वैष्णवनमें तुम मेरो रूप हो, किंपुरुषमें हनुमान मैं हो विद्याधरनमे सुदर्शन मैहीहो ॥ २९ ॥ रत्नमें पद्मरागपुखराज मैं

व्यवसायिनामहं लक्ष्मीः कितवानां छलग्रहः ॥ ति-
तिक्षाऽस्मि तितिक्षूणां सत्त्वं सत्त्ववतामहम् ॥ ३१ ॥
ओजः सहो बलवतां कर्माहं विद्धि सात्त्वताम् ॥
सात्वतां नवमूर्तीनामादिमूर्तिरहं परः ॥ ३२ ॥ वि-
श्वावसुः पूर्वचित्तिर्गन्धर्वाप्सरसामहम् ॥ भूधराणा-
महं स्थैर्यं गन्धमात्रमहं भुवः ॥ ३३ ॥ अपां रसश्च
परमस्तेजिष्ठानां विभावसुः ॥ प्रभा सूर्येन्दुताराणां
शब्दोऽहं नभसः परः ॥ ३४ ॥ ब्रह्मण्यानां बलिरहं
वीराणामहमर्जुनः ॥ भूतानां स्थितिरुत्पत्तिरहं वै
प्रतिसंक्रमः ॥ ३५ ॥

हो, अति सुंदर वस्तुनमे पद्मकोश मै हो, दर्भजातिनमे कुश मै हो घृतनमें गौको घृत मै हो ॥ ३० ॥ उद्यमवंतनमेलक्ष्मी मेरो रूप है, धूर्तनमे छल करिकें जो ग्रहण करिवो है सोमै हूं, क्षमावंतनमे क्षमा मै हो सत्यवंतनमे सत्य मै हो ॥ ३१ ॥ बलवंतनमे इंद्रिय बल और उछाहबल मै हो, भक्तनमे भक्तिरूप कर्म मै हो नव मूर्ति भक्तनकी पूजाको प्रगट है तिन वासुदेव संकर्षण प्रद्युम्न अनिरुद्ध नारायण हय-ग्रीव वाराह नृसिंह ब्रह्मामे आदिमूर्ति वासुदेव मैं हो ॥ ३२ ॥ गंधर्व-नमे विश्वावसु मै हो अप्सरानमे पूर्वचिती मै हो पर्वतनमे स्थैर्य हिमालय मै हो ॥ ३३ ॥ जलनमे उत्तम माधुर्य्यरस मेरो रूप है ते-जस्वीनमे अग्नि मै हो सूर्य्य चंद्र तारानमे कांति मै हो आकाशमें परानाम शब्द मै हो ॥ ३४ ॥ ब्रह्मण्यनमे बलि मै हो वीरनमे अर्जुन मै हूं हे उद्धव ! निश्चय करिके संपूर्ण भूतमात्रनकी स्थिति उत्पत्ति प्रलय मैं हों ॥ ३५ ॥

गत्युक्त्युत्सर्गोपादानमानन्दस्पर्शलक्षणम् ॥ आ-
स्वादश्रुत्यवघ्राणमहं सर्वेन्द्रियेन्द्रियम् ॥ ३६ ॥ पृ-
थिवी वायुराकाश आपो ज्योतिरहं महान् ॥ विकारः
पुरुषोऽव्यक्तं रजःसत्त्वतमः परम् ॥ ३७ ॥ अहमेतत्
प्रसंख्यानं ज्ञानं तत्त्वविनिश्चयः ॥ मयेश्वरेण जीवेन
गुणेन गुणिना विना ॥ सर्वात्मनाऽपि सर्वेण न भावो
विद्यते क्वचित् ॥ ३८ ॥ संख्यानं परमाणूनां कालेन
क्रियते मया ॥ न तथा मे विभूतीनां सृजतोऽण्डानि
कोटिशः ॥ ३९ ॥

चरण वाणी गुदा हस्त लिंग इन पांच कर्मेंद्रियनके गमन वचन मलत्याग लेवो आनंद कर्म मैं हों, त्वचा नेत्र जिह्वा श्रवण नासिका ज्ञानेंद्रियनके स्पर्श चितवनि आस्वाद सुनिवो आघ्राण कर्म मैं हों, तिन तिन अर्थ ग्रहण करिवेकी शक्तिहू मैं हों॥ ३६॥ विशेष कहिके अब सामान्यते सब विभूति कहे हैं शब्द स्पर्श रूप रस गंध ये पांच सूक्ष्ममात्रा हैं, अहंकार महत्तत्त्व ए सात प्रकृतिके विकार हैं पंच महाभूत और एकादश इंद्रिय ये सोलहे तत्त्व भये, एक पुरुष और प्रकृति दो ये भये, या भांति सब पचीस तत्त्व भये, रजोगुण सतोगुण तमोगुण ये तीन गुण इनतें आगे परब्रह्म सो सब मैंही हों, इनकी संख्या इनको लक्षणसहित ज्ञान और ताको फल तत्त्वको निश्चय सब मैंही हों ॥ ३७ ॥ मैंही सबको ईश्वर हों, सब जीवरूपहू मै हों गुणीरूपहू मैं हों क्षेत्ररूप और क्षेत्रज्ञरूप मैंही हों, तातें मो विना जीव ईश्वर गुणी क्षेत्र क्षेत्रज्ञ इत्यादिक भाव कहूं नहीं है ॥ ३८ ॥ अहो तुम ऐसें संक्षेपतें कहा कहो हों अच्छीतरह विस्तारसों सम-झाइके कहो, ताको उत्तर देयहैं कि पृथिवीके परमाणुकी संख्य

तेजः श्रीः कीर्तिरैश्वर्यं ह्रीस्त्यागः सौभगं भगः ॥ वीर्यं तितिक्षा विज्ञानं यत्र यत्र स मेंऽशकः ॥४०॥ एतास्ते कीर्तिताः सर्वाः संक्षेपेण विभूतयः ॥ मनोविकारा एवैते यथा वाचाभिधीयते ॥ ४१ ॥ वाचं यच्छ मनो यच्छ प्राणान्यच्छेन्द्रियाणि च ॥ आत्मानमात्मना यच्छ न भूयः कल्पसेऽध्वने ॥ ४२ ॥ यो वै वाङ्मनसी सम्यगसंयच्छन्धिया यतिः॥ तस्य व्रतं तपो ज्ञानं स्रवत्यामघटाम्बुवत् ॥ ४३ ॥

कितनेउ कालकरिके मैंही करो हों यासौं कहिवेको समर्थ हों, परन्तु मेरी विभूतिनकी संख्या न करीजाइ हैं, मैं अनेक कोटि ब्रह्मांडनकों सृजोहौं, जब ब्रह्माण्डनकी संख्या नहीं तब विनमें स्थित मेरी विभूतिनकी संख्या कौन करसकै है ॥ ३९॥ तथापि संक्षेपतें विशेष करि विभूति कहोहौं, जहां जहां तेज श्री कीर्ति ऐश्वर्य लज्जा दान मान और नेत्रनको आनंद भाग्य वीर्य क्षमा विज्ञान ये धर्म हैं, सो सब मेरो अंश है ॥ ४० ॥ ए विभूति संक्षेपतें मैंने तोसौं कही है परि ये सब मनको विकार है परमार्थ रूप नहीं जैसे आकाशके फूल आदि वाणीमात्र करिके कहिये हैं वे तिनके तुल्य हैं ॥ ४१ ॥ सतोगुणयुक्त बुद्धि करिके वाणीको रोको मनको नेम करो प्राणनको रोको इंद्रियनको निरोध करिके बुद्धिको रोको, तब फिरि संसार मार्गमें न परोगे ॥ ४२ ॥ जो यह इंद्रियनको बुद्धिको नहीं संयम करे, तो दोष उपजे सो कहें हैं, जो बुद्धि कारकै भली भांति वाणी और मनको संयम नहीं करै तो ताको व्रत ज्ञान सब क्षीण होइ, जैसे कच्चे घडाको जल क्षणक्षणमें क्षीण होय है ॥ ४३ ॥

तस्मान्मनोवचःप्राणान्नियच्छेन्मत्परायणः ॥ मद्भ-
क्तियुक्तया बुद्ध्या ततः परिसमाप्यते ॥ ४४ ॥ इति
श्रीमद्भागवते एकादशस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः।

उद्धव उवाच ॥ यस्त्वयाभिहितः पूर्वं धर्मस्त्वद्भक्ति-
लक्षणः ॥ वर्णाश्रमाचारवतां सर्वेषां द्विपदामपि ॥१॥
यथाऽनुष्ठीयमानेन त्वयि भक्तिर्नृणां भवेत् ॥ स्वध-
र्मेणारविन्दाक्ष तत्समाख्यातुमर्हसि ॥२॥ पुरा किल
महाबाहो धर्मं परमकं प्रभो ॥ यत्तेन हंसरूपेण ब्रह्म-
णोऽभ्यात्थ माधव ॥ ३ ॥

तातें वचन मन प्राणकों जीते मेरे विषे तत्पर होई, बुद्धि मेरे विषें युक्तकरे तब कृतकृत्य होइ ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायामेकादशस्कन्धे
षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

अब सत्रेहं अध्यायमें भक्ति लक्षण स्वधर्म पूछेंगे, तब हंसावतार करिकें ब्रह्मचारी और गृहस्थीनके धर्म कहेंगे ॥ १ ॥ उद्धवजी पूछैहैं हे कमलदललोचन ! भक्ति लक्षण धर्म तुमने कह्यो पहिले तो स्वधर्म वर्णाश्रम आचारवंतनको और आचाररहित मनुष्यनको स्वधर्म करते जैसे तुम्हारे विषे भक्ति होइ सिद्धि होइ सो प्रकार मोसों तुम कहो ॥ १ ॥ २ ॥ हे प्रभो ! हे महाभुज ! हे श्रीमाधव ! पहिले तुमने जो धर्म हंसरूप करि ब्रह्मासो कह्यो सो परम सुखरूपधर्म निश्चय करिके मोसों कहो ॥ ३ ॥

स इदानीं सुमहता कालेनामित्रकर्शन ॥ न प्रायो भविता मर्त्यलोके प्रागनुशासितः ॥ ४ ॥ वक्ता कर्ताऽविता नान्यो धर्मस्याच्युत ते भुवि ॥ सभायामपि वैरिञ्च्यां यत्र मूर्तिधराः कलाः ॥ ५ ॥ कर्त्राऽवित्रा प्रवक्त्रा च भवता मधुसूदन ॥ त्यक्ते महीतले देव विनष्टं कः प्रवक्ष्यति ॥ ६॥ तत्त्वं नः सर्वधर्मज्ञ धर्मस्त्वद्भक्तिलक्षणः ॥ यथा यस्य विधीयेत तथा वर्णय मे प्रभो ॥७॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं स भृत्यमुख्येन पृष्टः स भगवान् हरिः ॥ प्रीतः क्षेमाय मर्त्यानां धर्मानाह सनातनान् ॥ ८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ धर्म्य एष तव प्रश्नो नैश्रेयसकरो नृणाम् ॥ वर्णाश्रमाचारवतां तमुद्धव निबोध मे ॥ ९ ॥

हे शत्रुनाशक ! बहुधा पहिले सिखायोहू धर्म बहुत कालकरि अब मनुष्य लोकमें नहीं होइगो ॥ ४ ॥ या धर्मको वक्ता कर्त्ता रक्षक तुम बिना और दूसरो भूमि विषे नहीं हैं, हे अच्युत ! हे प्रभो ! ब्रह्माहूकी सभामें तुम बिना और नहीं जहां मूर्तिवंत वेदादिक है ॥ ५ ॥ हे मधुसूदन ! सब धर्मके कार्यकर्त्ता सब धर्मके वक्ता रक्षक जब तुम या पृथिवीको छोडोंगे, तब नष्ट भये धर्मको कौन कहैगो ॥ ६ ॥ सो सब धर्मके ज्ञाता तुम हो, ताते हे प्रभो ! तुम्हारी भक्ति जा प्रकारकरे सो धर्म जैसे जाको कर्त्तव्य है तैसे मोको कहो ॥ ७ ॥ शुकदेवजी राजा परीक्षितसो कहैं हैं हे राजन् ! या प्रकार भक्तनमें मुख्य उद्धवजीके पूछेते हरि अतिसंतुष्ट होइ मनुष्यनको मरण धर्म दूरि करवेवारो सनातन धर्म कहत भये ॥ ८ ॥ भगवान् बोले हे उद्धव ! यह तुम्हारो

आदौ कृतयुगे वर्णो नृणां हंस इति स्मृतः ॥ कृतकृ-
त्याः प्रजा जात्या तस्मात्कृतयुगं विदुः ॥ १० ॥
वेदः प्रणव एवाग्रे धर्मोऽहं वृषरूपधृक् ॥ उपासते
तपोनिष्ठा हंसं मां मुक्तकिल्बिषाः ॥ ११ ॥ त्रेतामुखे
महाभाग प्राणान्मे हृदयात्त्रयी ॥ विद्या प्रादुरभूत्त-
स्या अहमासं त्रिवृन्मखः ॥ १२ ॥ विप्रक्षात्रियविट्-
छूद्रा मुखबाहूरुपादजाः ॥ वैराजात्पुरुषाज्जाता य
आत्माचारलक्षणाः ॥ १३ ॥ गृहाश्रमो जघनतो ब्र-
ह्मचर्यं हृदो मम ॥ वृक्षःस्थानाद्वनेवासो न्यासः शी-
र्षणि संस्थितः ॥ १४ ॥

प्रश्न धर्मरूप है, वर्णाश्रमनके आचारवंत पुरुषनको भक्ति आनं-दकारी है, ताको मोते सुनो ॥ ९ ॥ पहिले सतयुगमें मनुष्यनको वर्ण हंसरूपहो, तब प्रजा सब जन्मही करिके कृतकृत्य ही ताते कृतयुग नाम भयो, और कर्महू कछु कर्त्तव्यहो सो कहे है ॥१० ॥ तासमय प्रणव ओंकारही वेद हो, चारचो पाइनसो धर्म वृषभरूप धरे में हो, ये यज्ञादिक कर्म नहीं हे, एक तपस्याही ही सो इंद्रि-यनको स्थिरकरि एकाग्रचित्त करिके हंसरूप शुद्ध मेरो ध्यान करते है ॥ ११ ॥ हे महाभाग ! जब त्रेतायुग भयो तब विराट् मेरे प्राणतें और हृदयते वेदत्रयी विद्या प्रगट भई, ताते होता अध्वर्यु उद्गाता सहित त्रिरूप यज्ञ प्रगट भयो, सो यज्ञ मेरो रूप है ॥ १२ ॥ ब्राह्मण क्षत्री वैश्य शूद्र ये चारों वर्ण विराट्स्वरूपके मुख बाहु जंघा चरणते प्रगट भये, और जो जाको स्वधर्म हो सो प्रगट भयो ॥ १३ ॥ गृहस्थको आश्रम जंघाते प्रगट भयो ब्रह्मचर्य्यको धर्म हृदयते भयो, वानप्रस्थ वक्षःस्थलतें भयो, संन्यास मस्तकतें प्रकट भयो ॥ १४ ॥

वर्णानामाश्रमाणां च जन्मभूम्यनुसारिणीः ॥ आ-
सन्प्रकृतयो नृणां नीचैर्नीचोत्तमोत्तमैः ॥ १५ ॥ शमो
दमस्तपः शौचं संतोषः क्षान्तिरार्जवम् ॥ मद्भक्तिश्च
दया सत्यं ब्रह्मप्रकृतयस्त्विमाः ॥ १६ ॥ तेजो बलं
धृतिः शौर्यं तितिक्षौदार्यं उद्यमः ॥ स्थैर्यं ब्रह्मण्यतै-
श्वर्यं क्षत्रप्रकृतयस्त्विमाः ॥ १७ ॥ आस्तिक्यं दान-
निष्ठा च अदम्भो ब्रह्मसेवनम् ॥ अतुष्टिरर्थोपचयैर्वै-
श्यप्रकृतयस्त्विमाः ॥ १८ ॥ शुश्रूषणं द्विजगवां दे-
वानां चाप्यमायया ॥ तत्र लब्धेन संतोषः शूद्रप्रकृ-
तयस्त्विमाः ॥ १९ ॥ अशौचमनृतं स्तेयं नास्तिक्यं
शुष्कविग्रहः ॥ कामः क्रोधश्च तर्षश्च स्वभावोऽन्ते-
वसायिनाम् ॥ २० ॥ अहिंसा सत्यमस्तेयमकामक्रोध-
लोभता ॥ भूतप्रियहितेहा च धर्मोऽयं सार्ववर्णिकः ॥ २१ ॥

और सब वर्ण आश्रमके स्वभाव न्यारे न्यारे भये जिननें नीच भूमिमें जन्म पायो ताको नीच स्वभाव भयो जिनने उत्तम भूमिमें जन्म पायो ताको उत्तम स्वभाव भयो ॥ १५ ॥ शम दम तप शौच संतोष क्षमा शुद्धभाव मेरी भक्ति दया सत्य ये सब ब्राह्मणको स्वभाव है ॥ १६ ॥ तेज बल धैर्य्य शौर्य्य क्षमा उदारता उद्यम स्थैर्य ब्रह्मण्यता ऐश्वर्य यह क्षत्रियको स्वभाव है ॥ १७ ॥ आस्तिकता दान निर्दंभ ब्राह्मणकी सेवा द्रव्यसंग्रहमें अतृप्ति यह वैश्यको स्वभाव है ॥ १८ ॥ गऊनकी ब्राह्मणनकी देवतानकी सेवा निष्कपट करे, तातें जो पावें ताहीमें संतोष राखे यह शूद्रको स्वभाव है ॥ १९ ॥ अशौच मिथ्यावाणी चोरी नास्तिकता वृथा कलह काम क्रोध तृष्णा ये सब नीच जातिके स्वभाव हैं ॥ २० ॥ हिंसा न करे सत्य बोले चोरी न करे

द्वितीयं प्राप्यानुपूर्व्याज्जन्मोपनयनं द्विजः ॥ वस-
न्गुरुकुले दान्तो ब्रह्माधीयीत चाऽऽहुतः ॥ २२ ॥ मे-
खलाजिनदण्डाक्षब्रह्मसूत्रकमण्डलून् ॥ जटिलोऽ-
धौतदद्वासोऽरक्तपीठः कुशान्दधत् ॥ २३ ॥ स्नान-
भोजनहोमेषु जपोच्चारे च वाग्यतः ॥ न च्छिन्द्या-
न्नखरोमाणि कक्षोपस्थगतान्यपि ॥ २४ ॥ रेतो ना-
वकिरेज्जातु ब्रह्मव्रतधरः स्वयम् ॥ अवकीर्णेऽवगा-
ह्याऽप्सु यतासुस्त्रिपदीं जपेत् ॥ २५ ॥ अग्न्यर्काचा-
र्यगोविप्रगुरुवृद्धसुराञ्छुचिः ॥ समाहित उपासीत
संध्ये च यतवाग्जपन् ॥ २६ ॥

काम क्रोध लोभी न होइ सबनको भलो चाहै यह सब जातिनको धर्म है ॥ २१ ॥ अब पहिलें आश्रमधर्म कहै हैं, तहां ब्रह्मचारी धर्म कहै हैं, ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यके गर्भतें ले सब संस्कार भये होय पीछें दूसरो जन्म गायत्री उपदेश होइ ता पीछें गुरुनके घर जाइ बसे, इंद्रियनकों दम करे जब गुरु बुलावै तब वेद पढै ॥ २२ ॥ मेखला मृगचर्म दंड रुद्राक्षमाला यज्ञोपवीत कमंडलु जटा सब धारे रहै, तैलस्नान न करे दंतधावन न करे वस्त्र क्षारसों न धोवे कुशनको धरे अरक्त आसन धरे॥ २३॥ स्नान भोजन होम जप मूत्र पुरीष जब करे तब मौन रहे नख रोम और क्षौरकर्म न करावे और कांखके उपस्थके रोम दूरि न करावे ॥ २४ ॥ वीर्यस्खलन न करे आपु ब्रह्मचर्यको धरेरहै, जो प्रमादतें स्वप्नमें वीर्य स्खलित भयो होइ तो जलविषें स्नान करिकैं प्राणायाम करि गायत्रीको जप करे ॥ २५ ॥ अग्नि सूर्य आचार्य गो विप्र गुरु वृद्ध देवतानको पवित्र और एकाग्रचित्तकरि उपासना करे और यतवाक् होके जप करे ॥ २६ ॥

आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित् ॥ न
मर्त्यबुद्ध्याऽसूयेत सर्वदेवमयो गुरुः ॥ २७ ॥ सायं
प्रातरुपानीय भैक्ष्यं तस्मै निवेदयेत् ॥ यच्चान्यद-
प्यनुज्ञातमुपयुञ्जीत संयतः ॥२८॥ शुश्रूषमाण आ-
चार्यं सदोपासीत नीचवत् ॥ यानशय्यासनस्थानै-
र्नातिदूरे कृताञ्जलिः ॥ २९ ॥ एवंवृत्तो गुरुकुले वसे-
द्भोगविवर्जितः ॥ विद्या समाप्यते यावद्बिभ्रद्व्रतमख-
ण्डितम् ॥ ३० ॥ यद्यसौ छन्दसां लोकमारोक्ष्यन्
ब्रह्मविष्टपम् ॥ गुरवे विन्यसेद्देहं स्वाध्यायार्थं बृह-
द्व्रतः ॥ ३१ ॥

गुरुनको मनुष्यबुद्धिकरिके न सेवे, मेरो रूप जानिके सेवन करे, कबहूं अवज्ञा न करे, क्यों कि संपूर्ण देवता गुरुनमें वसैहैं ॥ २७ ॥ सांझ सबेरे भिक्षा लेआवे, सो गुरुके आगे धरे औरहू जो पावे सो सब गुरुनको समर्पे, गुरुकी आज्ञा होय तो संयमकरि भोजनकरे ॥ २८ ॥ जब गुरु कहूं चले तब संग चले जब सोमें तब पांव दाबे, जब बैठे तब सावधान अंजलि जोरि बहुत दूरि न बैठै आचार्यकी शुश्रूषा करे, अच्छी भांति सदा उपासना करे ॥ २९ ॥ या प्रकार गुरुकुलमें वसे विषयभोगरहित होइ, जब विद्या पूर्ण होइ तहां ताईं अखंडित व्रतधारे रहे ॥ ३० ॥ यह तो ब्रह्मचारीके आश्रमको सामान्य धर्म कह्यो अब जो ब्रह्मलोककी जाइवेकी इच्छा करे, सो मेरी निष्ठासों ब्रह्मचर्य्य व्रत करे सो कहे हैं जो यह ब्रह्मचारी जहां मूर्ति धरें वेद रहेहैं ऐसें ब्रह्मलोकमें गयो चाहे तौ गुरुनहीके पास रहे वेदाध्ययन करे निष्काम ब्रह्मचर्य्य व्रत धरें अपनी देह गुरुनको समर्पे ॥ ३१ ॥

अग्नौ गुरावात्मनि च सर्वभूतेषु मां परम् ॥ अपृथग्धीरुपासीत ब्रह्मवर्चस्व्यकल्मषः ॥ ३२ ॥ स्त्रीणां निरीक्षणस्पर्शसंलापक्ष्वेलनादिकम् ॥ प्राणिनो मिथुनीभूता न गृहस्थोऽग्रतस्त्यजेत् ॥ ३३ ॥ शौचमाचमनं स्नानं संध्योपासनमार्जवम् ॥ तीर्थसेवा जपोऽस्पृश्याऽभक्ष्याऽसंभाष्यवर्जनम् ॥ ३४ ॥ सर्वाश्रमप्रयुक्तोऽयं नियमः कुलनन्दन ॥ मद्भावः सर्वभूतेषु मनोवाक्कायसंयमः ॥ ३५ ॥ एवं बृहद्व्रतधरो ब्राह्मणोऽग्निरिव ज्वलन् ॥ मद्भक्तस्तीव्रतपसा दग्धकर्माशयोऽमलः ॥ ३६॥ अथानन्तरमावेक्ष्यन्यथा जिज्ञासितागमः ॥ गुरवे दक्षिणां दत्त्वा स्नायाद् गुर्वनुमोदितः ॥ ३७ ॥

पूजाके स्थल कहेहैं अग्नि गुरु आत्मा सब प्राणिमात्रमें मेरी बुद्धि राखे मोते न्यारे करी न जाने ऐसी भांति ब्रह्मतेजयुक्त निष्पाप मेरी उपासना करे ॥ ३२ ॥ स्त्रीनको दर्शन, विनसो भाषण, परिहास न करे, जो कोई स्त्री पुरुष एकत्र संयुक्त व्हैके बैठे होंय तिनको न देखे, आपु गृहमें न रहे ॥३३॥ ये धर्म सब आश्रमनको करणोहै, शौच माटी करि हाथ पाउ धोवे, आचमन करे, स्नान, संध्या, शुद्धभाव तीर्थसेवन, तप भिक्षा करे पर स्पर्श काहूको न करे, जे असंभाष्य हैं तिन नीचनको त्याग करे ॥ ३४ ॥ हे कुलनंदन ! सब प्राणिमात्रमें मेरो भाव राखे, मन वचन इंद्रियनको संयुक्त करे, यह नेम सब आश्रमनको है ॥ ३५ ॥ ऐसी भांति जो व्रत राखे सो अग्निकी भांति तेजस्वी होइ, सब कर्म दग्धकरि निर्मल होइ मेरो भक्त होइ ॥ ३६ ॥ यह निष्काम ब्रह्मचारीको मोक्षको प्रकार कह्यो

गृहं वनं वोपविशेत् प्रव्रजेद्वा द्विजोत्तमः ॥ आश्रमादाश्रमं गच्छेन्नान्यथा मत्परश्चरेत् ॥ ३८ ॥ गृहार्थी सदृशीं भार्यामुद्वहेदजुगुप्सिताम् ॥ यवीयसीं तु वयसा यां सवर्णामनुक्रमात् ॥ ३९ ॥ इज्याध्ययनदानानि सर्वेषां च द्विजन्मनाम् ॥ प्रतिग्रहोऽध्यापनं च ब्राह्मणस्यैव याजनम् ॥ ४० ॥ प्रतिग्रहं मन्यमानस्तपस्तेजोयशोनुदम् ॥ अन्याभ्यामेव जीवेत शिलैर्वा दोषदृक्तयोः ॥ ४१ ॥

जो सकाम होइ सो वेदार्थ विचारिकैं ब्रह्मचर्य छोडी गृहस्थके आश्रममें आयो चाहे तव गुरुकों दक्षिणा दे आज्ञा लेय तव अभ्यंगादिक करिकैं मेखला दंड मौंजी छोडे (या कर्मको नाम समावर्त्तन कहै है) ॥ ३७ ॥ तहां दोऊ पक्ष कहै है जो विवाहकी इच्छा होय तौ गृहस्थ है जाय निष्काम होइ तौ वानप्रस्थ आश्रम लेय, अथवा संन्यास लेइ आश्रमते आश्रममें जाइ आश्रम विना न रहै ब्राह्मणमें श्रेष्ठ वा आश्रममें मेरी भक्ति करतो भयो विचरै पिछले आश्रमसौ पूर्वमें न आवे अर्थात् संन्यासी गृहस्थी न हो ॥ ३८ ॥ जो गृहस्थ भयो चाहे सो समावर्त्तनकर्म करि विवाह करे गृहस्थी होइ लक्षणवंत अपने कुल समान कुलकी कन्या विवाहै, प्रथम तो अपने वर्णकी व्याहे पीछे औरहू कियो चाहे तो अनुक्रमते और व्याहे ॥ ३९ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ये तीनि धर्म समान है, यज्ञ अध्ययन दान ये तीनों वर्णको समान है, परि प्रतिग्रह अध्यापन यज्ञ करामनो ये तीनों कर्म ब्राह्मणकोही करने उचित है ॥ ४० ॥ तहांऊ विशेषता ब्राह्मणनको कहै है प्रतिग्रह लेवेमें जप यज्ञ तप तेज यशको नाश जाने और कृपणता आदि दोष देखे तव स्वामीते छोडे खेतमें परे कनसो

ब्राह्मणस्य हि देहोऽयं क्षुद्रकामाय नेष्यते ॥ कृच्छ्रा-
य तपसे चेह प्रेत्यानन्तसुखाय च ॥ ४२ ॥ शिलो-
ञ्छवृत्त्या परितुष्टचेता धर्मं महान्तं विरजं जुषाणः ॥
मय्यर्पितात्मा गृह एव तिष्ठन्नातिप्रसक्तः समुपैति
शान्तिम् ॥ ४३॥ समुद्धरन्ति ये विप्रं सीदन्तं मत्परा-
यणम्॥ तानुद्धरिष्ये न चिरादापद्भ्यो नौरिवार्णवात्
॥ ४४ ॥ सर्वाः समुद्धरेद्राजा पितेव व्यसनात्प्रजाः ॥
आत्मानमात्मना धीरो यथा गजपतिर्गजान् ॥ ४५ ॥

आजीविका करे, अथवा और करिके आजीविका करै, यज्ञ करे करावे, अथवा पढावे ये दो वृत्ति करै जो इनहूमें हीनता दोष देखे तो ऊंछवृत्तिही करे ॥४१॥ ब्राह्मणको यह देह निश्चयकरिकैं तपस्याके कष्ट सहनको रच्यो है,क्षुद्र कामको न करे तो परलोकमें अनंत सुख ब्राह्मणको प्राप्त होय है ॥ ४२ ॥ जो हाटमें अथवा क्षेत्रनमें अन्न पऱ्यो रहै, ताको वीनि लेकैं निर्वाह करे, ताहीकरि संतोष माने उत्तम निष्काम धर्म करे मेरे विषें चित्त राखे घरमें तो रहे पर कछु आसक्त न होइ, या प्रकार शांतिको पावे ॥ ४३ ॥ दारिद्रीको यह निर्वाह प्रकार कह्यो जो सद्रव्य है ताको प्रकार कहे है, जो ब्राह्मण दारिद्री होइ मेरी भक्ति विषे तत्पर होइ ताकों जे आपदाते उद्धार करें हे उद्धव ! तिन मनुष्यनको मैं थोरेही कालमें उद्धार करूंगो जैसें समुद्रमें बूडनेकों नाव पार लगावैहै, तैसें वे मनुष्य वा ब्राह्मणको निर्वाह करै है मैं संसाररूपी समुद्रते विन मनुष्यनकूं निश्चय पार करूंगो ॥ ४४ ॥ राजा होइ सो सब प्रजाको दुःखते उद्धार करे जैसे पिता पुत्रको कष्टसे छुडावे है जैसे कीचडमें पडें हाथीको हाथी निकालेहै ऐसेंही धीर पुरुष राजाको विपत्तिनसैं अपनी आप रक्षा करनी

एवंविधो नरपतिर्विमानेनार्कवर्चसा ॥ विधूयेहाशुभं कृत्स्नमिन्द्रेण सह मोदते ॥ ४६ ॥ सीदन्विप्रो वणिग्वृत्त्या पण्यैरेवापदं तरेत् ॥ खड्गेन वाऽऽपदाक्रान्तो न श्ववृत्त्या कथंचन ॥ ४७ ॥ वैश्यवृत्त्या तु राजन्यो जीवेन्मृगययाऽऽपदि ॥ चरेद्वा विप्ररूपेण न श्ववृत्त्या कथंचन ॥ ४८॥ शूद्रवृत्तिं भजेद्वैश्यः शूद्रः कारुकटाक्रियाम् ॥ कृच्छ्रान्मुक्तो न गर्ह्येण वृत्तिं लिप्सेत कर्मणा॥४९॥वेदाध्यायस्वधास्वाहाबल्यन्नाद्यैर्यथोदयन् ॥ देवर्षिपितृभूतानि मद्रूपाण्यन्वहं यजेत् ॥५०॥

उचित है ॥ ४५ ॥ या प्रकार राजा या लोकमें सब पाप दूरि करि सूर्य्यसम प्रकाशित विमानमें इंद्रके संग आनंद करे है ॥ ४६ ॥ यदि ब्राह्मण दरिद्रसों दुःख पावता होइ सो वाणिज्य वृत्तिकरि आपदाकों तरे, पर मदिरा और रसादिक न बेचे, तहांऊं जो निर्वाह न होइ तो क्षत्रिय वृत्ति करे, परंतु नीच सेवाकी वृत्ति कबहुं न करे, यह ब्राह्मणको धर्म कह्यो ॥ ४७॥ अब क्षत्रियको धर्म कहै हैं जो आपत्ति होइ तो वैश्यवृत्ति करि जीवे, कै मृगया करिकैं जीवे, वा ब्राह्मणको रूपकरि अध्यापन करि जीविका करे, पर नीच सेवन न करे ॥४८॥ वैश्यकूं जो आपदा होय तो शूद्रकी वृत्ति करैं तामेंऊ आपदा होवे तो कारीगरीक्रिया करि जीवे, जब अपनी आपदा निवृत्ति होइतब नीच वृत्ति छोडिदेइ ॥ ४९ ॥ या प्रकार सबनकी वृत्ति कही फेरि गृहस्थकों अवश्यक पंचयज्ञ कर्तव्य कहैहैं ब्रह्मयज्ञ करिकै तो ऋषिनको संतुष्ट करे,श्राद्धमें स्वधाकरि पितृयज्ञ करे, होममें स्वाहाकरिकैं देवतानको यज्ञ करे, बलिदानकरि भूतयज्ञ करे, अन्न जलसों मनुष्यनकों तृप्त करे, यथाशक्ति करे, सबनमें मेरी बुद्धि राखे, ये कर्म सब

यदृच्छयोपपन्नेन शुक्लेनोपार्जितेन वा ॥ धनेनाऽपी-
डयन्भृत्यान्न्यायेनैवाहरेत्क्रतून् ॥ ५१ ॥ कुटुम्बेषु न
सज्जेत न प्रमाद्येत्कुटुम्ब्यपि ॥ विपश्चिन्नश्वरं पश्ये-
ददृष्टमपि दृष्टवत् ॥ ५२ ॥ पुत्रदाराप्तबन्धूनां संगमः
पान्थसंगमः ॥ अनुदेहं वियन्त्येते स्वप्नो निद्रानुगो
यथा ॥५३॥ इत्थं परिमृशन्मुक्तो गृहेष्वतिथिवद्वस-
न् ॥ न गृहैरनुबध्येत निर्ममो निरहंकृतः ॥५४ ॥ क-
र्मभिर्गृहमेधीयैरिष्ट्वा मामेव भक्तिमान् ॥ तिष्ठेद्वनं
वोपविशेत्प्रजावान्वा परिव्रजेत् ॥ ५५ ॥ यस्त्वासक्त-
मतिर्गेहे पुत्रवित्तैषणातुरः ॥ स्त्रैणः कृपणधीर्मूढो
ममाहमिति बध्यते ॥ ५६ ॥

अवश्य कर्त्तव्य हैं ॥५०॥ शक्तिके अनुसार कर्तव्यकर्म कहै हैं विना उद्यम अथवा उद्यमते पायो होइ, शुद्ध होइ वा धनकरके जैसे कुटुंबकों पीडा न होइ तैसें न्याय करि यज्ञनकों करै ॥ ५१ ॥ कुटुंबमें आसक्त न होइ, तऊ मेरे भजनमें सावधान रहै, या संसार प्रपंचकों मिथ्या जाने स्वर्गहूकों मिथ्या जाने आत्माहीकों एक सत्य करि जाने ॥ ५२ ॥ पुत्र स्त्री कुटुंबी बंधुको संग यात्रा करनवारेनके संगकी समान है जेसें निद्रामें स्वप्न देखेहै जागेते नष्ट होय है तैसे देहके नष्ट हैवेपै यह सब चले जाय हैं ॥ ५३ ॥ या प्रकार गृहमें विचारते अतिथिकी भांति रहै, यह मेरो घर है ऐसो अहंकार न राखे अहंता ममता छोडे तौ न बंधे ॥ ५४ ॥ गृहस्थके जो कर्म कहेहैं तिन करिके मेरी पूजा करे मेरे विषें भक्ति करे, और गृहस्थाश्रममें रहे पीछे वानप्रस्थ ह्वैकें जो संतान हो तौ संन्यास लेइ ॥ ५५ ॥ जे केवल गृहमेंई आसक्त हैं, पुत्र वित्तमें प्रीतिकर स्त्रीके वश हैं, महादीन हैं, मूर्ख हैं

अहो मे पितरौ वृद्धौ भार्या बालात्मजात्मजाः॥ अ-
नाथा मामृते दीनाः कथं जीवन्ति दुःखिताः ॥५७॥
एवं गृहाशयाक्षिप्तहृदयो मूढधीरयम् ॥ अतृप्तस्ता-
ननुध्यायन्मृतोऽन्धं विशते तमः ॥५८॥ इति श्रीभा-
गवते महा० एकादशस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अथ अष्टादशोऽध्यायः ।

श्रीभगवानुवाच ॥ वनं विविक्षुः पुत्रेषु भार्यां न्यस्य
सहैव वा॥वन एव वसेच्छान्तस्तृतीयं भागमायुषः १॥

सो अहंता ममतासौं बंधे है ॥ ५६॥ मेरी माता मेरो पिता वृद्ध है स्त्री छोटी है बालक छोटे हैं ये मोविना कैसे जीवेंगे दीन अनाथ दुःखी होइगे या प्रकार जो शोचैहैं ॥ ५७ ॥ सो ऐसी गृहकी आशा करिकैं विक्षिप्त मन होइ मति बुद्धि मूढ हौवेसौ स्त्री पुत्रनको ध्यान करैहैं सो कवहूं तृप्त न हैकै मरेतें अति तामसी योनिमें परें हैं ॥ ५८ ॥

इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायामेकादशस्कन्धे सप्तद-
शोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अब अठारहें अध्यायमें वानप्रस्थ और संन्यासीके धर्म कहेंगे, जो धर्मको अधिकारी है ताकों और अधिकारीनको विशेष कहेंगे ॥ पहिले वानप्रस्थके धर्म कहें हैं जब आयुर्दाको तीसरो भाग आवे, पचास वर्ष उपरांत पिछत्तरि वर्ष पर्यंत तीसरो भाग है, तब पुत्रनको

१ रे मन क्या अजहूं न विचारै ॥ जीवन जात छिनहिं छिन बीतो ज्ञान हिये नाहिं धारै ॥ काम क्रोध लोभादिक शत्रु क्यों नाहिं इन्हैं विसारै ॥ सुत वित नारि जिहैं जानत नित क्यों अस जन्म विगारै ॥ धर्म भजन हरि काम अन्तमें आवै संकट टारै ॥ नित ज्वालाप्रसाद ध्यान धर विगरी यही सुधारै ॥ १ ॥

कन्दमूलफलैर्वन्यैर्मेध्यैर्वृत्तिं प्रकल्पयेत् ॥ वसीत वल्कलं वासस्तृणपर्णाजिनानि च ॥ २ ॥ केशरोमनखश्मश्रुमलानि बिभृयाद्दतः ॥ न धावेदप्सु मज्जेत त्रिकालं स्थण्डिलेशयः ॥ ३ ॥ ग्रीष्मे तप्येत पञ्चाग्नीन्वर्षास्वासारषाड् जले ॥ आकण्ठमग्नः शिशिर एवंवृत्तस्तपश्चरेत् ॥ ४ ॥ अग्निपक्वं समश्नीयात्कालपक्वमथापि वा ॥ उलूखलाश्मकुट्टो वा दन्तोलूखल एव वा ॥ ५ ॥ स्वयं संचिनुयात्सर्वमात्मनो वृत्तिकारणम् ॥ देशकालबलाभिज्ञो नाददीताऽन्यदाऽऽहृतम् ॥ ६ ॥ वन्यैश्चरुपुरोडाशैर्निर्वपेत् कालचोदितान् ॥ न तु श्रौतेन पशुना मां यजेत वनाश्रमी ॥ ७ ॥

घर सौंपिके वनमें जाइरहे, स्त्री अपने संग आवे तो वनमें राखे नहीं तो पुत्रके पास रहे वनमें शांत होइ रहे ॥ १ ॥ वनमें कंद मूल फलनसों आत्माको जीवन करे वल्कलवस्त्र पहिरे, तृण और पत्ता मृगचर्मकों पहिरे, ये सब वनकी वस्तु अति पवित्र है ॥ २ ॥ केश रोम नख डाढी मूछ दूरि न करावे, इनको धोवेहू नहीं, और दंतनको न धोवे जलमें तीन काल स्नान करै भूमिमें शयन करे ॥ ३ ॥ ग्रीष्मऋतुमें पंचाग्नि साधे, वर्षामें जलवृष्टि सहै, जाडेमें कंठ पर्यंत जलमें मग्न रहे, याप्रकार तप करै ॥ ४ ॥ अग्निसे पक्व होइ सो खाइ, समय करिकैं पक्वफलादि खाइ, ओखरीमें कूटीहोइ पत्थरसों कूटी होइ सो खाइ दांतसों कूटी वस्तु खाइ ॥ ५ ॥ अपनी सबआजीविकाकी वस्तु आपु लेआवे, दूसरेने काडने लायके दीने फलादि वस्तुको लेइ नहीं और देशकालको बल देखे पहलो संग्रह न राखे, नयो अन्न पावै तब पुराणो त्याग करे ॥ ६ ॥ वनकी वस्तुके चरु पुरोडाशनकरि देवता-

अग्निहोत्रं च दर्शश्च पूर्णमासश्च पूर्ववत् ॥ चातुर्मास्यानि च मुनेराम्नातानि च नैगमैः ॥८॥ एवं चीर्णेन तपसा मुनिर्धमनिसंततः ॥ मां तपोमयमाराध्य ऋषिलोकादुपैति माम् ॥ ९ ॥ यस्त्वेतत्कृच्छ्रतश्चीर्णं तपो निःश्रेयसं महत् ॥ कामायाल्पीयसे युञ्ज्याद्बालिशः कोऽपरस्ततः ॥ १० ॥ यदाऽसौ नियमेऽकल्पो जरया जातवेपथुः ॥ आत्मन्यग्नीन् समारोप्य मच्चित्तोऽग्निं समाविशेत् ॥ ११ ॥

नको यज्ञ करै, वनमें आश्रम करि रहे, परन्तु वेदोक्तपशुकारि मेरो यजन न करे ॥ ७ ॥ पूर्ववत् नाम गृहस्थाश्रमसरीखे अग्निहोत्र दर्शपूर्णमासेष्टि चातुर्मास्य यज्ञ इतनौही वेदनें वनाश्रमीकूं अनुष्ठान कह्यो है ॥ ८ ॥ याप्रकार तपस्या करके क्लेशसों नाडी मात्र जाके शरीरमें बाकी रही नाम अतिही दुर्बल शरीर जाको है गयौ ऐसे तपोमय मोको आराधन करि प्रथम ऋषिलोकते महर्लोक जाइ, पीछे क्रम करिकै मोको पावेगो ॥९ ॥ इतने कष्टकरि प्राप्त करि मोक्ष फलदायक तपस्या तुच्छकाममें न लगावे, जो लगावे तो वातें मूर्ख कौन है ॥ १० ॥ या प्रकार सर्व धर्म निष्काम करे, तो अत्यंत मोक्ष होइ, आयुर्दाके तीसरे भागमें वैराग्य थोरोसो उपजे तो संन्यास लेइ जो शरीरकी सामर्थ पहलेही घटे तब विरक्त होइरहे, संन्यास लेइ, जो विरक्तहू न होइसके ताको कहा करनो सो कहे हैं जब यह धर्मके नेम करनको असमर्थ होइ वृद्ध अवस्था होइ, तहां अग्निहोत्रकी अग्नि आपमें राखि चित्त मेरे विषें राखे अग्निमें प्रविष्ट होइ शरीर छोडे अर्थात् जब धर्माचरणकी असामर्थ्य होय तब जीवते शरीरको अग्निमें जरायदेय ॥ ११ ॥

यदा कर्मविपाकेषु लोकेषु निरयात्मसु ॥ विरागो जायते सम्यङ्न्यस्ताग्निः प्रव्रजेत्ततः ॥ १२ ॥ इष्ट्वा यथोपदेशं मां दत्त्वा सर्वस्वमृत्विजे ॥ अग्नीन्स्वप्राण आवेश्य निरपेक्षः परिव्रजेत् ॥१३॥ विप्रस्य वै संन्यसतो देवा दारादिरूपिणः ॥ विघ्नान्कुर्वन्त्ययं ह्यस्मानाक्रम्य समियात्परम् ॥ १४ ॥ बिभृयाच्चेन्मुनिर्वासः कौपीनाच्छादनं परम्॥ त्यक्तं न दण्डपात्राभ्यामन्यत्किंचिदनापदि ॥ १५ ॥ दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं पिबेज्जलम् ॥ सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत् ॥ १६ ॥

विरक्तको कृत्य कहे हैं, जो विरक्तहोइ सो कर्मनको फल और देवतानके लोकनको नरक करिजाने, जो जाने कि पूर्णवैराग्य है गयो है तब ये सब अग्निहोत्रादिक कर्म छोडि अच्छी भांति संन्यास लेय ॥ १२ ॥ संन्यासके आरंभके उपदेशके अनुसार मेरो पूजन करे, ऋत्विजनको सर्वस्व देकरि अग्निहोत्रको अपनें प्राण विषें प्रविष्टकरि आपु निरपेक्ष होकें संन्यास लेइ ॥१३॥ ब्राह्मण जब संन्यास लेइ तब देवता स्त्री पुत्र रूप होइ वाको याकारण विघ्न करें हैं कि यह हमारी अवज्ञा करि आगे चल्यो चाहे है तातें विघ्न करें हैं तथापि यह विन विघ्नको लांघिकरि संन्यास लेइ उनके विघ्न न मानें ॥ १४ ॥ अब संन्यास कहैं हैं जो संन्यासी वस्त्र धारचो चाहे तो जितनें सो कौपीन और एक वा कोपीनके ऊपर एक विछाद चौरो वस्त्र ढकै इतनो वस्त्र धरे और कछु न धरे एक दण्ड धरे एक जलपात्र धरे और कछु न राखे ॥ १५ ॥ पृथ्वीमें देखिकरि पाउँ धरे, वस्त्रसों जल छानि पीवे, वचन सत्य बोले, और आचरण मनमें विचारि शुद्ध मन होइ सब

मौनाऽनीहानिलायामा दण्डा वाग्देहचेतसाम् ॥ न
ह्येते यस्य सन्त्यङ्ग वेणुभिर्न भवेद्यतिः ॥१७॥ भिक्षां
चतुर्षु वर्णेषु विगर्ह्यान्वर्जयंश्चरेत् ॥ सप्तागारानसं-
क्लृप्तांस्तुष्येल्लब्धेन तावता ॥ १८ ॥ बहिर्जलाशयं
गत्वा तत्रोपस्पृश्य वाग्यतः ॥ विभज्य पावितं शेषं
भुञ्जीताऽशेषमाहृतम् ॥१९॥ एकश्चरेन्महीमेतां निः-
सङ्गः संयतेन्द्रियः ॥ आत्मक्रीड आत्मरत आत्म-
वान्समदर्शनः ॥२०॥ विविक्तक्षेमशरणो मद्भावविम-
लाशयः ॥आत्मानं चिन्तयेदेकमभेदेन मया मुनिः२१

करे ॥१६॥ संन्यासीको तीनि दंड कहे हैं ते करे, वचनको दंड मौन रहनो, देहको दंड सकाम कर्म न करे, चित्तको दंड प्राणायामकरि स्थिर करे, हे उद्धव ! जाकें ये दंड नहीं सो बांसके तीन दंडनसो संन्यासी नहीं कहावैहै ॥ १७ ॥ आजीविका करिकें ब्राह्मण प्रतिग्रह याजन अध्ययन शिलौंछ वृत्ति यह चारी वर्ण होयहै तिनके घर भिक्षा करे निंदित होइ ताके घर भिक्षा न करे अर्थात् जबतक उत्तमवर्णकी भिक्षा मिले तबतक निकृष्ट वर्णके घरकी भिक्षा न करै यहां मोकों यह अलभ्य लाभ होइगो या उद्वेगते हित सात घर भिक्षा करे, जो कछु पावें तामें संतोष मानें ॥ १८ ॥ भिक्षा लेके जहां जलाशय होइ तहां जाइ पांइ धोवे आचमन करैं मौन होइ मार्ज्जन करे, मार्गके दोषकी शुद्धि करे पीछे विभाग करी विष्णु ब्रह्मा सूर्य्य भूतनकों समर्पै, थोरो थोरो न्यारो न्यारो करिकें धरे बाकी सब भोजन करे ॥ १९॥ अब एक दूसरी क्रिया औरहू है कि सम्पूर्ण पृथ्वीमें फिरे संग काहूको न करे, जितेंद्रिय रहे, आत्माहीमें संतुष्ट धीर और समदृष्टि होइ ॥ २० ॥ एकांत निर्भयस्थलमें रहे मेरी

अन्वीक्षेतात्मनो बन्धं मोक्षं च ज्ञाननिष्ठया ॥ बन्ध इन्द्रियविक्षेपो मोक्ष एषां च संयमः ॥ २२ ॥ तस्मान्नियम्य षड्वर्गं मद्भावेन चरेन्मुनिः॥ विरक्तः क्षुल्लकामेभ्यो लब्ध्वात्मनि सुखं महत् ॥२३॥ पुरग्रामव्रजान्सार्थान् भिक्षार्थं प्रविशंश्चरेत् ॥ पुण्यदेशसरिच्छैलवनाश्रमवतीं महीम् ॥ २४ ॥ वानप्रस्थाश्रमपदेष्वभीक्ष्णं भैक्ष्यमाचरेत् ॥ संसिध्यत्याश्वसंमोहः शुद्धसत्त्वः शिलान्धसा ॥ २५ ॥ नैतद्वस्तुतया पश्येद्दृश्यमानं विनश्यति॥ आसक्तचित्तो विरमेदिहामुत्र चिकीर्षितात् ॥ २६ ॥

भावना करि चित्त निर्मल राखे, आत्मामें मोमें भेद न देखे, अभेदसों एक आत्मा विचारे, विचारशील होइ ॥ २१ ॥ ज्ञाननिष्ठाकरि अपनें बंध मोक्षको विचार करे (इंद्रियनके विक्षेपको बंध कहे हैं और इन्द्रियनके संयमको मोक्ष कहे हैं) ॥२२ ॥ तातें इंद्रियनको निग्रह करिके मेरे विषे चित्त राखे, तुच्छ कामनानतें विरक्त रहे, तब मुनि अति उत्तम आत्मसुख पाइ सर्वत्र स्वेच्छापूर्वक विचरे ॥ २३ ॥ नगर ग्राम व्रजमें भिक्षाकों जाइ जहां कहूं बहुतसे मनुष्यनको संग आयो होइ जा यात्रीनकों संग हो तहां भिक्षाकों जाइ जे पुण्यदेश नदी पर्वत वन आश्रमहैं तहांपृथ्वीमें फिरे ॥ २४ ॥ वानप्रस्थके आश्रममें जाइ, नित्य भिक्षा करे वाको अन्न शुद्ध है,ताकरि सत्व शुद्ध होइ, तब वेगि सिद्धिकों पावे मोह घटे है॥ २५ ॥ या दृश्यमान प्रपंचको सत्य न जानेक्योंकि दृश्यमान जो है सो सब नाशवान् है यासे उभय लोकके कर्तव्यको त्याग करे वामें चित्तकी आसक्ति न करे ॥ २६ ॥

यदेतदात्मनि जगन्मनोवाक्प्राणसंहतम् ॥ सर्वं मा-
येति तर्केण स्वस्थस्त्यक्त्वा न तत्स्मरेत् ॥२७॥ ज्ञान-
निष्ठो विरक्तो वा मद्भक्तो वाऽनपेक्षकः ॥ सलिङ्गाना-
श्रमांस्त्यक्त्वा चरेदविधिगोचरः ॥२८॥ बुधो बाल-
कवत्क्रीडेत्कुशलो जडवच्चरेत् ॥ वदेदुन्मत्तवद्विद्वा-
न्गोचर्यां नैगमश्चरेत् ॥ २९ ॥ वेदवादरतो न स्यान्न
पाखण्डी न हैतुकः ॥ शुष्कवादविवादेन कंचित्पक्षं
समाश्रयेत् ॥ ३० ॥

जो यह जगत् और शरीर मन वचन प्राणसों युक्त है, अहंता ममताके धर्म यह आत्मा विषे सब मायामात्र है यथार्थ नहीं ऐसें युक्तिनकरि आत्मनिष्ठ होइ फिरि देहादिकको स्मरण न करे स्मरणसे वैराग्यमें प्रतिबंध होयहै ॥ २७ ॥ अब परमहंसधर्म कहै है, एक वैराग्यसौ मुक्तिकी इच्छाराखनवारे पूर्ण ज्ञानी अथवा मुक्तिहू न चाहवेंवारे मेरीदृढ भक्ति करवेवारे भक्त दंडादिककी आवश्यकतावारे आश्रम धर्मनकी आसक्ति त्यागकै जितनौ अपनेसौ है सकै वितनौ आश्रमसंबंधी धर्म कहै अत्यन्त वामें लिप्त न होय ॥ २८ ॥ विवेकी हैवैपैहू बालककी भांति फिरै मान अपमानसौ शून्य रहै अति चतुर हैं परन्तु जडकीसी भांति रहै, फलको अनुसंधान न राखें बुद्धिवान् हैं पर उन्मत्तकीसी भांति बोलै वेदके धर्मनमें निष्ठा है परन्तु कछु आचारको नेम लेय किंतु वृषकी तरह विचरै ॥२९॥ कर्मही करनो यह मुख्य है ऐसें वेदके वादमें आसक्त न होइ, पाषंडी न होई केवल तर्कही सर्वत्र न करे, जहां प्रयोजन विना वाद होइ तहां काऊ पक्षको आश्रय न करै ॥ ३० ॥

नोद्विजेत जनाद्धीरो जनं नोद्वेजयेन्न तु ॥ अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कंचन ॥ देहमुद्दिश्य पशुवद्वैरं कुर्यान्न केन चित् ॥ ३१ ॥ एक एव परो ह्यात्मा भूतेष्वात्मन्यवस्थितः ॥ यथेन्दुरुदपात्रेषु भूतान्येकात्मकानि च ॥३२॥ अलब्ध्वा न विषीदेत काले कालेऽशनं क्वचित् ॥ लब्ध्वा न हृष्येद्धृतिमानुभयं दैवतन्त्रितम् ॥ ३३ ॥ आहारार्थं समीहेत युक्तं तत्प्राणधारणम्॥तत्त्वं विमृश्यते तेन तद्विज्ञाय विमुच्यते ॥ ३४ ॥ यदृच्छयोपपन्नान्नमद्याच्छ्रेष्ठमुतापरम् ॥ तथा वासस्तथा शय्यां प्राप्तं प्राप्तं भजेन्मुनिः॥ ३५॥

यह धीर मनुष्यनको उद्वेग न करे न मनुष्यतें आपु उद्विग्न होई, अपमान काहूको न करे, आपु अपमान सहे, या देहके लियें पशुकी भांति काहूसों न वैर करे॥ ३१ ॥ सबनमें आत्मा एकही है, वैर कौनसों कीजे ऐसे समझिकें निवृत्त होइ, जैसें जलके पात्र अनेक होयहैं, तिनमें अनेक चंद्र प्रतिबिंब देखिये, पर चंद्रमा एकही है, तैसें आत्मा एकही है, अनंतरूप करिकैं भासे है॥ ३२ ॥ और कदाचित् समय समयमें भक्ष न पावे तो खेद न करै पावे तौ हर्ष न करै, धैर्य राखै, प्राप्ति अप्राप्ति दैवाधीन है ॥३३॥ एक केवल आहार मात्रके लिये चेष्टा करै क्योंकि आहार तो अवश्य चाहिये जातें प्राण रहैं प्राणधारणको तौ प्रयोजन यह है जो तत्त्वको विचारै तौ मुक्त होइ ॥ ३४ ॥ ईश्वरइच्छासों जो कछु पावे सोइ भक्षण करे, भलो होइ अथवा बुरो होइ तैसेंही मुनि वस्त्र शय्याजैसी पावे तैसी लेइ ॥३५॥

शौचमाचमनं स्नानं न तु चोदनया चरेत्॥अन्यांश्च
नियमाञ्ज्ञानी यथाऽहं लीलयेश्वरः ॥ ३६ ॥ न हि
तस्य विकल्पाख्या या च मद्वीक्षया हता ॥ आदेहा-
न्तात्क्वचित् ख्यातिस्ततः संपद्यते मया ॥ ३७ ॥ दुः-
खोदर्केषु कामेषु जातनिर्वेद आत्मवान् ॥ अजिज्ञा-
सितमद्धर्मो गुरुं मुनिमुपाव्रजेत् ॥ ३८ ॥ तावत्परि-
चरेद्भक्तः श्रद्धावाननसूयकः ॥ यावद्ब्रह्म विजानी-
यान्मामेव गुरुमादृतः ॥ ३९ ॥ यस्त्वसंयतषड्वर्गः
प्रचण्डेन्द्रियसारथिः ॥ ज्ञानवैराग्यरहितस्त्रिदण्डमु-
पजीवति ॥ ४० ॥

जैसें मोकों कछु न चाहिये और जैसें मैं लीला करिकैं सब धर्म करौ हूं तैसें ज्ञानीहू आसक्ति छोडि शौच आचमन स्नान औरहू नेम करे विधिके वश ह्वैकें न करे ज्ञानदृष्टि राखिकैं करे॥ ३६ ॥ ज्ञानीको भेदकी प्रतीति नहीं होय है जो होय है वह पहलेही मेरे ज्ञानसो नष्ट ह्वै जाय है यद्यपि देह गिरवेतक कभू २ आहारादिकमें भेद प्रतीति देखी जाय है तौहू वह अयथार्थ रूप जानी भई है देहके गिरवेपै मुक्ति ह्वै जाय है ॥३७॥ अब केवल वैराग्ययुक्त होइ ज्ञानकी इच्छा राखे ताकों कर्त्तव्य कहें हैं जो यह गृह पुत्र आदि सबकों दुःखरूप जानिकैं वैराग्ययुक्त होइ, और ज्ञानकी इच्छा करतो होइ, मेरे धर्म कछु जानतो होइ सो उत्तम गुरुकों सेवे ॥ ३८ ॥ तहां ताईं भक्ति करिकैं गुरुनकी सेवा करे, जो श्रद्धायुक्त व्हैके करे जो मोपर कृपा थोरी करें हैं और परपै विशेष कृपा करें है ऐसी मनमें न करे इन धर्मनसों आदरपूर्वक मोसों अभेद जानि गुरुकों भजे, जहां ताइ ब्रह्मज्ञानं अतिशय करिकैं दृढहोइ ॥ ३९ ॥ अब अधिकार विना

सुरानात्मानमात्मस्थं निह्नुते मां च धर्महा ॥ अवि-
पक्ककषायोऽस्मादमुष्माच्च विहीयते ॥ ४१ ॥ भिक्षो-
र्धर्मः शमोऽहिंसा तप ईक्षा वनौकसः ॥ गृहिणो
भूतरक्षेज्या द्विजस्याचार्यसेवनम् ॥ ४२ ॥ ब्रह्मचर्यं
तपः शौचं संतोषो भूतसौहृदम् ॥ गृहस्थस्याप्यृतौ
गन्तुः सर्वेषां मदुपासनम् ॥ ४३ ॥ इति मां यः स्वध-
र्मेण भजन्नित्यमनन्यभाक् ॥ सर्वभूतेषु मद्भावो
मद्भक्तिं विन्दते चिरात् ॥ ४४ ॥

संन्यास लेइ ताकी निंदा करे हैं जो इंद्रियनकों निग्रह न कियो होई बुद्धि अति आसक्त होइ, ज्ञान वैराग्य करि रहित होइ, ऐसो जो संन्यास लेइ तो वह संन्यास जीविकाके अर्थ होइ तातें निंदित है ॥ ४० ॥ वह अधर्मी संन्यासी है, देवतानकी वंचना करी है जो गृहस्थ धर्ममें देवता अतिथि पूजन हो सो छोडिदियो, संन्यास धर्महू नहीं करै है तातें सबनकी अवज्ञाही करै है, ताकी वासना दग्ध नहीं भई और आत्मरूप हृदयमें स्थित मेरीहू वंचना करै है; तातें या लोक परलोकसो नष्ट होयहैं ॥ ४१ ॥ चारोंहू आश्रमनके मुख्य धर्म कहे हैं संन्यासीको मुख्य धर्म शम और अहिंसा है वानप्रस्थको मुख्य धर्म तपस्या और विचार गृहस्थको मुख्य धर्म प्राणिमात्रकी दया रक्षा और देवतानको यज्ञ ब्रह्मचारीको मुख्यधर्म गुरुनकी सेवा ॥ ४२ ॥ तहां गृहस्थको औरहू धर्म कहैं हैं ब्रह्मचर्य तप शौच संतोष प्राणिमात्रसों सुहृदताई और ऋतुके दिन स्त्री संग करे ये गृहस्थके धर्म हैं मेरी सेवा करनी यह सबको धर्म है ॥ ४३ ॥ हे उद्धव ! या प्रकारके स्वधर्म करिकें मेरो नित्य भजन करे अनन्य होइ भजे भाव राखे सो मेरी दृढ भक्ति शीघ्रही पावे ॥ ४४ ॥

भक्त्योद्धवानपायिन्या सर्वलोकमहेश्वरम् ॥ सर्वोत्प-
त्त्यप्ययं ब्रह्म कारणं मोपयाति सः ॥ ४५ ॥ इति
स्वधर्मनिर्णिक्तसत्त्वो निर्ज्ञातमद्गतिः ॥ ज्ञानविज्ञान-
संपन्नो न चिरात्समुपैति माम् ॥४६॥ वर्णाश्रमवतां
धर्म एष आचारलक्षणः ॥ स एव मद्भक्तियुतो निः-
श्रेयसकरः परः ॥ ४७ ॥ एतत्तेऽभिहितं साधो भवा-
न्पृच्छति यच्च माम् ॥ यथा स्वधर्मसंयुक्तो भक्तो
मां समियात्परम् ॥४८॥ इति श्रीभागवते महापुराणे
एकादशस्कन्धेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

हे उद्धव ! ऐसी अव्यभिचारिणी भक्तिकरि सब लोकके महेश्वरको
सबकी उत्पत्ति पालन प्रलयको कारण ब्रह्मरूप मोको प्राप्त हैजायहैं
॥ ४५ ॥ या भांति स्वधर्मकरि शुद्धचित्त हैवेसो मेरो स्वरूप जान-
नेमें आवे है विज्ञान और वैराग्य युक्त हैके शीघ्र मोकूं पावे है ॥४६॥
अब सबको निर्धार तात्पर्य कहें हैं वर्ण आश्रमवंतको यह आचाररूप
धर्मको फल पितृलोककी प्राप्ति करायवेवारो है यही धर्म मेरी भक्ति-
नसो मोकों समर्पण करेगो परम फल मोक्षानंदकों पावे ॥ ४७ ॥
हे साधो ! यह सब धर्म मैंने तुमसों कह्यो जो तुमने मोसो पूछो जो
भक्त स्वधर्म संयुक्त होई करे तो परब्रह्म मोकों प्राप्तहोय है ॥ ४८ ॥
इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायामेकादशस्कन्धे श्रीभगवदुद्धवसं-
वादे अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

अथ एकोनविंशतितमोऽध्यायः ।

श्रीभगवानुवाच॥ यो विद्याश्रुतसंपन्न आत्मवान्नानुमानिकः ॥ मायामात्रमिदं ज्ञात्वा ज्ञानं च मयि संन्यसेत् ॥ १ ॥ ज्ञानिनस्त्वहमेवेष्टः स्वार्थो हेतुश्च संमतः ॥ स्वर्गश्चैवापवर्गश्च नान्योऽर्थो मदृते प्रियः ॥२॥ ज्ञानविज्ञानसंसिद्धाः पदं श्रेष्ठं विदुर्मम ॥ ज्ञानी प्रियतमोऽतो मे ज्ञानेनासौ बिभर्ति माम् ॥ ३ ॥ तपस्तीर्थं जपो दानं पवित्राणीतराणि च ॥ नाऽलं कुर्वन्ति तां सिद्धिं या ज्ञानकलया कृता ॥ ४॥

अब उन्नीसके अध्यायमें विरक्त होई, जाको आत्माको अनुभव होइ, ताकों ज्ञानादि कर्तव्य नहीं यह कहे हैं ॥ जाको विद्या श्रवण करिकै आत्मतत्त्वको अनुभव पर्यंत ज्ञान प्राप्तभयो हैं,सो प्रपंचकी निवृत्तिको साधन मो विषें मायामात्र जानें तो और ज्ञानके साधन सब तजे, ताको विद्वान् संन्यास कहे हैं ॥ १ ॥ ज्ञानीको आत्मरूप मैंही प्रिय हों, वाकें और स्वार्थको हेतु कछु न होइ, परस्वार्थको हेतु मोहिको चाहें तातें स्वर्ग अरु मोक्ष औरहू अर्थ मो विना वाको प्रिय नहीं, तातें वाकों न कछु कर्तव्य है पाइवो है ॥ २ ॥ तहां ज्ञानीको अनुभव प्रमाण बतामें हैं ज्ञान विज्ञान करिकें जे सिद्धिकों प्राप्त भये हैं ते मेरे श्रेष्ठ स्थाननको जानें हैं तातें मोकों ज्ञानी अतिप्रिय है वे ज्ञानही करिकैं मोको हृदयमें धरें हैं ॥ ३ ॥ तप तीर्थ जप दान और पवित्र साधन वा सिद्धिको नहीं करें है जो सिद्धि ज्ञानके लेशकरिकै होय है ॥ ४ ॥

तस्माज्ज्ञानेन सहितं ज्ञात्वा स्वात्मानमुद्धव ॥ ज्ञान-
विज्ञानसंपन्नो भज मां भक्तिभावितः ॥ ५ ॥ ज्ञानवि-
ज्ञानयज्ञेन मामिष्ट्वात्मानमात्मनि ॥ सर्वयज्ञपतिं मां
वै संसिद्धिं मुनयोऽगमन् ॥ ६ ॥ त्वय्युद्धवाश्रयति
यस्त्रिविधो विकारो मायाऽन्तराऽऽपतति नाद्यपवर्ग-
योर्यत् ॥ जन्मादयोऽस्य यदमी तव तस्य किं स्यु-
राद्यन्तयोर्यदसतोऽस्ति तदेव मध्ये ॥ ७ ॥

हे उद्धव ! तातें तुम ज्ञानरूपकों जानि ज्ञान विज्ञान युक्त होइ भक्ति करिकैं मेरो भजन करो ॥५॥ ऐसी भांति मोकों अनेक प्राप्त भये सो कहें हैं ज्ञान विज्ञान यज्ञ करिकैं आप विषें मेरी पूजाकरि समस्त यज्ञनको पति उत्तम स्वरूप मोकों मुनि पावत भये ॥ ६ ॥ तातें तुमहू याही ज्ञानसों धर्ममें प्रवृत्त होउ यह कहैहैं हे उद्धव ! यहजो देह और इंद्रियनको विकार है यह सब माया है कछु परमार्थ वस्तु नहीं है, ये विकार देहते पहिलेहूं आत्माको नहीं हैं, पीछेहू नहीं मध्यमें है सो भ्रम जानिये, आत्मा शुद्ध है, जन्मादिकहू जो देखें जायहै यह देहहीको है कछु आत्माको नहीं है देहको जन्म मरण नहीं, देहहू मायारूप है, देहके आदि अंत जो ब्रह्म हैं सो मध्यमें रहैहैं जब देहही नहीं तब सब ब्रह्म होय हैं, तौ देहके जन्म मरण कहांसे होसक्ते हैं जब यथार्थसों देहकेहू जन्म मरणादिक नहीं सब ब्रह्मरूप है तो ब्रह्म न जन्मे हैं न मरैहै निर्विकार ब्रह्मही है यांमें कहा कहनो ॥ ७ ॥

---

१ अपनी समान और बातोंमें तौ यह पुरुष देखेहै पर आत्माके विचारमें नाय देखै, एक जिमीदार एक गांवके जिमीदार थे, सो कुछ घरमें खटपट भई तौ एक तोंबा लेकर बाबाजी बनकरचले गये मार्गमें कोई और साधू मिले, तब यह देखकर पूछने लगे क्योंजी तुम दो गांवके जिमीदार दीखोहो कबसे बाबाजी भये,

उद्धव उवाच ॥ ज्ञानं विशुद्धं विपुलं यथैतद्‌ वैराग्य-
विज्ञानयुतं पुराणम् ॥ आख्याहि विश्वेश्वर विश्वमूर्ते
त्वद्भक्तियोगं च महद्विमृग्यम् ॥ ८ ॥ तापत्रयेणाभि-
हतस्य घोरे संतप्यमानस्य भवाध्वनीश ॥ पश्यामि
नान्यच्छरणं तवाङ्घ्रिद्वन्द्वातपत्रादमृताभिवर्षात्
॥ ९ ॥ दष्टं जनं संपतितं बिलेऽस्मिन् कालाहिना क्षु-
द्रसुखोरुतर्षम् ॥ समुद्धरैनं कृपयाऽऽपवर्ग्यैर्वचोभि-
रासिञ्च महानुभाव ॥ १० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥इत्थ-
मेतत्पुरा राजा भीष्मं धर्मभृतां वरम् ॥ अजातशत्रुः
पप्रच्छ सर्वेषां नोऽनुशृण्वताम् ॥ ११ ॥

उद्धवजी विशेषज्ञान पूछेहैं हे विश्वेश्वर ! हे विश्वमूर्ते ! निश्चय जैसे होइ तैसे वैराग्ययुक्त और विज्ञानयुक्त पुरातन विशुद्ध ज्ञान तुम कहो और जाको ब्रह्मादिकहू खोजेंहै ऐसे भक्तियोगको कहो ॥ ८ ॥ हे ईश्वर ! या घोर संसारमार्गमें तीनि संताप करि तप्तभयो मोको तुह्मारे चरणद्वंदरूप छत्रते और शरण नहीं दीखै है यह छत्र केवल छाया नहीं करैहै सब ओरतें अमृत वरसे है ॥ ९ ॥ हे महानुभाव ! कालसर्प करिकैं कट्योहै या संसारकूपमें परयोहै क्षुद्र सुखनमें बहुत तृष्णा है ऐसे या जनकों कृपा करिकैं उद्धार करो और मोक्षकों कहो, ऐसे अपने वचनरूपी अमृतसों सीचो ॥ १० ॥ जब इतनी विनती सुनी तब श्रीकृष्ण कहत भये हे उद्धव! याही भांति पहिले राजायुधिष्ठिर हमारे सबनके सुनत धर्मात्मामें श्रेष्ठ भीष्म पितामहसों पूछतभये ॥ ११ ॥

तब वोह साधू बोले तुमने कैसे जानी, हम दो गांवके जिमीदार हैं तब इन्होंने अपना सब वृत्तान्त सुनाया तब साधूने कही कि यामें तो समानता देखि पर अब आत्मामें क्यों नहीं एकत्व देखते तब यह चुपहो चले गये ॥

निवृत्ते भारते युद्धे सुहृन्निधनविह्वलः ॥ श्रुत्वा धर्मान्
बहून् पश्चान्मोक्षधर्मानपृच्छत ॥ १२ ॥ तानहं तेऽ-
भिधास्यामि देवव्रतमुखाच्छ्रुतान् ॥ ज्ञानवैराग्यवि-
ज्ञानश्रद्धाभक्त्युपबृंहितान् ॥ १३ ॥ नवैकादश पञ्च
त्रीन्भावान्भूतेषु येन वै ॥ ईक्षेताथैकमप्येषु तज्ज्ञानं
मम निश्चितम् ॥ १४ ॥ एतदेव हि विज्ञानं न तथैकेन
येन यत् ॥ स्थित्युत्पत्त्यप्ययान्पश्येद्भावानां त्रिगु-
णात्मनाम् ॥ १५ ॥ आदावन्ते च मध्ये च सृज्या-
त्सृज्यं यदन्वियात् ॥ पुनस्तत्प्रतिसंक्रामे यच्छि-
ष्येत तदेव सत् ॥ १६ ॥

भारत युद्धके निवृत्तभये बंधुवधसौं व्याकुल है राजा युधिष्ठिर पूछ-
तभये ॥१२॥ बहुत धर्मनकों सुन पीछे मोक्षधर्मनकों पूछते भीष्मके
मुखते सुनें धर्म तुमसों कहोंहों, जो ज्ञान विज्ञान वैराग्य श्रद्धा भक्ति
संयुक्त हैं ॥ १३ ॥ तहां प्रथम तौ ज्ञान कहें हैं प्रकृति और पुरुष
और महत्तत्व अहंकार शब्द स्पर्श रूप रस गंध ये नौ तत्त्व भये
और एकादश इंद्रिय पंचमहाभूत तीनि गुण ये अट्ठाईस सब मिलि-
कैं तत्त्व भये वे सब प्राणीनमें व्याप्त हैं ज्ञानकरि देखै और इनहूं
तत्त्वनमें एक परमात्माकों जा ज्ञान करिके व्याप्त देखे सो निश्चय
मेरो ज्ञान है ॥ १४ ॥ जैसे ज्ञानके समय सब पदार्थ देखवेमें आवे
हैं वैसे यह पदार्थ देखनेमें नहीं आवे केवल एक परमब्रह्म देखवेमें
आवे वही ज्ञान विज्ञान कह्यो जायहै और उत्पत्ति प्रलय स्थिति हैं
वैसो पदार्थ त्रिगुणात्मक नाशवान् है ऐसो देखै ॥ १५ ॥ तहां पूछैहैं
जो सब ब्रह्मरूपही है तो जन्मादि क्यों होय हैं उत्पत्ति तथा दूसरे
रूपकी प्राप्तिमें मध्यमें सबकौ आश्रय कारण है वैसौ जो कार्य और

श्रुतिः प्रत्यक्षमैतिह्यमनुमानं चतुष्टयम् ॥प्रमाणेष्वनवस्थानाद् विकल्पात् स विरज्यते ॥ १७॥ कर्मणां परिणामित्वादाविरिञ्चादमङ्गलम् ॥ विपश्चिन्नश्वरं पश्येददृष्टमपि दृष्टवत् ॥ १८॥ भक्तियोगः पुरैवोक्तः प्रीयमाणाय तेऽनघ ॥ पुनश्च कथयिष्यामि मद्भक्तेः कारणं परम् ॥ १९ ॥ श्रद्धाऽमृतकथायां मे शश्वन्मदनुकीर्तनम् ॥ परिनिष्ठा च पूजायां स्तुतिभिः स्तवनं मम ॥ २० ॥

कार्यांतरमें रहे है जो उत्पत्ति विषे व्याप्त होयहैं और इनके प्रलय विषें जो अवशेष रहैहै सो ब्रह्म है याहि देखै ॥ १६ ॥ अब विज्ञान कहिके वैराग्य कहेंहै, वेद, प्रत्यक्ष, परंपराकी प्रसिद्धि और अनुमानसौं यह प्रपंच मिथ्या है अद्वैतही सत्य है जैसे यह दृश्य ब्रह्मसौं भिन्न नहीं है कारण कि ब्रह्मसौं उत्पन्न है जो जासौं उत्पन्न है वह वासौं भिन्न नहीं जैसे मिट्टीसौं बनें घट मृत्तिकासो भिन्न नहीं याप्रकार भ्रमरूप द्वैत जानकै विकल्पसो विरक्त होनौ चाहिये ॥ १७ ॥ कदाचित् स्वर्गादिकमें सुखभोग है तहांकी इच्छा होइ तो विरक्त कैसें होइ तहांकहेंहै ब्रह्मलोक पर्यंत स्वर्गादिकहूको सुख या लोककी भांति जो पंडित है सो दुःखरूप मिथ्या देखै क्यों कि यह विनाशी कर्मनके फल हैं यासौं जिनको नाश नहीं दैखौ ऐसेहू जे स्वर्गादिक है तिने देखे जे ये लोक मनुष्यादि है तिनके समान झूठे देखै ॥ १८ ॥ अब वैराग्य कहिकै भक्ति कहेंहै हे निष्पाप उद्धव! मैंने भक्तियोग पहिलेंहू तुमसो कह्यो,अब फिरि अपनी भक्तिको परम कारण प्रीतियुक्त तुमसों कहों हों ॥१९॥ हे उद्धव! प्रथम अमृतरूप मेरी कथामें श्रद्धा होइ कथाके श्रवणको आदर होइ सुनें पीछे निरंतर मेरो कीर्तन करे ॥ २० ॥

आदरः परिचर्यायां सर्वाङ्गैरभिवन्दनम् ॥ मद्भक्तपू-
जाऽभ्यधिका सर्वभूतेषु मन्मतिः ॥ २१ ॥ मदर्थेष्वङ्ग
चेष्टा च वचसा मद्गुणेरणम् ॥ मय्यर्पणं च मनसः स-
र्वकामविवर्जनम् ॥ २२ ॥ मदर्थेऽर्थपरित्यागो भोग-
स्य च सुखस्य च ॥ इष्टं दत्तं हुतं जप्तं मदर्थं यद्व्रतं
तपः ॥ २३ ॥ एवं धर्मैर्मनुष्याणामुद्धवात्मनिवेदिनाम् ॥
मयि संजायते भक्तिः कोऽन्योऽर्थोऽस्याऽवशिष्यते
॥ २४ ॥ यदात्मन्यर्पितं चित्तं शांतं सत्त्वोपबृंहितम् ॥
धर्मं ज्ञानं सवैराग्यमैश्वर्यं चाभिपद्यते ॥ २५ ॥ यदर्पितं
तद्विकल्पे इन्द्रियैः परिधावति ॥ रजस्वलं चासन्निष्ठं
चित्तं विद्धि विपर्ययम् ॥ २६ ॥

मेरी पूजामें तत्पर होइ सर्वांगकरिके नमस्कार करे आदर करिके मेरे भक्तकी अधिक पूजा करे सब प्राणीमात्रमें मेरी बुद्धि राखे ॥ २१ ॥ लौकिक कार्यनको मेरे निमित्त करे वचन करिकैं मेरे गुणनको कहै मन मेरे रूपहीमें अर्पण करे सब कामनाकों त्यागकरे ॥ २२ ॥ मेरे निमित्त अर्थको त्यागकरे भोग और सुखको त्याग करे विषयभोग न करे यज्ञ दान होम जप तप मेरे लिये करे ॥ २३ ॥ हे उद्धव ! याप्रकार धर्मसहित जो मनुष्य मेरे विषें आत्मा निवेदन करे है, विन मनुष्यनको प्रेमलक्षणा भक्ति उपजे है तब विनको करनो कछु नहीं रहै ॥ २४ ॥ जब शांत सतोगुण करिकें बढ्यो चित्त मो विषें लगायो, तब और सब ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य आपुहीतें प्रगट होय है ॥ २५ ॥ और यही चित्त जब गृहकुटुम्बादिमें आसक्त होयहै तब इंद्रियनके द्वारा विषयनमें भ्रमण करे है जासो अधर्म अज्ञान अनुरक्तता

धर्मो मद्भक्तिकृत् प्रोक्तो ज्ञानं चैकात्म्यदर्शनम् ॥
गुणेष्वसङ्गो वैराग्यमैश्वर्यं चाणिमादयः ॥ २७ ॥
उद्धव उवाच ॥ यमः कतिविधः प्रोक्तो नियमो वाऽरिकर्शन॥ कः शमः को दमः कृष्ण का तितिक्षा धृतिः प्रभो ॥ २८ ॥ किं दानं किं तपः शौर्यं किं सत्यमृतमुच्यते॥ कस्त्यागः किं धनं चेष्टं को यज्ञः का च दक्षिणा ॥ २९ ॥ पुंसः किंस्विद् बलं श्रीमन् भगो लाभश्च केशव॥का विद्या ह्रीः परा का श्रीः किं सुखं दुःखमेव च ॥ ३० ॥ कः पण्डितः कश्च मूर्खः कः पन्था उत्पथश्च कः॥ कः स्वर्गो नरकः कः स्वित् को बन्धुरुत किं गृहम् ॥ ३१ ॥ क आढ्यः को दरिद्रो वा कृपणः कः क ईश्वरः ॥ एतान् प्रश्नान् मम ब्रूहि विपरीतांश्च सत्पते ॥ ३२ ॥

कुभाग्यता प्राप्त होय हैं ॥ २६ ॥ धर्म सोई जो मेरी भक्ति करे, ज्ञान सोई जासों आत्मरूप दीखैं इंद्रियनकें धर्मनमें आसक्त न होनो वैराग्य और अणिमादिककौ होनौ ऐश्वर्य है ॥ २७ ॥ उद्धवजी बोले हे शत्रुनाशक ! हे श्रीकृष्ण ! हे प्रभो ! संयम नेम कितने प्रकारके हैं, शम दम किनको कहते हैं क्षमा धैर्य्य कहाहै ॥ २८ ॥ दान, तप, शौर्य, सत्य, ऋत, त्याग, धन, इष्ट, यज्ञ, दक्षिणा कहा है ॥ २९ ॥ हे श्रीमंत ! पुरुषको बहुत भाग्य लाभ कहा है, परम विद्या कहाहै, लज्जा, श्री, दुःख, सुख कहाहै ॥ ३० ॥ पंडित कौन है, मूर्ख कौन है, मार्ग उन्मार्ग कौन हैं, स्वर्ग नरक कौन, बंधु, गृह कौन ॥३१॥ धनी, दरिद्री कोन, कृपण, ईश्वर कौन हे साधुनके पति ! यह प्रश्न मोसों

श्रीभगवानुवाच ॥ अहिंसा सत्यमस्तेयमसङ्गो ह्री-
रसंचयः॥ आस्तिक्यं ब्रह्मचर्यं च मौनं स्थैर्यं क्षमाऽ-
भयम्॥ ३३॥ शौचं जपस्तपो होमः श्रद्धाऽऽतिथ्यं
मदर्चनम् ॥ तीर्थाटनं परार्थेहा तुष्टिराचार्यसेवनम्
॥ ३४॥ एते यमाः सनियमा उभयोर्द्वादश स्मृताः॥
पुंसामुपासितास्तात यथाकामं दुहन्ति हि॥ ३५॥
शमो मन्निष्ठता बुद्धेर्दम इन्द्रियसंयमः ॥ तितिक्षा
दुःखसंमर्षो जिह्वोपस्थजयो धृतिः॥३६॥दण्डन्यासः
परं दानं कामत्यागस्तपः स्मृतम्॥ स्वभावविजयः
शौर्यं सत्यं च समदर्शनम् ॥ ३७ ॥

कहो ॥ ३२ ॥ श्रीकृष्ण उत्तर देय हैं हे उद्धव ! जीवमात्रकी हिंसा न करे सत्य बोले मनहूं करिकैं पराई वस्तुको न चुरावै आसक्ति कहूं न राखे लज्जा असंचय धर्ममें विश्वास ब्रह्मचर्य्य मौन स्थैर्य क्षमा अभयये बारहू संयम है॥ ३३॥ शौच दो भांतिके हैं अन्तःकरणकी शुद्धि और बाह्यशुद्धि शौच तप जप होम श्रद्धा अतिथि और मेरी पूजा तीर्थयात्रा परोपकार संतोष आचार्यसेवा ये बारह नेम हैं॥३४॥ जो ये संयम नेम नित्य करै तौ जो कछु चाहे सो सब पूर्ण होइहै ॥ ३५ ॥ अब शम दम कहैं है मो विषे बुद्धि स्थिरहोइ सो शम है केवल शांतिही शम नहीं कहावे है इंद्रियनको संयम दम है चोर दुष्टको मारनो दम नहीं, दुःखको सहिवो क्षमा है भार बहुत सहनो क्षमा नहीं, जिह्वा और उपस्थ वेग सहे सो धैर्य उद्वेग मनको न उपजे इतनोई धीजे नहीं ॥ ३६ ॥ प्राणीमात्रसौ द्रोह त्यागनेकों दान कहे हैं धनको त्याग दान नहीं, कामको त्याग तप कहावे है कृच्छ्र चांद्रा-

ऋतं च सूनृता वाणी कविभिः परिकीर्तिता ॥ कर्मस्वसंगमः शौचं त्यागः संन्यास उच्यते ॥ ३८ ॥ धर्म इष्टं धनं नॄणां यज्ञोऽहं भगवत्तमः ॥ दक्षिणा ज्ञानसंदेशः प्राणायामः परं बलम् ॥ ३९ ॥ भगो म ऐश्वरो भावो लाभो मद्भक्तिरुत्तमः ॥ विद्यात्मनि भिदाबाधो जुगुप्सा ह्रीरकर्मसु ॥ ४० ॥ श्रीर्गुणा नैरपेक्ष्याद्या सुखं दुःखसुखात्ययः ॥ दुःखं कामसुखापेक्षा पण्डितो बद्धमोक्षवित् ॥ ४१ ॥ मूर्खो देहाद्यहंबुद्धिः पन्था मन्निगमः स्मृतः ॥ उत्पथश्चित्तविक्षेपः स्वर्गः सत्त्वगुणोदयः ॥ ४२ ॥

यण तप नहीं स्वभावकों जीते सो शूर, पराक्रम शौर्य नहीं, ब्रह्मको दर्शन सत्य है ॥ ३७ ॥ पंडितननें सत्य और प्रिय वाणीको ऋत कह्यो है कर्मनकी अनासक्तिको शौच और त्यागको संन्यास कह्यो हैं॥३८॥ मनुष्यकों श्रेष्ठ धन धर्म है, पशु पुत्रादिक धन नहीं, परमेश्वरही यज्ञ है मेरी बुद्धि करि यज्ञ करै कर्म बुद्धि करि न करे, मेरे ज्ञानको उपदेशही वा यज्ञकी दक्षिणा है सुवर्ण आदि धन दक्षिणा नहीं प्राणायामकरि मनकों वश करे सोई परमबल है॥३९॥ मेरो ऐश्वर्य्य सौभाग्य है, कछु लौकिक संपत्ति सौभाग्य नहीं मेरीभक्ति पावे सोई परमलाभ है धनको लाभ लाभ नहीं, आत्मामें भेदबुद्धि दूरिहोइ सो विद्या है, केवल ज्ञानमात्र विद्या नहीं, कुत्सित कर्मनको त्याग लज्जा है सो लज्जा है केवल लाज लज्जा नहीं ॥ ४० ॥ गुण भले होइ सो शोभा है कछु आभूषण शोभा नहीं दुःखसुखको स्मरणकरे सोई सुख है, भोग सुख नहीं, बंधमोक्षको जानें सो पंडित, केवल शास्त्र पढे होइ सो पंडित नहीं भोग सुखकी इच्छा दुःख है, अग्निदाहादिक दुःख नहीं ॥४१॥ देहादिकमें जाकें अहंकार हैं सो मूर्ख है, जा मार्ग करि मोकों

नरकस्तमउन्नाहो बन्धुर्गुरुरहं सखे॥ गृहं शरीरं मानुष्यं गुणाढ्यो ह्याढ्य उच्यते॥४३॥ दरिद्रो यस्त्वसंतुष्टः कृपणो योऽजितेन्द्रियः॥ गुणेष्वसक्तधीरीशो गुणसङ्गो विपर्ययः॥४४॥ एत उद्धव ते प्रश्नाः सर्वे साधु निरूपिताः॥ किं वर्णितेन बहुना लक्षणं गुणदोषयोः॥ गुणदोषदृशिर्दोषो गुणस्तूभयवर्जितः॥४५॥ इति श्रीमद्भागवत एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवाद एकोनविंशोऽध्यायः॥१९॥

पावे वह उत्तममार्ग है, कांटेनतें रहित सन्मार्ग नहीं, जहां मन चंचल होइ संसारमें फिरि प्रवृत्त होइ सोऊ मार्ग कुत्सित मार्ग कहिये, चोरादिकन करि व्याप्त उत्पथ मार्ग नहीं सत्व गुण अधिक होइ राजस तामस गुण न होइ सोइ स्वर्ग है, इंद्रलोक स्वर्ग नहीं॥४२॥ तमोगुण अधिक होइ सोई नरक है, और नरक नहीं, और बंधु सब बंधु नहीं परमबंधु गुरु है, सोगुरु मैं हौं मनुष्यको शरीर गृह है और घर नहीं जो गुणकरि संपन्न सो धनी और धनी नहीं॥४३॥ जो सदा असंतोष राखे सो दरिद्री है, धनहीन दरिद्री नहीं, जो इंद्रिय जीति न सके सो कृपण है दीन कृपण नहीं विषयनमें आसक्त नहीं हैकै जो स्वाधीन है सो ईश्वर है राजा स्वाधीन नहीं जे गुणमें आसक्त है सो परवश है॥४४॥ हे उद्धव! ये तुह्मारे प्रश्न सब तुमको अच्छी तरह समझाये अब बहुत कहा वर्णन करें गुण दोषको लक्षण इतनोही है जो सबनके गुण दोष विचारते रहै यही दोष है और न गुण देखे न दोष देखे सो गुण है॥४५॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायामेकादशस्कन्धे श्रीभगवदुद्धवसंवादे एकोनविंशतितमोऽध्यायः॥१९॥

अथ विंशतितमोऽध्यायः।

उद्धव उवाच॥ विधिश्च प्रतिषेधश्च निगमो हीश्वरस्य ते॥ अवेक्षतेऽरविन्दाक्ष गुणदोषं च कर्मणाम्॥ १॥ वर्णाश्रमविकल्पं च प्रतिलोमानुलोमजम्॥ द्रव्यदेशवयःकालान् स्वर्गं नरकमेव च॥ २॥ गुणदोषभिदादृष्टिमन्तरेण वचस्तव॥ निःश्रेयसं कथं नृणां निषेधविधिलक्षणम्॥३॥ पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुस्तवेश्वरः॥ श्रेयस्त्वनुपलब्धेऽर्थे साध्यसाधनयोरपि॥४॥ गुणदोषभिदादृष्टिर्निगमात्ते न हि स्वतः॥ निगमेनापवादश्च भिदाया इति ह भ्रमः॥५॥

वीसके अध्यायमें भक्तिज्ञानक्रिया तीनि योग कहेंगें अधिकारीनके विभागतें गुण दोषनकी व्यवस्था करेंगे॥ उद्धव पूछेहैं हे श्रीकृष्ण! विधिनिषेध वेद कहैहैं सो वेद तुह्मारी आज्ञा है तुम सबनके ईश्वर हो आपकी आज्ञासौं वेद कर्मनके पुण्य पापनकों देखें हैं॥ १॥ विन धर्मनके अधिकारी उत्तम मध्यम हीन तीनि प्रकारके हैं, वे वे वर्ण आश्रम न्यारे हैं, तिनको गुण दोष सब वेद देखे है॥ २॥ अब तुम कहो हो के गुण छोडिकै धर्ममें प्रवृत्त होइ सो गुण दोष भेद दृष्टि विना विधिनिषेध तुह्मारो वचन मनुष्यनकों कैसें फलदायक होइ॥ ३॥ हे ईश्वर! पितर देवता मनुष्यनकों तुह्मारो वेदही मोक्ष और स्वर्गादिकनमें श्रेष्ठ प्रमाण है और साध्य साधन विषें प्रमाण है॥ ४॥ और गुणदोषके भेदको ज्ञान तुह्मारे वेदही है आपुते नहीं मानी है

---

१ यामें यह प्रश्न है कि हे प्रभो! जो तुमने कही कि गुणमें गुण और दोषमें दोष माननौ याको दोष कहै है और इन गुणदोषनमें गुणदोष बुद्धि न राखनो ये गुण है सो उद्धव कहै है कि जब आपने यह कही तब फिर सब विधिनिषेध शास्त्र

श्रीभगवानुवाच ॥ योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रे-
योविधित्सया ॥ ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्यो-
ऽस्ति कुत्रचित् ॥६॥ निर्विण्णानां ज्ञानयोगो न्यासि-
नामिह कर्मसु ॥ तेष्वनिर्विण्णचित्तानां कर्मयोगस्तु
कामिनाम् ॥ ७॥ यदृच्छया मत्कथादौ जातश्रद्धस्तु
यः पुमान्॥ न निर्विण्णो नातिसक्तो भक्तियोगोऽस्य
सिद्धिदः ॥ ८ ॥ तावत् कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत
यावता ॥ मत्कथाश्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते
॥ ९ ॥ स्वधर्मस्थो यजन् यज्ञैरनाशीः काम उद्धव ॥
न याति स्वर्गनरकौ यद्यन्यन्न समाचरेत् ॥ १० ॥

गुण दोष दृष्टि न राखे, यह अब तुमही कहोहो, तातें भ्रम होयहै॥५॥
श्रीकृष्ण बोले हे उद्धव ! मनुष्यनके कल्याणकों वेदमें भेदसो तीनि
योग मैंनें कहेहैं ज्ञान, कर्म, भक्ति इनतें परें और उपाय कहूं नहीं॥६॥
इनके अधिकारी न्यारे न्यारे है, एकही नहीं, सो कहें हैं इनमें जो
कर्मनतें विरक्त है फल कछु न चाहें ताको ज्ञान योग कह्यो है ॥ ७ ॥
यदृच्छा करि मेरी कथामें जाकों श्रद्धा भई होई अति विरक्तहूं न
होइ, अति आसक्तहू न होइ ताकूं भक्तियोग सिद्धिदाता होइ ॥ ८ ॥
प्रथम कर्म योगकों कहें हैं, कर्म तहां ताईं करैं जहां ताईं वैराग्य न
उपजै, और मेरी कथा श्रवणादिकमें श्रद्धा न उपजै ॥ ९ ॥ अब
वैराग्य करिकैं जैसें ज्ञान होइ सोई प्रकार कहें हैं, हे उद्धव ! अपने
स्वधर्ममें स्थितहोइ, फलकी इच्छा छोडि निष्काम यज्ञ करे तब

व्यर्थ भयो जायहै और वो विधि निषेध वेदमें कही है और वेद तुमारो मुख है
गुणदोष दृष्टिके विना वेद व्यर्थ होयहै और वेद तुमारो मुख है फिर आप ये कैसै
कहै है सो या मेरे संदेहको दूर करौ ॥

अस्मिँल्लोके वर्तमानः स्वधर्मस्थोऽनघः शुचिः ॥
ज्ञानं विशुद्धमाप्नोति मद्भक्तिं वा यदृच्छया ॥ ११ ॥
स्वर्गिणोऽप्येतमिच्छन्ति लोकं निरयिणस्तथा ॥
साधकं ज्ञानभक्तिभ्यामुभयं तदसाधकम् ॥१२॥ न
नरः स्वर्गतिं काङ्क्षेन्नारकीं वा विचक्षणः ॥ नेमं लोकं
च काङ्क्षेत देहाऽऽवेशात्प्रमाद्यति॥ १३॥एतद् विद्वान्
पुरा मृत्योरभवाय घटेत सः ॥ अप्रमत्त इदं ज्ञात्वा
मर्त्यमप्यर्थसिद्धिदम् ॥ १४ ॥ छिद्यमानं यमैरेतैः
कृतनीडं वनस्पतिम् ॥ खगः स्वकेतमुत्सृज्य क्षेमं
याति ह्यलम्पटः ॥ १५ ॥

वाको न तो स्वर्ग होइ न नरक होइ जो और आचरण न करै ॥१०॥ यालोकमें स्वधर्ममें स्थितहोइ; निषेधको त्याग करै, तब मन शुद्ध होइ तब विशुद्ध ज्ञानको पावे, अथवा यदृच्छा करि मेरी भक्ति पावे ॥ ११ ॥ ज्ञान भक्तिको यह मनुष्यदेह करैहैं ताते मनुष्यदेह उत्तम है,सो कहै हैं जो स्वर्गमें हैं और नरकमें है वेहू या मनुष्यदेहकी वांछा करे हैं जा देहते ज्ञान भक्ति करिके मोक्ष होयहै, स्वर्ग और नरकहूमें शरीर है ते मोक्षसाधक नहीं ॥ १२ ॥ चतुर मनुष्य होइतौ स्वर्गकी गति न चाहै, जैसें नरककी गति न चाहै है; और यह लोकहू न चाहै, जाते देहके आवेशते प्रमाद होइ है ॥ १३ ॥ मरणधर्माहू या देहको अर्थ सिद्धिको दाता जानिकैं मृत्युतें पहिले सावधान मनुष्य मोक्षको यतन करे ॥ १४ ॥ यहां दृष्टांत कहैहैं जैसें पक्षीने एक रूखपे घर कियों ताको निर्दयी पुरुष आइकें वा वृक्षकूं काटे ताकों काटत जानिकैं अनासक्त हों करिके घर छोडिदेई तो जीवे ॥ १५ ॥

अहोरात्रैश्छिद्यमानं बुद्ध्वाऽऽयुर्भयवेपथुः ॥ मुक्तस-
ङ्गः परं बुद्ध्वा निरीह उपशाम्यति ॥१६॥ नृदेहमाद्यं
सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम् ॥ मयाऽ-
नुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स
आत्महा ॥ १७ ॥ यदारम्भेषु निर्विण्णो विरक्तः संय-
तेन्द्रियः ॥ अभ्यासेनात्मनो योगी धारयेदचलं मनः
॥ १८ ॥ धार्यमाणं मनो यर्हि भ्राम्यदाश्वनवस्थित-
म्॥ अतन्द्रितोऽनुरोधेन मार्गेणात्मवशं नयेत् ॥१९॥
मनोगतिं न विसृजेज्जितप्राणो जितेन्द्रियः॥ सत्त्वसं-
पन्नया बुद्ध्या मन आत्मवशं नयेत् ॥ २० ॥

तैसें अहोरात्र करिके काल आयुर्बलको काटै है यह जानि भय करिकैं कांपते या देहकी आसक्ति छोडि आत्माकों जानिकैं सब कृत्य छोडि शांतचित्त होइ रहै ॥ १६ ॥ ऐसी देहहूकों जानिकैं जो सावधान नहीं होइ तिनकी निंदा करें हैं, यह मनुष्य देह अत्यंत दुर्लभ है, अनेक जन्मनके पुण्य करिकैं पाई है, साधन करिवेकों समर्थ है संसार समुद्र तरणको नाव है, गुरु नाव चलामनहारे हैं, मैंने अनुकूल पवन करिकैं प्रेरित करी है ऐसो साधनको पाय जो यह प्राणी संसारसमुद्रकों न तरे सो आत्मघाती है ॥ १७ ॥ यह कर्मयोग जो विरक्त न होइ ताकों कह्यो अब जो विरक्त होइ ताकों ज्ञान उपजे पहिले जो कछु कर्त्तव्य है सो प्रकार कहे हैं, जब कर्मनमें उद्वेग होइ वैराग्य उपजै, तब इंद्रियनकों निग्रह करे स्थिरतासो आत्माके अभ्यास करिकै मनको निग्रह करे तब यह योगी होइ ॥ १८ ॥ मनकों निग्रह करे तोहू जब चंचल होइ तब सावधान होइ कछु मनकी कांक्षा पूर्ण करिकै फेरि मनकों वश करे ॥ १९ ॥ मनकी धारणा छोडे नहीं, प्राणवायु जीतें, इंद्रिय जीतें, बुद्धि सतोगुणी

एष वै परमो योगो मनसः संग्रहः स्मृतः ॥ हृदयज्ञत्वमन्विच्छन् दम्यस्येवार्वतो मुहुः ॥२१॥ सांख्येन सर्वभावानां प्रतिलोमानुलोमतः ॥ भवाप्ययावनुध्यायेन्मनो यावत्प्रसीदति ॥ २२ ॥ निर्विण्णस्य विरक्तस्य पुरुषस्योक्तवेदिनः ॥ मनस्त्यजति दौरात्म्यं चिन्तितस्यानुचिन्तया ॥ २३ ॥ यमादिभिर्योगपथैरान्वीक्षिक्या च विद्यया ॥ ममार्चोपासनाभिर्वा नान्यैर्योग्यं स्मरेन्मनः ॥ २४॥ यदि कुर्यात्प्रमादेन योगी कर्म विगर्हितम् ॥ योगेनैव दहेदंहो नान्यत्तत्र कदाचन ॥ २५ ॥

करिकै मन अपने वश करे ॥ २०॥ यह मनको निग्रह निश्चय उत्तम योग है जैसे सवार दमन करने योग्य घोडेकी गतिको अपनी इच्छानुसार चाहतौभयौ पहलै वाकी इच्छानुसार जान देयहै पीछे लगामको थामकै चलावें है ऐसेही शनैः मनको वश करै ॥ २१ ॥ सब तत्त्वनकों विवेक करी प्रकृतिते उत्पत्तिको क्रम विचारै, यह पृथिवी आदि क्रमसौ प्रतिलोमतें लीन होय हैं ऐसो ध्यान करतौ रहै, जहांलों चित्त प्रसन्न होइ ॥ २२ ॥ जब चित्तमें वैराग्य उपजे, तब गुरुके बताये धर्मकों विचार करै, तब क्रमसों यह चित्त देहको अभिमान छोडे है ॥ २३ ॥ संयम नेम आदि योग धारण, आत्मविचार और मेरी प्रतिमाकी सेवा, इन उपायन करिकै योग्य परमात्माकों मनसें स्मरण करे, और मेरे स्मरणकौ करै यासौ अधिक और उपाय नहीं हैं ॥ २४ ॥ जो प्रमादतें योगी कछु निंदित कर्म करैं, वह योगी योगाभ्यासही करि अपनें पाप दूरि करे, याकों कछु और प्रायश्चित्त नहीं ॥ २५ ॥

स्वे स्वेऽधिकारे या निष्ठा स गुणः परिकीर्त्तितः ॥
कर्मणां जात्यशुद्धानामनेन नियमः कृतः ॥ गुणदो-
षविधानेन सङ्गानां त्याजनेच्छया ॥ २६ ॥ जातश्र-
द्धो मत्कथासु निर्विण्णः सर्वकर्मसु ॥ वेददुःखात्म-
कान्कामान्परित्यागेऽप्यनीश्वरः ॥२७॥ ततो भजेत
मां प्रीतः श्रद्धालुर्दृढनिश्चयः ॥ जुषमाणश्च तान्का-
मान्दुःखोदर्कांश्च गर्हयन् ॥ २८॥ प्रोक्तेन भक्तियो-
गेन भजतो माऽसकृन्मुनेः॥ कामा हृदय्या नश्यन्ति
सर्वे मयि हृदि स्थिते ॥ २९ ॥ भिद्यते हृदयग्रन्थि-
श्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ॥ क्षीयन्ते चाऽस्य कर्माणि
मयि दृष्टेऽखिलात्मनि ॥ ३० ॥

अपने अधिकारमें रहनोंही गुण हैं, प्रवृत्तिमार्ग स्वभावहीते अ-
शुद्ध है, तथापि जो सहसा न छोड्यो जाइ तौ प्रवृत्ति संगके
छुडाइवेकी इच्छा करिकैं गुण दोष कहि इन कर्मनके संकोचद्वारा-
निवृत्ति कीजे योगीको स्वाभाविक वृत्ति न ह्वैवेसौ प्रायश्चित्तकी
आवश्यकता नहीं ॥ २६ ॥ मेरी कथामें श्रद्धा कर्मनमें वैराग्य ह्वैवेपै
और काम्य कर्मनकों दुःखरूप जानेपैहू विनको परित्यागन ह्वै सकै
तौ ॥ २७ ॥ तब श्रद्धायुक्त ह्वैकें दृढनिश्चयसौं प्रीतिसों मेरो भजन
करे, विषयभोग करै तौ आसक्त न होइ विनकी निंदा करतौ रहै अब
भजनप्रकार कहें हैं ॥ २८ ॥ पहिले मैंने भक्तियोग तुमसों कह्यो है
ता रीतिसों निरंतर मुनि मेरो भजन करें, तब वाके हृदयमें मेरो
वास ह्वैवेसौ वाकी सब कामना नष्ट ह्वै जाय है ॥ २९॥ सबके आत्मा-
रूप जब मोको देखै है तब उसके हृदयकी गांठि छूटिजाय है सब
संदेह मिटकै सब कर्म क्षीण ह्वैजाय है ॥३०॥

तस्मान्मद्भक्तियुक्तस्य योगिनो वै मदात्मनः ॥ न
ज्ञानं न च वैराग्यं प्रायः श्रेयो भवेदिह ॥ ३१ ॥ य-
त्कर्मभिर्यत्तपसा ज्ञानवैराग्यतश्च यत् ॥ योगेन दा-
नधर्मेण श्रेयोभिरितरैरपि ॥३२॥ सर्वं मद्भक्तियोगेन
मद्भक्तो लभतेऽञ्जसा ॥ स्वर्गापवर्गं मद्धाम कथंचि-
द्यदि वाञ्छति ॥ ३३ ॥ न किंचित्साधवो धीरा भक्ता
ह्येकान्तिनो मम ॥ वाञ्छन्त्यपि मया दत्तं कैवल्य-
मपुनर्भवम् ॥ ३४ ॥ नैरपेक्ष्यं परं प्राहुर्निःश्रेयसम-
नल्पकम् ॥ तस्मान्निराशिषो भक्तिर्निरपेक्षस्य मे
भवेत् ॥ ३५ ॥ न मय्येकान्तभक्तानां गुणदोषोद्भवा
गुणाः ॥ साधूनां समचित्तानां बुद्धेः परमुपेयुषाम् ॥ ३६ ॥

तातें मेरी भक्ति संयुक्त मेरे विषें चित्त युक्त करवेवारे योगीको न तौ ज्ञान न वैराग्य कल्याणकौ साधन हैं किन्तु भक्तियोगही कल्याणकौ साधन हैं ॥ ३१ ॥ जो फल कर्म तप ज्ञान वैराग्य योग दान धर्म और तीर्थ यात्रादिके साधनसौं होय है ॥ ३२ ॥ सो सब मेरी भक्तिही करिकै होय है, मेरो भक्त सुखसों स्वर्ग और वैकुंठ मेरे धामकों पावै है, पर मेरो भक्त कछु चाहना नहीं करे हैं ॥ ३३ ॥ हे उद्धव ! जे बुद्धिवंत हैं तिनकी मेरेई विषें प्रीति है, वे परम साधु हैं तिनकों मैं अनेक विभव देउहूं, और वे कछुक नहीं चाहें हैं ॥ ३४ ॥ मेरी निरपेक्ष भक्तिही परम कल्याणरूप है, तामें मेरी निष्कामकी भक्ति निष्काम भक्तकों होय है ॥ ३५ ॥ जे मेरे विषें एकांत भक्त राग द्वेषरहित समचित्त हैं, बुद्धिसौ परे ईश्वरकों प्राप्त है, तिनकों विधि निषेधके गुण दोषसौ उत्पन्न भए पुण्यपाप नहीं लगे ॥ ३६ ॥

एवमेतान्मयादिष्टाननुतिष्ठन्ति मे पथः ॥ क्षेमं विन्दन्ति मत्स्थानं यद्ब्रह्म परमं विदुः ॥ ३७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

अथ एकविंशोऽध्यायः ।

श्रीभगवानुवाच ॥ य एतान्मत्पथो हित्वा भक्तिज्ञानक्रियात्मकान् ॥ क्षुद्रान्कामांश्चलैः प्राणैर्जुषन्तः संसरन्ति ते॥ १ ॥स्वे स्वेऽधिकारे या निष्ठा स गुणः परिकीर्तितः॥विपर्ययस्तु दोषः स्यादुभयोरेष निश्चयः २॥

याप्रकार मेरे कहे मार्गमें जे रहैं हैं, वे परम कल्याणरूप मेरे धामकों प्राप्त होंयहै मेरे धामको परब्रह्म कहै है ॥ ३७ ॥

इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां एकादशस्कन्धे श्रीभगवदुद्धवसंवादे विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

इकीसके अध्यायमें क्रिया ज्ञान भक्ति अधिकारतें रहित सकाम बहिर्मुखनकी निंदा करैं हैं ॥ श्रीकृष्ण कहैहैं हे उद्धव ! जो मेरे बताये मार्ग भक्ति ज्ञान निष्कामकर्मकों छोडि चंचल प्राणनसौं तुच्छ कामनानकों सेवन करैहै वे संसारको प्राप्त होयहैं ॥ १ ॥ जा प्रकार अग्निकौ किसीको ताप हौना और किसीकों न हौना संभव नहीं उन्हीं

---

१ ऊधो भज मोहि सकल विहाय ॥ या जगको सुपना कारि जानो प्रलय माहिं नस जाय ॥ आदि अन्त और मध्य एकरस रहे सो सत्य कहाय ॥ सोई भजन योग्य भक्तनके ताहि जपे चित लाय ॥ एक अखंडरूप अविनाशी पालत जग उपजाय ॥ नरतन पाय न सुमिरे जिन हरि सो पाछे पछिताय ॥ भजन होसकै तौ अवही कारि पलछिन बीतो जाय ॥ नित ज्वालाप्रसाद भक्तकी करते रहैं सहाय ॥

शुद्ध्यशुद्धी विधीयेते समानेष्वपि वस्तुषु॥ द्रव्यस्य विचिकित्सार्थं गुणदोषौ शुभाशुभौ॥ ३ ॥ धर्मार्थं व्यवहारार्थं यात्रार्थमिति चाऽनघ ॥ दर्शितोऽयं मयाऽऽचारो धर्ममुद्वहतां धुरम् ॥ ४ ॥ भूम्यम्ब्वग्न्यनिलाकाशा भूतानां पञ्च धातवः ॥ आब्रह्मस्थावरादीनां शारीरा आत्मसंयुताः ॥ ५ ॥

कर्मोंसे किसीके गुण और किसीके दोष होना संभव नहीं यह संदेह करनेकी आवश्यकता नहीं कारण कि निज निज अधिकारमें निष्ठा राखवेंको गुण और निष्ठा न राखवेंको दोष कहतें हैं गुण दोषके विचारको यही निश्चय है ॥ २ ॥ यह शुद्ध है लीजिये यह अशुद्ध है न लीजिये, ऐसे संदेहसौ स्वाभाविक प्रवृत्तिकों निवृत्ति करनेके निमित्त समानवस्तुनमेंहू वेदमें शुद्धि और अशुद्धिकौ विधान कियोहै और याहीके निमित्त विनमें गुण दोष मानेहैं इन्हीसौ शुभ पुण्य और पाप माने हैं ॥ ३ ॥ हे निष्पाप ! धर्मके धारण करनेवारे पुरुषनको मैंनेही मनु आदि रूपसौ यह आचार दिखायो है यह शुद्धि और अशुद्धि धर्म व्यवहार और निर्वाहके निमित्त गुण और दोष रूपसौ प्रतिपादन करी है धर्मके निमित्त शुद्धिसौ धर्म अशुद्धिसौ अधर्म व्यवहारमें आशौचादिसौ अशुद्धहू राजा व्यवहारमें न्याय करवेको शुद्ध और दूसरे कार्यनमें अशुद्ध है आपदामें निर्वाह मात्र पदार्थ लेवेसौ शुद्ध और अधिक लेवेसौ अशुद्ध होय है ॥ ४ ॥ यद्यपि यह सब वस्तु समान हैं क्यों कि पृथिवी जल वायु आकाश ब्रह्मा आदि जड पर्यंत सबनके शरीरके कारण पंच महाभूत हैं और आत्माहू सर्व एकही है ॥ ५ ॥

वेदेन नामरूपाणि विषमाणि समेष्वपि ॥ धातुषूद्धव कल्प्यन्त एतेषां स्वार्थसिद्धये ॥ ६ ॥ देशकालादिभावानां वस्तूनां मम सत्तम ॥ गुणदोषौ विधीयेते नियमार्थं हि कर्मणाम् ॥ ७ ॥ अकृष्णसारो देशानामब्रह्मण्योऽशुचिर्भवेत् ॥ कृष्णसारोऽप्यसौवीरः कीकटोसंस्कृतेरिणम् ॥८॥ कर्मण्यो गुणवान् कालो द्रव्यतः स्वत एव वा ॥ यतो निवर्त्तते कर्म सदोषोऽकर्मकः स्मृतः ॥९॥ द्रव्यस्य शुद्ध्यशुद्धी च द्रव्येण वचनेन च ॥ संस्कारेणाथ कालेन महत्त्वाल्पतयाऽथ वा १०

हे उद्धव ! समानहूं देह विषें वेदनें नाम रूप वर्ण आश्रम सब इन जीवनके स्वार्थ सिद्धिके निमित्त पृथक् कियेहै ॥ ६ ॥ केवल देहमेंही विभाग नहीं है किन्तु देश काल आदि संपूर्ण वस्तुनमें कर्मके संकोच निमित्त गुण दोषको विधान कियो हैं अब शुद्धिअशुद्धिको विषय कहै है ॥ ७ ॥ जा देशमें कारो मृग न होइ सो देश अशुद्ध हैं और सत्पात्ररहित देश, मार्जनरहित देश ऊसरदेश ये अशुद्ध हैं, जहां ब्राह्मणमें भक्ति न होइ सो परम अशुद्ध है, अंग वंग कलिंगादिकहू देश अशुद्ध हैं जहां कारो मृग होइ सत्पात्र होय सो अशुद्धहू देश शुभ है देशकी शुद्धि अशुद्धि कहि काल समयकी शुद्धि कहैं हैं ॥ ८ ॥ जो काल द्रव्यकी संपत्तिसों कर्मके योग्य है और जो स्वतःही प्रातः पूर्वाह्ण मध्याह्न काल कर्मके योग्य है सो काल तो कर्मकों शुद्ध है, जो सूतकादिक काल कर्मके योग्य नहीं हैं, यद्यपि काल सब एक है तथापि यह भेद कियो है कर्मके अयोग्यकाल अशुद्ध है ॥ ९ ॥ अब द्रव्यकी शुद्धि कहेहैं द्रव्यकी शुद्धि अशुद्धि द्रव्य वचन संस्कार बडेपन और छोटेपनसों मानी जाय है द्रव्यकों

शक्त्याऽशक्त्याऽथवा बुद्ध्या समृद्ध्या च यदात्मने॥ अघं कुर्वन्ति हि यथा देशावस्थानुसारतः ॥११॥ धान्यदार्वस्थितन्तूनां रसतैजसचर्मणाम्॥ कालवाय्वग्निमृत्तोयैः पार्थिवानां युतायुतैः ॥ १२ ॥

शुद्ध जल करै है, मूत्रादिक अशुद्ध करैहै कि ब्राह्मणको वचन प्रमाण है वे कहें यह वस्तु शुद्ध है तो वह शुद्धही है अशुद्ध कहै तो अशुद्धही है, पुष्प सूंघिलेंइ तो अशुद्ध होजाइ, प्रोक्षणादिक संस्कारकरि शुद्धि होइ, कालसौ जलकी शुद्धता दश दिन हैजायवेसौ नये जलकी शुद्धि चातुर्मास्यमें तीन दिनसो शुद्धता बडेपनसौ चांडालादिकके स्पर्शतें तलाउको जल बहुत भरचो होइ तौ चाहें कोऊ भरो वह जल शुद्ध है, छोटेपनसैं घटादिको जल चाण्डालादिके स्पर्शसे अशुद्ध है जायहै ॥ १० ॥ अब शक्ति अशक्तिसो शुद्धाशुद्धि कहै है सूर्यग्रहणमें जाकों शक्ति होइ ताकों सूतक लगें, स्नान दानकरि शुद्धि होइ, और जो अशक्त है ताको नहीं बुद्धिसे पुत्र जन्मादि आशौचकी दश दिनके भीतर जायवेसो अशुद्धि उपरान्त शुद्धि समृद्धि हैवेके कारण जीर्णवस्त्र मलिन वस्त्र श्रीमंतकों अशुद्ध हैं दरिद्रीको शुद्ध है सूतकको अन्न समर्थको तो अशुद्ध है, असमर्थकों शुद्ध है यह द्रव्य वचन आदि द्रव्यकी अशुद्धिसो आत्माको पातक लगावें हैं सो देशकाल अवस्थाके अनुसारही लगाते है निर्भय देशमें यही पापदायक चौरादिके उपद्रव युक्त देशमें नहीं युवा अवस्थामैं यही पापदायक वृद्धावस्थामें और बालकपनमें शुद्ध हैं ॥११॥ याप्रकार द्रव्यकी शुद्धि द्रव्यसों कही वचन शुद्धि एकही भांति है, द्रव्यकी शुद्धि बहुत प्रकार है सो कहें हैं, अन्न काष्ठ, हार्थीदांत, सूत्र, रस तेल घृत आदि, सुवर्ण और मार्गकी कीच कलस ईंट यह सब काल

अमेध्यलिप्तं यद्येन गन्धलेपं व्यपोहति ॥ भजते प्र-
कृतिं तस्य तच्छौचं तावदिष्यते ॥ १३ ॥ स्नानदा-
नतपोऽवस्थावीर्यसंस्कारकर्मभिः ॥ मत्स्मृत्या चा-
त्मनः शौचं शुद्धः कर्माचरेद् द्विजः ॥ १४॥ मन्त्रस्य
च परिज्ञानं कर्मशुद्धिमदर्पणम् ॥ धर्मः संपद्यते षड्-
भिरधर्मस्तु विपर्ययः ॥ १५ ॥

वायु अग्नि जलसे यथायोग्य शुद्ध हैं, अर्थात् धान्यकी शुद्धि वायुसो यज्ञपात्र तथा काष्ठकी जलसो हाथीदांत आदिकी कालसो तेल घृत सुवर्णादिकी अग्निसो तंतुनकी जलसों चामकी काल और रंगसो पार्थिव विकार ईंट आदिकी कालसो शुद्धि होयहै कहूं ये सब मिलिकै शुद्धि करे, और कबहूं अकेले करैं, तहांऊं जो काक और चांडाल आदि नीचजातिको स्पर्श भयोहोइ ताके देश अवस्था देखिकरि विचार करे तब शुद्ध होई ॥ १२ ॥ औरहू शुद्धि कहैं हैं पीढा पात्र वस्त्र आदिमें जो अपवित्र वस्तु लेपकी लगजाय तौ काष्ठ छिलायेतें शुद्ध होइ, द्रव्यकी शुद्धि राखे और खटाईसे धोवे तब शुद्धि होइ वस्त्र खारसों गंध और लेप छूटवेतक धोवे तौ शुद्ध होय जब दुर्गंध न रहै स्वच्छ है जाय तब शुद्ध है ॥ १३ ॥ कर्त्ताकी शुद्धि कहैं हैं स्नान दान तप अवस्था बाल्य कौमार वीर्य्यसंस्कार गायत्री उपदेश कर्म संध्या दीक्षादिकसों कर्मसों ब्राह्मण शुद्ध होइ, तब कर्म करे, और आत्माकी शुद्धि मेरे स्मरणसो होयहै, और प्रकारसो नहीं ब्राह्मणादिके देहकी शुद्धि इन संस्कारनते होइहै और प्रकार नहीं देहकी शुद्धि इन संस्कारनतें होइ सोऊ व्यवहारके निमित्तही है वाके निमित्त विहित कर्म करे ॥ १४ ॥ अब मंत्रकी शुद्धि कहैं हैं, श्रेष्ठ गुरुके मुखते सुने तापीछे ता मंत्रको अच्छी तरह ज्ञान होइ तो

क्वचिद् गुणोऽपि दोषः स्याद्दोषोऽपि विधिना गुणः॥ गुणदोषार्थनियमस्तद्भिदामेव बाधते ॥ १६ ॥ समानकर्माचरणं पतितानां न पातकम् ॥ औत्पत्तिको गुणः सङ्गो न शयानः पतत्यधः॥ १७॥ यतो यतो निवर्त्तेत विमुच्येत ततस्ततः॥ एष धर्मो नृणां क्षेमः शोकमोहभयापहः॥ १८॥

मंत्रको शुद्धि होइ जो कछु कर्म भले या बुरे करै सो सब मोको समर्पे, यह कर्म शुद्धि है, देश काल द्रव्य कर्त्ता मंत्र कर्म इन छे पदार्थनके शुद्ध हैवेसो धर्म शुद्धि होय है यही अशुद्ध होय तौ अधर्म होय है ॥ १५ ॥ यह गुण दोषकौ विभाग यथार्थ नहीं है कही आपदामें प्रतिग्रह लेवेसो दोष गुण है जाय है धन हैवेसो निषध होनेके कारण कहीं दोष है और कहीं दोषहू विधिसो गुण होयहै जैसे कुटुम्ब त्याग दोष है परन्तु विरक्तको कुटुम्ब त्याग दोष नहीं गुणदोषके कहवेवारे शास्त्र गुणदोषके बाधक है॥ १६ ॥ दोषभी कहूं दोष नहीं होय तहां दृष्टांत बतामें हैं जो सुरापानसो पतित नहीं है विन पतितनको सुरापान दोष नहीं होता क्योंकि वे जातिकर्मसे पहलेही पतित है, तिनको सुरापान अधिक पातक कहा करेगो, और जे धर्मशील हैं तिनको वाकोसंसर्गही पातक है, संन्यासीकों संग बांधेहै, सोई गृहस्थको गुण है, कारण कि गृहस्थीनको संग करनो होय है जैसो कि वेदमें कह्यो है " ऋतुके दिन स्त्रीसंग करे " परन्तु जो पहलेही पृथ्वीपर सोयोहै वह नीचे नहीं गिरै है॥ १७ ॥ या प्रकार गुणदोषको विचार प्रवृत्ति मार्गमें है निवृत्त भये कछु नहीं सो कहें है, वेदको यही तात्पर्य्य नहीं है कि जो सदा प्रवृत्तिमेंही रहैं वेद प्रवृत्ति छुडायके निवृत्ति बतामेंहै तातें जा जा विषयते निवृत्त भयो ता

विषयेषु गुणाध्यासात्पुंसः सङ्गस्ततो भवेत् ॥ सङ्गा-
त्तत्र भवेत्कामः कामादेव कलिर्नृणाम् ॥१९॥ कले-
र्दुर्विषहः क्रोधस्तमस्तमनुवर्त्तते ॥ तमसा ग्रस्यते पुं-
सश्चेतना व्यापिनी द्रुतम् ॥ २० ॥ तया विरहितः
साधो जन्तुः शून्याय कल्पते ॥ ततोऽस्य स्वार्थविभ्रं-
शो मूर्छितस्य मृतस्य च ॥ २१ ॥ विषयाभिनिवेशेन
नात्मानं वेद नापरम् ॥ वृक्षजीविकया जीवन् व्यर्थं
भस्त्रेव यः श्वसन् ॥ २२॥ फलश्रुतिरियं नृणां न श्रेयो
रोचनं परम् ॥ श्रेयोविवक्षया प्रोक्तं यथा भैषज्यरो-
चनम् ॥ २३ ॥

ताते मुक्त होइ, यह धर्म मनुष्यनकों शुभकारी है, शोक मोह भयको दूरिकरे हैं ॥ १८ ॥ प्रवृत्ति मार्ग अनर्थ रूप है सो कहै है, मनुष्यकों विषयमें इंद्रिनको अभ्यास होइ, तब आसक्ति उपजैं, आसक्तिते काम होइ कामहीते कलह होइ ॥ १९ ॥ कलहतें अति असह्य क्रोध होइ क्रोधसों तम अज्ञान होयहै, अज्ञानसों पुरुषकी चेतना जो सब देहमें व्यापिरही है सो शीघ्र नष्ट हो जाय है ॥ २० ॥ हे साधो ! जब वह चेतनासों रहित भयो तब यह जीव असाधुके तुल्यहैके मूर्छित होय है मूर्च्छाके भये मृतक समान हैवेसो याके पुरुषार्थकी हानि होय है ॥ २१ ॥ जो मृतक समान है ताको स्वरूप कहै हैं, जो विषयनमें आसक्त हैवेके कारण आत्माको तथा औरकोहू नहीं जान हैसो वृक्षनके जीविकाकी नाईं वृथा जीवे है, धोंकनीकी भांति श्वास लेतेही मृतक समान हैं ॥ २२ ॥ यह जो प्रवृत्तिमार्गकी आज्ञा है, सो वेदने यह कर्मनके फल रुचि दिखानेके निमित्त वर्णन किये हैं जैसे रोगीको औषधी रुचि उपजायकै पिवावे है, तात्पर्य आरोग्यतासों है, सदा

उत्पत्त्यैव हि कामेषु प्राणेषु स्वजनेषु च ॥ आसक्तमनसो मर्त्या आत्मनोऽनर्थहेतुषु ॥२४॥ न तानविदुषः स्वार्थं भ्राम्यतो वृजिनाध्वनि ॥ कथं युञ्ज्यात् पुनस्तेषु तांस्तमो विशतो बुधः ॥२५॥ एवं व्यवसितं केचिदविज्ञाय कुबुद्धयः ॥ फलश्रुतिं कुसुमितां न वेदज्ञा वदन्ति हि ॥ २६ ॥ कामिनः कृपणा लुब्धा पुष्पेषु फलबुद्धयः ॥ अग्निमुग्धा धूमताऽन्ताः स्वं लोकं न विदन्ति ते ॥ २७ ॥ न ते मामङ्ग जानन्ति हृदिस्थं य इदं यतः ॥ उक्थशस्त्रा ह्यसुतृपो यथा नीहारचक्षुषः ॥ २८ ॥

औषधी सेवनसो नहीं यही प्रकार जबतक ज्ञान होय तबतक कर्म करवेकी वेद आज्ञा करै है, सब काल कर्म करवेसों तात्पर्य नहीं ॥ २३ ॥ मनुष्य स्वभावहीतें पशुआदि विषें और इंद्रिय बल वीर्यनके विषें पुत्रादिकनविषें आसक्तचित्त होय है सो सब आपको अनर्थको हेतु है ॥ २४ ॥ तातें स्वार्थ अर्थात् परमसुखको जो नहीं जाने हैं वे अनेक पापरूप मार्गनकी तिन तिन योनिनमें भ्रमें हैं पीछे जडरूप वृक्ष आदि योनीमें प्रविष्ट होतेहैं तिनको फिर वेदउ नहीं धर्मनमें क्यों प्रवृत्त करे जाते अनिष्ट होइ, ताहीमें वेद प्रवृत्त करे तौ हितकारी होइ ॥ २५ ॥ कर्ममार्गी कैसे फल बतावें हैं, तहां कहें है, या प्रकार वेदको अभिप्राय जाने विना कुबुद्धिही यह फल बतामैं है, और जे वेदके तात्पर्यको जानेंहै वे व्यास आदि ऋषि ऐसो नहीं कहे है ॥ २६ ॥ कामी, कृपण, लोभी पुष्परूपी स्वर्गादि सुखरूप अवान्तर फलको मुख्य माननेवारे अग्निहोत्रादिसो मुग्ध धूम्रयुक्त चित्तवारे अपने सुखदायक लोकको नहीं जाने है ॥ २७ ॥ हे उद्धव ! जासो यह जगत प्रगट है और जो जगद्रूप है ऐसे मो

ते मे मतमविज्ञाय परोक्षं विषयात्मकाः ॥ हिंसायां यदि रागः स्याद्यज्ञ एव न चोदना ॥२९॥ हिंसाविहारा ह्यालब्धैः पशुभिः स्वसुखेच्छया ॥ यजन्ते देवता यज्ञैः पितृभूतपतीन् खलाः ॥ ३० ॥ स्वप्नोपममम्मुं लोकमसन्तं श्रवणप्रियम् ॥ आशिषो हृदि संकल्प्य त्यजन्त्यर्थान् यथा वणिक् ॥ ३१ ॥

परमात्माको वे हृदयमें स्थित नहीं जाने है कर्मरूप शस्त्रनसों पशुहिंसा करके प्राण पुष्ट करें हैं, जैसे कुहरेसों कछु नहीं दिखै है तैसे अज्ञानसो विनके नेत्र व्याप्त है जो समीप स्थित मोको नहीं जाने है ॥ २८ ॥ याही कारणते मेरे वाक्यरूप वेदके गूढ तात्पर्यको विषयी नहीं जानते है मेरो मत यह है कि यदि मांस भक्षणके अर्थ हिंसाकी विधिमें वेदकी प्रीति होती तो वेद यज्ञमेंही मांस भक्षणकी विधि नहीं करतौ किन्तु सदाके निमित्त आज्ञा देय मनुष्यनकी मांसमें अधिक प्रवृत्ति देख विनको यासौ छुडायवेके निमित्त कि एक संग तो छुट नहीं सकैहै याही कारण छुडायवेकौ उपाय प्रतिपादन करै है कि पशुको यज्ञमेंही मारनौ अन्यस्थलमें नहीं वामेंहू अमुक पशु मारनौ यासो वेदको अभिप्राय पशुहिंसासौ निवृत्तही करवेको है ॥ २९ ॥ हिंसा विषें जिनके व्यवहार हैं, अपनें विषय भोग निमित्त पशुनकी हिंसा करिकैं देवता, पितर भूतपतिनकों जो पूजे हैं वे दुष्ट हैं ॥ ३० ॥ स्वप्नके समान काननको सुखदायक परलोककी और या लोककी कामनानकों मनमें संकल्प करिकैं अपने धनको सकाम कर्मनमें व्यय करै हैं और दोनों लोकसो भ्रष्ट है जायहैं जैसे बनियां दुस्तर समुद्रके लंघन करवेमें बहुत धन प्राप्तिकी इच्छा कर अपने संचित किये धनको छोड दोउ दोरतें भ्रष्ट होयहै ॥ ३१ ॥

रजःसत्त्वतमोनिष्ठा रजःसत्त्वतमोजुषः ॥ उपासते
इन्द्रमुख्यान् देवादीन्न तथैव माम् ॥ ३२ ॥ इष्ट्वेह दे-
वता यज्ञैर्गत्वा रंस्यामहे दिवि ॥तस्यान्त इह भूया-
स्म महाशाला महाकुलाः ॥३३॥ एवं पुष्पितया वा-
चा व्याक्षिप्तमनसां नृणाम् ॥ मानिनां चातिस्तब्धा-
नां मद्वार्ताऽपि न रोचते॥३४॥ वेदा ब्रह्मात्मविषया-
स्त्रिकाण्डविषया इमे॥परोक्षवादा ऋषयः परोक्षं मम
च प्रियम्॥३५॥शब्दब्रह्म सुदुर्बोधं प्राणेन्द्रियमनोम-
यम् ॥ अनन्तपारं गम्भीरं दुर्विगाह्यं समुद्रवत् ॥३६॥

वे रजोगुण सतोगुण तमोगुणतें युक्त ह्वेकें जैसे इन्द्रादिक देवनकी सेवा करैहै तैसे मेरी सेवा नहीं करैहै ॥ ३२ ॥ मनमें अनेक मनोरथ करैं हैं कि यहां यज्ञ करि देवतानकों संतोष करिकै स्वर्गमें जाइ विहार करैंगे और फिर ये भोगिकै अंतमें यहां आइ बडे बडे गृह बडे कुलमें स्थित होंइगे ॥ ३३ ॥ या भांति फूली बातनतें चंचलचित्त मनुष्य मान अहंकार भरे गृहमें अनम्र रहै हैं, तिनको मेरी वार्ता नहीं रुचती है ॥ ३४ ॥ तातें वेदको तात्पर्य ब्रह्मविषें है निवृत्तिहीको बतावे हैं यद्यपि कर्ममार्ग ज्ञानमार्ग उपासनामार्ग भिन्न भिन्न कहै हैं तथापि तात्पर्य ब्रह्महीमें है मंत्र और मंत्रनके द्रष्टा ऋषि परोक्षरीति-सोही पदार्थको प्रतिपादन करै हैं यासो ब्रह्म आत्मविषय गूढ ह्वेवेके कारण प्रकाशित नहीं होय है, परोक्षरीतिसौ कहिवेको कारण यह है मोको परोक्ष प्रिय है जिनके अन्तःकरण शुद्ध है वेही ये जान सकैं है दूसरे नहीं दूसरोंके जाननेमें हित तो दूर रहे किंतु कर्मभ्रष्ट ह्वेवेकी आपत्ति आयपडै हैं ॥ ३५ ॥ तहां कहै हैं जैमिनी आदि ऋषि वेदके ज्ञाता है, ये ऐसें क्यों नहीं कहै हैं ताते कहै है, हे उद्धव ! वेदको

मयोपबृंहितं भूम्ना ब्रह्मणाऽनन्तशक्तिना ॥ भूतेषु
घोषरूपेण बिसेषूर्णेव लक्ष्यते॥ ३७॥ यथोर्णनाभि-
र्हृदयादूर्णामुद्वमते मुखात्॥ आकाशाद्घोषवान्प्राणो
मनसा स्पर्शरूपिणा॥ ३८ ॥ छन्दोमयोऽमृतमयः
सहस्रपदवीं प्रभुः ॥ ओंकाराद्व्यञ्जितस्पर्शस्वरो-
ष्मान्तःस्थभूषिताम् ॥ ३९ ॥

तत्त्व मों विना कोउ नहीं जानें है, शब्दब्रह्म अतिदुर्ज्ञेय है, वही सूक्ष्म और स्थूल भेदसों दो प्रकारको है सूक्ष्मको तो स्वरूप जाननोहू अति कठिन है कारण कि प्रथम तो वह परा नामक प्राणमय है दूसरो पश्यंती नाम मनोमय है तीसरो मध्यमें नाम इन्द्रियमय है देहमें यह तीनों स्वरूप देहमें सूक्ष्मरूपसों रहे है या कारण इनको जाननो कठिन है चौथो वैखरी स्वरूप है जासो मनुष्य बोले हैं समष्टि प्राण-मय वेद ब्रह्मको देशकालसो परिच्छेद न हैवेके कारण वाके पारको अन्त नहीं हैं जा प्रकार यह वेद ब्रह्म शब्दसो जाननो कठिन है वही प्रकार अर्थसोहू यह महागंभीर समुद्रकी समान अवगाह करवेको दुःसाध्य है॥ ३६॥ अनंत शक्ति व्यापकरूप अंतर्यामी ब्रह्मसो यह नादवंत वाणी रूप कमलनालमें तंतुकी समान सब प्राणीमात्रमें प्रतीत होय है या स्वरूपको विद्वान् विचार करते हैं॥ ३७॥ जैसें मकरी हृदयसो निकासि मुखद्वारते जालको प्रकट करेहै प्राणोपाधि हिरण्यगर्भ प्रभु भगवान् वेदमूर्ति अमृतमय नादवंत स्पर्शादिकनको कर्त्ता मंता करिके हृदयाकाशते वैखरी नाम वाणीको उपजायके जाय हैं जो बृहती वा वैखरी नामक वाणी हृदयमें प्राप्त अति सूक्ष्म प्रणवते प्रकटभये स्पर्श[1] स्वर ऊष्मा अंतस्थ करिकै शोभित॥३८॥ ३९॥

[1] कसे मपर्यन्त स्पर्श वर्ण हैं, स्वर अकरादि सोलह हैं, यरलव अन्तस्थ हैं, शषसह ऊष्माण हैं॥

विचित्रभाषाविततां छन्दोभिश्चतुरुत्तरैः ॥ अनन्त-
पारां बृहतीं सृजत्याक्षिपते स्वयम् ॥४०॥ गायत्र्यु-
ष्णिगनुष्टुप् च बृहती पङ्क्तिरेव च ॥ त्रिष्टुब्जगत्यति-
च्छन्दो ह्यत्यष्ट्यतिजगद्विराट् ॥ ४१ ॥ किं विधत्ते
किमाचष्टे किमनूद्य विकल्पयेत् ॥ इत्यस्या हृदयं
लोके नान्यो मद्वेद कश्चन ॥४२॥ मां विधत्तेऽभिधत्ते
मां विकल्प्यापोह्यते त्वहम् ॥ एतावान्सर्ववेदार्थः
शब्द आस्थाय मां भिदाम् ॥ मायामात्रमनूद्यान्ते
प्रतिषिध्य प्रसीदति ॥ ४३ ॥ इति श्रीभागवते एका-
दशस्कंधे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

अनेक वैदिक लौकिक भाषानकरिकैं फैली उत्तरोत्तर चारि चारि अक्षर जिनमें बढे ऐसे गायत्री आदि छंदनकरि युक्त पारावार रहित है वह प्राण वासौ आपही प्रगट करके उपसंहार करैं हैं ॥ ४० ॥ तिन विषें कितेक छंदनकों दिखामें हैं गायत्री उष्णिक् अनुष्टुप् बृहती पंक्ति त्रिष्टुप् जगती अत्यष्टि अतिजगती अतिविराट् इत्यादिक छंद हैं ॥४१॥ चार चार अक्षर बढायवैसौ बनै हैं यह वेदवाणी कर्म-काण्डौमें विधिवाक्यौंसै क्या प्रतिपादन करती है और मंत्रवाक्यौंसै देवता काण्डमें किसका प्रकाश करती है ज्ञानकाण्डमें यही वेदवाणी काहेको अनुवाद करकै विकल्प बनावे हैं या प्रकार वेदवाणीके तात्प-र्यको मेरे सिवाय जानवेकी कहीकी सामर्थ्यनहीं ॥ ४२ ॥ वेदवाणी देवतारूप मेरौही प्रतिपादन करै है यज्ञरूप मेरौही प्रतिपादन करै है और (वासो आकाश उत्पन्न भयौ) इत्यादि वाक्यनसौ विकल्प कथन कर पीछे निराकरण करै हैं सोइ मेरौही स्वरूप है सब वेदको

अथ द्वाविंशतितमोऽध्यायः ।

उद्धव उवाच ॥ कति तत्त्वानि विश्वेश संख्यातान्यृषिभिः प्रभो ॥ नवैकादश पञ्च त्रीण्यात्थ त्वमिह शुश्रुम ॥१ ॥ केचित्षड्विंशतिं प्राहुरपरे पञ्चविंशतिम् ॥ सप्तैके नव षट् केचिच्चत्वार्येकादशापरे ॥ २ ॥ केचित्सप्तदश प्राहुः षोडशैके त्रयोदश ॥ एतावत्त्वं हि संख्यानामृषयो यद्विवक्षया ॥ गायन्ति पृथगायुष्मन्निदं नो वक्तुमर्हसि ॥ ३ ॥

तात्पर्य यही है कि परमेश्वर परमार्थ रूप है भेद मायामात्र है या प्रकार जो ओंकारमें अर्थ है वही सब काण्डनमें है जैसे अंकुराकार सशाखा प्रशाखा फलपुष्पादि सबमें आजाय हैं ॥ ४३ ॥

इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां एकादशस्कन्धे
एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

बाईसके अध्यायमें तत्त्वनकी संख्याके अविरोधको और प्रकृति-पुरुषको विवेक और जन्ममरणको प्रकार कहैहैं ॥उद्धव पूछैहैं हे विश्वेश्वर ! हे प्रभो ! कितने एक महात्मा तत्वनकी संख्यामें विवाद करै है विनने अपने शास्त्रनमें तत्वनकी संख्या पृथक् २ करीहै आप सब मिलायकै तत्वनकी संख्या अट्ठाईस कहे हैं यह आपके मुखसों सुनो है ॥१॥ कोऊ छब्बीस कहैहैं, कोऊ सात कहैहैं, कोऊ नौ कहैहैं, कोऊ छै कहैहैं, कोऊ चारि कहैहैं, कोई ग्यारह कहैहैं, कोई सत्रह कहैं हैं, कोई सोल्है कहैहैं, कोऊ तेरह कहैहैं ॥ २ ॥ ऋषीश्वर जा प्रयोजनके अर्थ इतनी संख्या भिन्न भिन्न कहैहैं हे चिरंजीव ! यह मोय समझाकै कहो ॥ ३॥

श्रीभगवानुवाच ॥ युक्तं च सन्ति सर्वत्र भाषंते ब्रा-
ह्मणा यथा ॥ मायां मदीयामुद्गृह्य वदतां किं नु दुर्घ-
टम् ॥ ४ ॥ नैतदेवं यथात्थ त्वं यदहं वच्मि तत्तथा ॥
एवं विवदतां हेतुं शक्तयो मे दुरत्ययाः ॥ ५ ॥ यासां
व्यतिकरादासीद्विकल्पो वदतां पदम् ॥ प्राप्ते शमद-
मेऽप्येति वादस्तमनु शाम्यति ॥ ६ ॥ परस्परानुप्रवे-
शात्तत्त्वानां पुरुषर्षभ ॥ पौर्वापर्यप्रसंख्यानं यथा व-
क्तुर्विवक्षितम् ॥ ७॥ एकस्मिन्नपि दृश्यन्ते प्रविष्टानी-
तराणि च ॥ पूर्वस्मिन् वाऽपरस्मिन्वा तत्त्वे तत्त्वानि
सर्वशः॥८॥ पौर्वापर्यमतोऽमीषां प्रसंख्यानमभीप्स-
ताम्॥यथा विविक्तं यद्वक्त्रं गृह्णीमो युक्तिसंभवात्॥९॥

श्रीकृष्णजी बोले ब्राह्मण जैसे कहैहैं सो युक्त है, ये तत्त्व सर्वत्र है मेरी मायाकों अंगीकार करिकैं कहे हैं, जा मायामें काहू प्रकारको कहनौ अशक्य नहींहै ॥ ४ ॥ तुम जैसें कहो यह तैसें नहीं जो मैं कहोंहों सत्य है या प्रकार विन तत्वनके मूल कारणमें जो ब्राह्मणनको विवाद है वह यथार्थ रूपसो देखौ जाय तौ अपने २ स्वभावके अनुसार परिणत हैवेवारे मायाके सत्वादिगुणही विवादमें कारण हैं ॥ ५ ॥ जिन शक्तिनके क्षोभते विवाद कर्तानको भेद आश्रय भयो है जब शम प्राप्त होवे सौ भेद दूरि होतौ भेद जायवेके पीछे विवाद शांत है जायहै ॥ ६॥ हे पुरुषनमें श्रेष्ठ ! तत्वनके परस्पर अनुप्रवेशतें कार्य्यकारणरूप तत्वनकी संख्या वक्ताकी इच्छानुसार हो सके है ॥ ७ ॥ अब अनुप्रवेशको कहै हैं एकही तत्वमें सब तत्त्व कारणमें अथवा कार्यमें प्रविष्ट दीखै है जैसे मृत्तिकामें घट घटमें मृत्तिका अन्योन्य प्रविष्ट है ॥ ८ ॥ इन तत्वनको कार्य्यकारण भाव और

अनाद्यविद्यायुक्तस्य पुरुषस्यात्मवेदनम् ॥ स्वतो न संभवादन्यस्तत्त्वज्ञो ज्ञानदो भवेत् ॥ १० ॥ पुरुषेश्वरयोरत्र न वैलक्षण्यमण्वपि ॥ तदन्यकल्पनाऽपार्था ज्ञानं च प्रकृतेर्गुणः ॥ ११ ॥ प्रकृतिर्गुणसाम्यं वै प्रकृतेर्नात्मनो गुणाः ॥ सत्त्वं रजस्तम इति स्थित्युत्पत्त्यन्तहेतवः ॥ १२ ॥ सत्त्वं ज्ञानं रजः कर्म तमोऽज्ञानमिहोच्यते ॥ गुणव्यतिकरः कालः स्वभावः सूत्रमेव च ॥ १३ ॥

न्यून आदिक संख्याकों वादीनके मध्य जैसें कहिवेकी इच्छासौं जैसो कि जिह्वा जा प्रकार प्रवृत्त होयहै वह वैसेही सिद्ध करसकै है हम या सबको संभव जानें हैं ॥ ९ ॥ जीव ईश्वर जो चैतन्यरूप हैं विनको भेद अभेद मानवेके कारणकूं कहौं हूं जो जीव अनादि कालसौं अविद्यासौं संयुक्त है वाको अपने स्वरूपको ज्ञान स्वयं नहीं है सके है वाको ज्ञान दाता सर्वज्ञ ईश्वर पृथक् है ऐसो जानके जीव ईश्वरमें भेद मानवेवारेनके मतमें चौवीस तत्व पच्चीसवौ जीव और छव्वीसवौ ईश्वर तत्व है ॥ १० ॥ तत्वसंख्या विषें भेद कल्पना व्यर्थ है, क्योंकि जीव ईश्वर दोनोंनके चैतन्य हैंवेसौ विनमें कुछ भेद नहीं और ऐसौ मानवेवारे पच्चीस तत्व कहे हैं ज्ञान प्रकृतिको गुण हैं तातें प्रकृतिमें गिनो है यह एक पक्ष है ॥ ११ ॥ अहो ज्ञान तो जीवको धर्म है प्रकृतिको गुण कैसें हैं (तहां कहें है) तीनों गुणनकी समान अवस्था प्रकृति है, गुण प्रकृतिहीके है आत्माके नहीं, सत्व रज तम गुण उत्पत्ति पालन प्रलयके कारण हैं ॥ १२ ॥ सत्वमय ज्ञान प्रकृतिको गुण है, कर्म रजोगुणको गुण है अज्ञान तमोगुणको गुण है, और स्वभाव ये महत्तत्वको स्वरूप है काल ईश्वरको स्वरूप है यासौं

पुरुषः प्रकृतिर्व्यक्तमहंकारो नभोऽनिलः ॥ ज्योति-
रापः क्षितिरिति तत्त्वान्युक्तानि मे नव ॥ १४॥ श्रोत्रं
त्वग् दर्शनं घ्राणो जिह्वेति ज्ञानशक्तयः ॥ वाक्पाण्यु-
पस्थपाय्वङ्घ्रिकर्माण्यङ्गोभयं मनः ॥ १५॥ शब्दः
स्पर्शो रसो गन्धो रूपं चेत्यर्थजातयः ॥ गत्युक्त्यु-
त्सर्गशिल्पानि कर्मायतनसिद्धयः ॥ १६ ॥ सर्गादौ
प्रकृतिर्ह्यस्य कार्यकारणरूपिणी ॥ सत्त्वादिभिर्गुणै-
र्धत्ते पुरुषोऽव्यक्त ईक्षते॥ १७॥ व्यक्तादयो विकुर्वाणा
धातवः पुरुषेक्षया ॥ लब्धवीर्याः सृजन्त्यण्डं संहताः
प्रकृतेर्बलात् ॥ १८॥

काल स्वभाव भिन्न तत्व नहीं है मैंने जो अट्ठाईस तत्व कहे हैं तिनमें पूर्वोक्त पच्चीस और तीन गुण यह सब मिलायकें अट्ठाईस होय हैं ॥ १३ ॥ पुरुष, प्रकृति, महत्तत्व, अहंकार, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी ये मैंने नौ तत्व कहे हैं ॥ १४ ॥ कर्ण, त्वचा, नेत्र, नासिका, जिह्वा, ये पांच ज्ञानेन्द्रिय हैं वाणी, हाथ, पांव, उपस्थ, गुदा, ये पांच कर्मेंद्रिय हैं हे उद्धव ! ज्ञान और कर्म रूप मन यह ग्यारह तत्व है ॥ १५ ॥ शब्द, स्पर्श, रस, गंध, रूप ये पांच ज्ञानेन्द्रियके विषय हैं, गति वचन मलत्याग ग्रहण आनंद ये पांच कर्मेन्द्रियके फल हैं, ये सब इंद्रिनके फल हैं, भिन्न नहीं यासों अट्ठाईसके भीतर हैं तत्व नहीं हैं ॥१६॥ या विश्वकी आदि विषें कार्य्य कारणरूपिणी प्रकृति सत्वादि गुणसों या विश्वकी उत्पत्ति अंत आदि अवस्था धरेंहै, निर्विकार पुरुष केवल साक्षी भयो देखेहै, यातें विकारयुक्त प्रकृतितें पुरुष न्यारोहै ॥ १७ ॥ प्रकृतितें उपजे महत्तत्वादिक धातु विकारकों पायकें पुरुषके ईक्षणसों बल पाय महत्त-

सप्तैव धातव इति तत्रार्थाः पञ्च खादयः ॥ ज्ञानमा-
त्मोभयाधारस्ततो देहेन्द्रियासवः ॥ १९ ॥ षडित्य-
त्रापि भूतानि पञ्च षष्ठः परः पुमान् ॥ तैर्युक्त आत्म-
संभूतैः सृष्ट्वेदं समुपाविशत् ॥२०॥ चत्वार्येवेति तत्रा-
पि तेज आपोऽन्नमात्मनः ॥ जातानि तैरिदं जातं
जन्मावयविनः खलु ॥ २१ ॥ संख्याने सप्तदशके
भूतमात्रेन्द्रियाणि च ॥ पञ्च पञ्चैकमनसा आत्मा
सप्तदशः स्मृतः ॥ २२ ॥

त्वादिक परस्पर मिलि प्रकृतिकों आश्रय करि ब्रह्मांडरूप कार्य्यकों उपजामें है यासों संघातकों प्राप्त हैके विनके उत्पन्न किये देहादिक पदार्थ विन्हीके अन्तर्भूत है जाय हैं यासों देहादिक पृथक् तत्व नहीं है ॥ १८ ॥ किन्हींके मतमें आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी ये पांच पदार्थ और द्रष्टा जीव, आकाशादि पदार्थकों और जीवकों आधार आत्मा, ये सात तत्व हैं या मतमें प्रकृति महत्तत्व और अहंकार इन कारण तत्वनको आकाशादिमें अन्तर्भाव मानोहै इन्ही सातोंनसों देह इन्द्रियादिकी उत्पत्ति मानीहै ॥ १९ ॥ जिनके मतमें छः तत्व हैं वे पांच तो पंचमहाभूत और छठे परमात्माकों मानें हैं या मतमें परमात्मा अपनेसों उत्पन्न भये भूतनसों जगत्को रचके वामें प्रविष्ट है यासों सब पदार्थनको परमात्मामें अंतर्भाव है ॥ २० ॥ जिनके मतमें चार तत्वहैं विन्में आत्मा और आत्मासों प्रादुर्भूत भये तेज जल पृथ्वी यही चार तत्वहैं इनसों सब जगत् उत्पन्न भयो है सब कार्यको वामें अन्तर्भाव है ॥ २१ ॥ सत्रह तत्वके मत विषेमें पंच महाभूत पांच शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध पांच ज्ञानेंद्रिय एक मन सत्रहों आत्मा ॥ २२ ॥

तद्वत्षोडशसंख्याने आत्मैव मन उच्यते ॥ भूते-न्द्रियाणि पञ्चैव मन आत्मा त्रयोदश ॥२३॥ एका-दशत्वमात्माऽसौ महाभूतेन्द्रियाणि च ॥ अष्टौ प्र-कृतयश्चैव पुरुषश्च नवेत्यथ ॥ २४ ॥ इति नानाप्रसं-ख्यानं तत्त्वानामृषिभिः कृतम् ॥ सर्वं न्याय्यं युक्ति-मत्त्वाद्विदुषां किमशोभनम् ॥ २५॥ उद्धव उवाच ॥ प्रकृतिः पुरुषश्चोभौ यद्यप्यात्मविलक्षणौ ॥ अन्यो-न्यापाश्रयात्कृष्ण दृश्यते न भिदा तयोः ॥ २६ ॥ प्रकृतौ लक्ष्यते ह्यात्मा प्रकृतिश्च तथात्मनि ॥ एवं मे पुण्डरीकाक्ष महान्तं संशयं हृदि ॥ छेत्तुमर्हसि सर्वज्ञ वचोभिर्नयनैपुणैः ॥ २७॥

सोलह तत्वके मत विषे आत्माही मन कह्यौ है और तेरहके मतविषे पंचमहाभूत और पांच ज्ञानेंद्रिय एक मन जीवात्मा और परमात्मा ये तेरह है ॥ २३ ॥ ग्यारहेंके मत विषें पंचमहाभूत और पांच ज्ञानें-द्रिय एक आत्मा नौके पक्षमें पांच महाभूत प्रकृति महत्तत्व अहंकार और पुरुष ये कहे है ॥ २४ ॥ या प्रकार ऋषियननें तत्वनकी पृथक् २ संख्या कही है यह सब प्रकृतिसौ पुरुषको भिन्न जतायवेको है यह सब यथार्थ है कारण कि विद्वानको कह्यो और न्यायसिद्ध है विद्वान् कहा नहीं कहसकैहैं ॥ २५॥ उद्धवजी बोले हे कृष्ण ! प्रकृति और पुरुष जिनमें एक जड और एक चैतन्य है यद्यपि यह स्वभा-वसोंही भिन्न हैं तथापि परस्परको त्याग करते विनकी प्रीति नहीं होय है यासौ भेद नहीं देखौ जायहै ॥२६॥ हे पंकजलोचन ! आत्मा देहमें भासै है देह आत्माको ग्रहणकरके प्रतीत होयहैं में हू या

त्वत्तो ज्ञानं हि जीवानां प्रमोषस्तेऽत्र शक्तितः ॥ त्व-
मेव ह्यात्ममायाया गतिं वेत्थ न चापरः ॥ २८ ॥ श्री-
भगवानुवाच ॥ प्रकृतिः पुरुषश्चेति विकल्पः पुरुष-
र्षभ ॥ एष वैकारिकः सर्गो गुणव्यतिकरात्मकः
॥ २९ ॥ ममाङ्ग माया गुणमय्यनेकधा विकल्पबु-
द्धिश्च गुणैर्विधत्ते ॥ वैकारिकस्त्रिविधोऽध्यात्ममेक-
मथाधिदैवमधिभूतमन्यत् ॥ ३० ॥ दृग्रूपमार्कं वपुरत्र
रन्ध्रे परस्परं सिद्ध्यति यः स्वतः खे ॥ आत्मा यदे-
षामपरो य आद्यः स्वयाऽनुभूत्याऽखिलसिद्धसि-
द्धिः ॥ एवं त्वगादि श्रवणादि चक्षुर्जिह्वादि नासादि
च चित्तयुक्तम् ॥ ३१ ॥

प्रकार दोनोनको अभेद प्रकाशवैसो देहको आत्मासौ भेद नहीं देखौ जायहै हे सर्वज्ञ ! मेरे या संदेहको युक्तिके वचननसौं दूर करो ॥ २७ ॥ तुम्हारी कृपासौंही संसारी जीवनको ज्ञान होयहै तुम्हारी मायासौंही अज्ञान भयो है आपके सिवाय आपकी मायाकी गति कोई नहीं जाने हैं ॥ २८ ॥ श्रीभगवान् बोले देह और आत्मामें बहुत विलक्षणता है गुणनके क्षोभसौं होवेवारो यह देह तो विकारी है आत्मा विकाररहित है ॥ २९ ॥ हे उद्धव ! मेरी गुणमयी मायाने अनेक भांति भेद और भेदके ज्ञान रचै है यद्यपि या देहमें अनेक भेद है तथापि तीनि प्रकारके कहे हैं, एक अध्यात्मरूप एक अधिदैवरूप एक अधिभूतरूप ॥ ३० ॥ दृष्टि अध्यात्म है और अधिभूत नेत्र गोलक विषे प्रविष्ट सूर्य्यको अंश अधिदैव है नेत्रनकरिकै रूप जानिये सो नेत्रनकी प्रवृत्ति प्रेरणवारे देवता बिना नहीं होय है याते

योऽसौ गुणक्षोभकृतो विकारः प्रधानमूलान्महतः प्रसूतः॥ अहं त्रिवृन्मोहविकल्पहेतुर्वैकारिकस्तामस ऐन्द्रियश्च ॥ ३२ ॥ आत्मा परिज्ञानमयो विवादो ह्यस्तीति नास्तीति भिदाऽर्थनिष्ठः ॥ व्यर्थोऽपि नैवो-परमेत पुंसां मत्तः परावृत्तधियां स्वलोकात् ॥ ३३ ॥

अधिष्ठात्री देवतासों नेत्रनकी प्रवृत्ति, तातें रूपज्ञान होय हैं, ऐसे ये तीनों २ परस्पर सिद्ध होय हैं, जो आकाश विषे सूर्य है, सो आपुतें सिद्ध है, यातें आत्मा अध्यात्मादिकनको कारण है, याते भिन्न हैं, अपनें आपतें सिद्ध प्रकाश करिकै परस्पर प्रकाश करवेवारेनके हू प्रकाशक है जैसें नेत्रमें तीनि प्रकार हैं, ऐसे त्वचा अध्यात्म स्पर्श अभिभूत वायु अधिदैव, श्रवण अध्यात्म, शब्द अधिभूत दिशा अधिदैव, जिह्वा अध्यात्म रस अधिभूत, वरुण अधिदैव श्रवण अध्यात्म, गंध अधिभूत, अश्विनीकुमार अधिदैव, चित्त अध्यात्म, जाको चित्त करि जानियें ऐसों अधिभूत वासुदेव अधिदैव, मन अध्यात्म जाकों मन कीजे सो अधिभूत चंद्रमा अधिदैव, बुद्धि अ-ध्यात्म जो जानियें ऐसैही अधिभूत ब्रह्मा, अधिदैव अहंकार, अध्या-त्म अहंकार करिकें जो कीजे सो अधिभूत रुद्र अधिदैव ॥ ३१ ॥ अहंकार तीनि प्रकारको है, सात्विक राजस तामस गुणके क्षोभकर्त्ता कालतें और प्रकृतिके मूल महत्तत्वतें उत्पन्न भये विकार हैं, यही अधिदैव अध्यात्म अधिभूतरूपी मोहसों देहादिके विकल्पको कारण है जब देहादि अहंकार मिटजाय तब आत्माकी प्रतीति होसके है ॥ ३२ ॥ आत्माको न जानिवो याको रूप है, यह है यह नहीं ऐसो विवाद, भेदके अर्थमें निष्ठा और यह विवाद व्यर्थहू है तथापि स्वरू-पभूत मोतें विमुख जिनकी बुद्धि है तिनको निवर्त्त नहीं होयहै, परंतु

उद्धव उवाच ॥ त्वत्तः परावृत्तधियः स्वकृतैः कर्म-
भिः प्रभो ॥ उच्चावचान्यथा देहान्गृह्णन्ति विसृज-
न्ति च ॥ ३४ ॥ तन्ममाख्याहि गोविन्द दुर्विभा-
व्यमनात्मभिः ॥ न ह्येतत् प्रायशो लोके विद्वांसः
सन्ति वञ्चिताः ॥ ३५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मनः
कर्ममयं नृणामिन्द्रियैः पञ्चभिर्युतम् ॥ लोकाल्लोकं
प्रयात्यन्य आत्मा तदनुवर्तते ॥३६ ॥ ध्यायन्मनोऽ-
नुविषयान् दृष्टान् वाऽनुश्रुतानथ॥उद्यत्सीदत् कर्म-
तन्त्रं स्मृतिस्तदनु शाम्यति ॥ ३७ ॥

विवादकारि किये कर्मनकरि ऊंच नीच देह विषें जन्म मरण पावे है ॥ ३३ ॥ उद्धवजी बोले हे प्रभो ! तुमतें जिनकी बुद्धि विमुख है वे आपुही करि करे कर्मनसै नीच देहनको ग्रहण करें हैं, व्यापक आत्माको देहते और देहमें जाइवो, अकर्ताको कर्म नित्यको जन्म मरण क्यों संभवे हैं ॥ ३४ ॥ हे गोविंद ! अजितेंद्रियनको जान्ने अयोग्य यह मोसों कहो लोकविषें बहुधा याके जाननवारे नहीं हैं क्यों कि वे माया करिकैं मोहित हैं ॥ ३५ ॥ श्रीभगवान् बोले कर्ममय मनुष्यनको मन पांच इंद्रियन करिकैं सहित या लोकतें और लोकमें जाय हैं और मनतें भिन्न आत्मा अहंता ममता करिकैं मनके पीछे जाय है लिंगदेहसौ यह सब बन सकै है ॥ ३६ ॥ कर्मनके आधीन मन या लोकके और परलोकके विषें ध्यान करतो विन विषयन विषें प्रकट होय हैं, और पहिले विषयन विषें लीन होय हैं ता पीछे वाको पहिले पिछलेकौ स्मरण जातौ रहै हैं ॥ ३७ ॥

विषयाभिनिवेशेन नात्मानं यत्स्मरेत् पुनः॥ जन्तोर्वै कस्यचिद्धेतोर्मृत्युरत्यन्तविस्मृतिः॥ ३८॥ जन्म त्वात्मतया पुंसः सर्वभावेन भूरिद॥ विषयस्वीकृतिं प्राहुर्यथा स्वप्नमनोरथाः॥ ३९॥ स्वप्नं मनोरथं चेत्थं प्राक्तनं न स्मरत्यसौ॥ तत्र पूर्वमिवात्मानमपूर्वं चानुपश्यति॥ ४०॥ इन्द्रियायनसृष्ट्येदं त्रैविध्यं भाति वस्तुनि॥ बहिरन्तर्भिदाहेतुर्जनोऽसज्जनकृद्यथा ४१

कर्मनके द्वारा दूसरे देहमें अत्यन्त अभिनिवेश हैवेपें वह देवतादिकको देह हो तौ हर्षसो अधम हो तौ शोक भयसौं जीवको प्रथम देहको विस्मरण होनौ और वाय देहकौ अहंकार नष्ट होनौ यही आत्माकौ मरण है कुछ देहकी समान वाकौ मरण नहीं होय है ॥ ३८॥ हे दानी! मनकौ दूसरे देहके साथ सम्बन्ध होवेपै उसमें अत्यंत अहंकार प्रादुर्भूत होय है मनके अध्याससौ आत्मामें ता देहकौ ममत्व होय है यही आत्माकौ जन्म है ॥ ३९॥ जैसे एक स्वप्न देखनेके अनन्तर दूसरौ स्वप्न होय है तथा एक मनोरथके उपरान्त दूसरौ होय है तब पहलौ मनोरथ और स्वप्न विस्मृत हो जाय है ऐसेही आत्मा मनके अभ्याससौ अपनेमें नवीन उत्पन्न मानौ है या प्रकारकी दशा हैवेसौ मनके अध्यासके कारण एक देहको अभिमान नष्ट हैवेपै दूसरे देहको तीव्र अभिमान हैवेपै यह अपने पूर्व जन्मको नहीं जानै है ॥ ४०॥ इन्द्रियनको आश्रय मनके और देहके अभिनिवेशसो उत्पत्तिद्वारा आत्मविषें उत्तम मध्यम नीचता मिथ्या होवेपैहू प्रकाशित होय हैं उन्हीके द्वारा आत्मा बाह्यविषयनको और अंतरविषय सुखादिकनकों देखे हैं, जैसे जीव स्वप्नमें झूठे बहुत देहनको करतौ देखतौ बहुत रूप भासे है अथवा जैसे दुष्ट पुत्रको पिता

नित्यदा ह्यङ्ग भूतानि भवन्ति न भवन्ति च॥ का-
लेनालक्ष्यवेगेन सूक्ष्मत्वात्तन्न दृश्यते॥ ४२॥ यथा-
ऽर्चिषां स्रोतसां च फलानां वा वनस्पतेः॥ तथैव स-
र्वभूतानां वयोऽवस्थादयः कृताः॥ ४३॥

पुत्रके प्रेमसौ पुत्रके शत्रु मित्रनकों अपनो शत्रु मित्र मान लेय है ऐसे आत्मा मनके अभिनिवेशसौ देहको अपनो जानो है॥ ४१॥ जाकी तीव्र गति जान्नेमें नहीं आवे ऐसे कालके निमित्तसौ यह शरीर क्षण क्षणमें उत्पन्न होवे और मरे हैं परन्तु कालकी सूक्ष्मताके कारण अज्ञानी या जन्ममरणको नहीं जानें॥ ४२॥ नित्य जन्म मरण होय है ताको प्रमाण कहूं यद्यपि देखिवेमें नहीं आवें है, तौहू अनुमान करिकैं जन्म बतामें हैं, जैसे ज्योतिपहिले कोमल होय हैं, पीछे कछुक अधिक होयहै, पीछे अति तीक्ष्ण होयहै, जैसें वृक्षको फल पहिले कच्चो भयो पीछे कछु पीरो भयो, पीछें परिपक्क भयो, जैसे क्रमतें भिन्न अवस्था काल करिकै होयहैं परि जानी नहीं जाय तैसें याही अनुमानसौ शरीरकीहू कालसौ नित्य वय अवस्थादिक होयहैं, परन्तु जानी नहीं जाइ है प्रथम अवस्थाको त्याग दूसरेको ग्रहण यही जन्म मरण नित्य होय है यह जगत् अवस्थाके भेदवारो है याहीसो क्षणक्षणमें उत्पत्ति नाशको प्राप्त होयहै अवस्थाके भेदवारेनकी यही दशा है॥ ४३॥

---

१ प्रयोजन यह है कि जैसे दरियावको जल और दीपकका लोइ ये निरंतर बदलते रहे है ऐसेही देहहू क्षणमें अन्य २ होतो रहे है फिर जो कोई कहै कि वही जल है यह वही दीपककी लोय है यह वही पुरुष है वे सब मूरख है या भाष्यमें लिखो है कि (न हि कश्चित् स्वस्मिन् नात्मनि क्षणमवातिष्ठते वर्द्धते यावदनेन वर्द्धितव्यमपचयेन युज्यते) कोई एक क्षणहू अपने स्वरूपमें स्थिर नहीं होय है या बढे है या घटे है॥

सोऽयं दीपोऽर्चिषां यद्वत्स्रोतसां तदिदं जलम् ॥ सो-
ऽयं पुमानिति नृणां मृषा गीर्धीर्मृषायुषाम् ॥ ४४ ॥
मा स्वस्य कर्मबीजेन जायते सोऽप्ययं पुमान् ॥ म्रि-
यते वाऽमरो भ्रान्त्या यथाऽग्निर्दारुसंयुतः ॥ ४५ ॥
निषेकगर्भजन्मानि बाल्यकौमारयौवनम् ॥ वयोम-
ध्यं जरा मृत्युरित्यवस्थास्तनोर्नव ॥ ४६ ॥ एता
मनोरथमयीर्ह्यन्यस्योच्चावचास्तनूः ॥ गुणसङ्गादुपा-
दत्ते क्वचित्कश्चिज्जहाति च ॥ ४७ ॥

यहां तर्क करें हैं, नित्त अवस्था भेदसौं जन्म मरण होवेवारनकों ऐसो ज्ञान क्यों होय है कि यह वही देह है तहां दृष्टांत करिकैं कहे हैं जैसे जातिनके साहृश्य करिकैं यह वही दीप है ऐसो ज्ञान होयहै जा प्रकार जल क्षणक्षणमें बदलै है परन्तु नयौ जल आयवेपैहू विन्है वही जल है यह भ्रांति होय है याही प्रकार शरीर क्षणक्षणमें परिवर्तित होय हैं परन्तु यह वही शरीर है ऐसी अज्ञानी पुरुष भ्रांतिसौं वाणी कह्यौ करे हैं ॥४४॥ अहो जाको देहाभ्यास है ताको कर्म जन्म मरण सब है, औरनको नहीं सो क्यों कर संभव है तहां कहे है वस्तुते देहाध्यासवंतहूको जन्म मरण नहीं अध्यासवंत पुरुष अपने कर्म बीज करिकैं न उत्पन्न होय है न जन्म लेय है भ्रांतिसौ अजन्मा होवेपै हू जन्मतौसौ और हैवेपै हू मरतौसौ प्रतीत होयहै जैसै महाभूत ये तेजरूप अग्नि प्रलयकालपर्यंत नहीं स्थित है तोहू काष्ठके संयोग वियोग करि जन्म नाशको पाउ तौसौ प्रतीत होय है ॥ ४५ ॥ अब देहकी अवस्थानकों कहैं हैं देहको प्रथम तो उदरमें प्रवेश पीछें गर्भवास होई पीछे जन्म फेरि बाल्य कौमार यौवन पैंतालीस वर्षपर्यंत पीछें साठि तांई मध्यम वय उपरांत जरा पीछें मृत्यु ये तो देहकी नौ अवस्था हैं ॥४६॥ ये मनोरथमयी अवस्था ऊंच नीच देहकों हैं सत्व

आत्मनः पितृपुत्राभ्यामनुमेयौ भवाप्ययौ ॥ न भ-
वाप्ययवस्तूनामभिज्ञोद्वयलक्षणः ॥४८॥ तरोर्बीज-
विपाकाभ्यां यो विद्वान् जन्मसंयमौ ॥ तयोर्विलक्ष-
णो द्रष्टा एवं द्रष्टा तनोः पृथक् ॥४९॥ प्रकृतेरेवमा-
त्मानमविविच्याबुधः पुमान् ॥ तत्त्वेन स्पर्शसंमूढः
संसारं प्रतिपद्यते ॥ ५० ॥ सत्त्वसङ्गादृषीन् देवान्
रजसाऽसुरमानुषान् ॥ तमसा भूततिर्यक्त्वं भ्रामि-
तो याति कर्मभिः ॥ ५१ ॥

रज तम गुणके संगतें आपुकों मानिलेइ है तामें कोइक ईश्वरके अनुग्रहतें भक्त इन अवस्थानकों बहुत विवेक ज्ञानकरिकैं छोडे हैं ॥ ४७ ॥ यदि कहो कि देहके जन्म मरणमें तो यह मूर्छित रहै है यासो इतनौ ज्ञान कैसे है सकै तौ सुनो, पिता मरे है वाकी क्रिया करे है, तब देहको नाश देखे है पुत्र जन्म होवे है तब जातकर्म करे है, तहां देहको जन्म देखैहै, ता अनुमान करिकैं अपनें देहहूको जन्म मरन जानैहै, परन्तु, जन्म मरणवंत देहको द्रष्टाके जन्म मरण नहीं होते ॥ ४८ ॥ जैसे धानादिके बीजसे जन्मको और पक जानेसे मरणको जानवेवारो जो द्रष्टा है वह वृक्ष और फलसौ भिन्न है याही प्रकार देहके जन्म मरण जानवेवारो द्रष्टा देहसो पृथक् है ॥ ४९ ॥ या भांति शरीरादिसो आत्माकौ यथार्थ विचार करनौ चाहिये यदि यह विचार न कियौ जाय तौ विषयमोहमें गिरवेके कारण यह मूढ प्राणी संसारमें गिरै है ॥५०॥ गुण भेद करिकैं त्रिविध संसार कहैं हैं, तहां एकएकके दो दो भेद हैं सो कहै हैं सतोगुणके संगतें ऋषि देवता होय हैं, रजोगुण करिकैं असुर और मनुष्य होय हैं, तमोगुण करिकैं भूत पशु पक्षी सब होय हैं, सो अपनें कर्मन करिकैं भ्रमें हैं वा

नृत्यतो गायतः पश्यन् यथैवानुकरोति तान् ॥ एवं
बुद्धिगुणान् पश्यन्ननीहोऽप्यनुकार्यते ॥ ५२ ॥ यथा-
ऽम्भसा प्रचलता तरवोऽपि चला इव ॥ चक्षुषा भ्रा-
म्यमाणेन दृश्यते भ्रमतीव भूः ॥५३॥ यथा मनोरथ-
धियो विषयानुभवो मृषा ॥ स्वप्नदृष्टाश्च दाशार्ह तथा
संसार आत्मनः ॥ ५४ ॥ अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृ-
तिर्न निवर्त्तते॥ ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थाग-
मो यथा ॥ ५५ ॥

वा योनिनविषें परें हैं ॥ ५१ ॥ अहो आत्मा तो कर्त्ता नहीं तो कर्मन करिकें क्यों भ्रमण होय है यापै कहै हैं जैसे नाचते और गाते पुरुषनको देखकै यह पुरुष विनमें स्थित गति और तालको अपनें मनमें अनुवर्तन करै है याही प्रकार बुद्धिके गुणनके अवलोकनसो गुणनकी सामर्थ्यसो अकर्ता पुरुष विन्हें अपनेमें मान लेयहै ॥ ५२ ॥ द्रष्टाहूमें यह धर्म होयहै तहां दृष्टांत कहैं है जैसें जल करिकें तीरके वृक्ष दौरते दीखै हैं जैसे दृष्टिके भ्रमसे पृथ्वीहू भ्रमतसी लगैहै तो ये धर्म वृक्षमें भूमिमें नहीं यह अपने दोषतें दीखै हैं याही प्रकार दृश्यको धर्म द्रष्टामें स्फुरायमान होय है और आनंदादि आत्माके लक्षण हैंवेपैभीहू विषयनके गुणसो प्रतीत होय हैं ॥५३॥ कोऊ कहै कि आत्मा भोग करैहै सोहू मिथ्या है, तहां दृष्टांत कहै हैं जैसे मनोरथकी बुद्धि मिथ्या है, और स्वप्नमें देखि बुद्धि सब मिथ्या है याही प्रकार आत्मामें प्रतीत होतो भयो विषयनको अनुभवरूप संसारहू असत् है ॥ ५४ ॥ तो निवृत्तिके उपायको प्रयोजन कहाहै, यापै कहतेहैं यद्यपि स्वप्न असत्य है परंतु विन विषयनको ध्यान करनेवारे पुरुषके वा अवस्थामें स्वप्नके दुःख नहीं जाते याही प्रकार संसारके मिथ्या होवेपें विषयन-

तस्मादुद्धव मा भुङ्क्ष्व विषयानसदिन्द्रियैः ॥ आ-
त्माऽग्रहणनिर्भातं पश्य वैकल्पितं भ्रमम् ॥५६॥
क्षिप्तोऽवमानितोऽसद्भिः प्रलब्धोऽसूयितोऽथवा ॥
ताडितः सन्निबद्धो वा वृत्त्या वा परिहापितः ॥ ५७ ॥
निष्ठितो मूत्रितो वाऽज्ञैर्बहुधैवं प्रकम्पितः॥ श्रेयस्का-
मः कृच्छ्रगत आत्मनाऽऽत्मानमुद्धरेत् ॥५८॥ उद्धव
उवाच ॥ यथैवमनुबुध्येयं वद नो वदतांवर ॥ सुदुः-
सहमिमं मन्ये आत्मन्यसदतिक्रमम् ॥५९॥ विदु-
षामपि विश्वात्मन् प्रकृतिर्हि बलीयसी ॥ ऋते त्वद्ध-
र्मनिरताञ्छान्तांस्ते चरणालयान् ॥ ६० ॥ इति श्री-
भागवते एकादशस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

कौ ध्यान करवेवारे पुरुषके जन्ममरण नहीं जाते ॥ ५५ ॥ हे उद्धव ! तातें तुम ये दुष्ट इंद्रियन करिकै विषयभोग मति करो आत्माके ज्ञान विना यह संसारकौ भ्रम भयौ है॥५६॥कोऊ निंदा करो कोऊ अपमान करो कोऊ उपहास करो कोऊ वंचना करो कोऊ ताडन करो कोऊ रोक राखो वृत्ति छिनायलेहु ॥ ५७ ॥ कोऊ मूत्र डारो जूठनि डारो ब्रह्मनिष्ठा बिगारैं तथापि अपनो कल्याण चाहे सो इतनो कष्ट सहै आत्मा करिकें आत्माको उद्धार करे क्रोध करिकै अपनो धर्म न खोवे ॥ ५८ ॥ अब यहां उद्धव पूछैंहैं हे वक्तानमें श्रेष्ठ ! जैसे तुह्मारो वचन हम अच्छी तरह समझें तैसें कहो नीच अधम पुरुष या प्रकार पीडित करैं तौ वाकौ सहन करनौ महाकठिन है॥५९॥हे विश्वके आत्मरूप ! जो तुह्मारे चरणके आश्रय हैं तुह्मारे धर्ममें तत्पर है शांत है तिनको छोडिकैं अतिपंडितकोहू ऐसे अपराधनको सहन होनौ अति कठिन

अथ त्रयोविंशतितमोऽध्यायः।

बादरायणिरुवाच ॥ स एवमाशंसित उद्धवेन भागवतमुख्येन दाशार्हमुख्यः ॥ सभाजयन् भृत्यवचो मुकुन्दस्तमाबभाषे श्रवणीयवीर्यः ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ बार्हस्पत्य (स वै नात्र) साधुर्वै दुर्जनेरितैः ॥ नसोऽस्त्येव दुरुक्तैर्भिन्नमात्मानं यः समाधातुमीश्वरः ॥ २ ॥ न तथा तप्यते विद्धः पुमान् बाणैः सुमर्मगैः ॥ यथा तुदन्ति मर्मस्था ह्यसतां परुषेषवः ॥ ३ ॥ कथयन्ति महत्पुण्यमितिहासमिहोद्धव ॥ तमहं वर्णयिष्यामि निबोध सुसमाहितः ॥ ४ ॥

है यह मैं मानूंहूं कारण कि स्वभाव बडौ बली होय है ॥ ६० ॥
इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां एकादशस्कन्धे
श्रीभगवदुद्धवसंवादे द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥

अब तेईसके अध्यायमें तिरस्कार सहनको उपाय और भिक्षुगीतके प्रकार करिकैं बुद्धिनसों मनको संयम कहैं हैं और दुर्जननको अपराध सहनको उपाय चारि अध्यायन करिकैं कहैं हैं ॥ शुकदेवजी राजा परीक्षितसों कहैं हैं भक्तनमें मुख्य, यादवनमें श्रेष्ठ ऐसें उद्धवके पूछवेते श्रीकृष्ण मुकुंद अपने सेवकको वचन सराहते उत्तर देत भये जिन भगवान्‌के चरित्र श्रवण करिवेकों परमसुखकारी हैं ॥ १ ॥ हे बृहस्पतिके शिष्य ! या लोक विषें वह साधु नहीं हैं जो दुष्ट वचन करिकैं खेदयुक्त मनकों समाधान न करि सकैं ॥२॥ मर्मस्थानमें लगे बाणनसों विद्ध पुरुष तैसें ताप नहीं पावैहै जैसे मर्ममें लगे दुष्ट वचन करिकैं व्यथा पावैहै ॥३॥ तथापि मेरे कहे उपाय करै ते उपाय कहूंहूं

केन चिद्भिक्षुणा गीतं परिभूतेन दुर्जनैः ॥ स्मरता धृतियुक्तेन विपाकं निजकर्मणाम् ॥ ५ ॥ अवन्तिषु द्विजः कश्चिदासीदाढ्यतमः श्रिया ॥ वार्तावृत्तिः कदर्यस्तु कामी लुब्धोऽतिकोपनः ॥ ६ ॥ ज्ञातयोऽतिथयस्तस्य वाङ्मात्रेणापि नार्चिताः॥ शून्यावसथ आत्मापि काले कामैरनर्चितः॥ ७ ॥

हे उद्धव ! या विषयमें एक अति पवित्र इतिहास है सो मैं तोसूं कहूंहूं हे उद्धव ! तुम भले प्रकार सावधान ह्वैकें सुनो ॥ ४ ॥ कोई एक भिक्षुक हो सो दुर्जन करिकैं पीडित हो धैर्य धारण कर अपने प्रारब्ध कर्मनको भोग मानिके ये कहन लगो ॥ ५ ॥ उज्जैनके देशमें एक ब्राह्मण लक्ष्मी करिकैं अति संपन्न खेती और वाणिज्य करे कामी लोभी महाक्रोधी महाकदर्य्य रहै, कदर्य्यको लक्षण स्मृतिमें कह्यो है आत्माको, धर्मकार्य्यको, पुत्र स्त्री देवता अतिथि सेवकनको दुःख दे सो कदर्य है ॥ ६ ॥ बांधव और अतिथिको वचनसोंभीहू न पूजे धर्मको काम करिके हीन शून्यदेहरूप घरमें भोगनसौं कभी आत्माहूं

१ एक स्त्री पुरुष बडे लोभी थे, किसी त्योहारको स्त्रीने दस पूरी करीं और स्वामीसे कहा चार तुम खाओ दो मैं करनेकी और चार अपने भागकी छः खाऊंगी, पतिने कही मैं द्रव्य लाऊहूं इससे मैं छः खाऊंगा, जब झगडा हुआ तब यह हुई कि जो पहले बोले सो चार खाय, इसी प्रकार दोनों सो रहे, जब दूसरे बहुत दिन चढगया, लोग आये, देखैं तौ चुप पडे हैं उन्होंने जाना कि यह मरगये आंखैं खुली रह गईं तब बांधकै लेचले और जाके चितामें धर दिया, ज्यों अग्नि संस्कार करने लगे तब वोह अपनी स्त्रीसे बोले अरी ! हमही चार खावेंगे घरकू तौ चल, बहुत फजीतो होगयो और लोग भूत समझके भाजे यासे कहैं हैं कि कृपण दुःख सहै, पर खर्च न करै, लोभके मारे अधिक पूरी तौ न कराई परन्तु चुपके पडे रहे बोले नहीं, और मनुष्योंने दश रुपयेका ईंधन इन्हींके रुपयोंसे मंगाया तासे लोभीको धन वृथाही जाय है ॥

दुःशीलस्य कदर्यस्य द्रुह्यन्ते पुत्रबान्धवाः॥ दारा दुहितरो भृत्या विषण्णा नाचरन् प्रियम्॥८॥ तस्यैवं यक्षवित्तस्य च्युतस्योभयलोकतः॥ धर्मकामविहीनस्य चुक्रुधुः पञ्च भागिनः॥९॥ तदवध्यानविस्रस्तपुण्यस्कन्धस्य भूरिद॥ अर्थोऽप्यगच्छन्निधनं बह्वायासपरिश्रमः॥ १०॥ ज्ञातयो जगृहुः किंचित्किंचिद्दस्यव उद्धव॥ दैवतः कालतः किंचिद् ब्रह्मबन्धोर्नृपार्थिवात्॥ ११॥ स एवं द्रविणे नष्टे धर्मकामविवर्जितः॥ उपेक्षितश्च स्वजनैश्चिन्तामाप दुरत्ययाम्॥ १२॥ तस्यैवं ध्यायतो दीर्घं नष्टरायस्तपस्विनः॥ खिद्यतो बाष्पकण्ठस्य निर्वेदः सुमहानभूत्॥ १३॥

न पूज्यो॥ ७॥ ऐसो दुःशील कदर्यके पुत्र बांधव स्त्री बेटी सेवक सब दुःख पामें कोऊ वाकों भलो न कहै॥ ८॥ फेरि वह या प्रकार दोऊ लोकतें भ्रष्ट भयो धर्म काम करिकैं हीन केवल भूतकीसी नाई द्रव्यकी रक्षा करतौ रहै ऐसे पुरुष पर नित्य कर्तव्य पांच महायज्ञनके अंशके भागी देवता क्रोध करत भये॥९॥ विन देवतानके तिरस्कार करिकैं पुण्यको विस्तार सब क्षीण होतभयो, तब अनेक परिश्रम करिकैं युक्त खेती आदि परिश्रम करिकैं कमायो द्रव्यहू नष्ट भयो॥१०॥ श्रीकृष्ण कहैं हैं हे उद्धव! कछुक द्रव्य वाके घरके बांधव ले गये, कितनेऊ द्रव्य चोर ले गये कछुक द्रव्य गृहदाह करि गयो कितनोऊ जहां गाड्योहो तहांतें गयो कछु द्रव्य अधर्मी ब्राह्मण और मनुष्य लेगये, कितनो द्रव्य राज्यद्वारमें गयो॥ ११॥ सो फेरि या प्रकार द्रव्य नष्ट भयेते धर्मकाम करिके रहितभयो, स्वजन कुटुंबी अनादर करतभये, तब अपार चिंताको प्राप्त भयो॥ १२॥ द्रव्य जायवेसो वह

स चाहेदमहो कष्टं वृथात्मा मेऽनुतापितः ॥ न धर्माय न कामाय यस्यार्थायास ईदृशः ॥ १४ ॥ प्रायेणार्थाः कदर्याणां न सुखाय कदाचन ॥ इह चात्मोपतापाय मृतस्य नरकाय च ॥ १५ ॥ यशो यशस्विनां शुद्धं श्लाघ्या ये गुणिनां गुणाः ॥ लोभः स्वल्पोऽपि तान् हन्ति श्वित्रो रूपमिवेप्सितम् ॥ १६ ॥ अर्थस्य साधने सिद्ध उत्कर्षे रक्षणे व्यये ॥ नाशोपभोग आयासस्त्रासश्चिन्ता भ्रमो नृणाम् ॥ १७ ॥ स्तेयं हिंसाऽनृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयो मदः ॥ भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च ॥ १८ ॥

ब्राह्मण अतिचिंता करिकै वा धनको बहुत ध्यान करत संतप्त भयो, गद्गद कंठ ह्वैकें वाकों बहुत वैराग्य होतभयो ॥ १३ ॥ तब यह कहत भयो अहो यह देखो बडोई कष्ट है इतनो बडो भारी मेरौ द्रव्यको परिश्रम वृथाही गयौ जो यह आत्मा संतप्त कियौ न तो धर्मके अर्थ न कामके अर्थ भयो सब वृथाही गयो ॥ १४ ॥ बहुधा जे कदर्य है तिनके सुख कबहू नहीं होय, जीवत या लोकमें आपको संताप होय है, मरेतें नरक होय है ॥ १५ ॥ जे यशस्वी हैं तिनको यश अत्यंत निर्मल है और गुणीनको गुण है, वे सराहिवे लाइक है, परंतु जो थोरोहू लोभ होइ तो सब गुण यशकों दूरि करें, जैसे उत्तमरूपको थोडौ सफेदहू कोढ दूर कर देय है ॥ १६ ॥ यातें द्रव्य सब दुःखरूप है, प्रथम तो साधनमें कष्ट है, पीछे सिद्धहू भये वह द्रव्य बढायो चाहै तामेंहू कष्ट है, पीछे वाकी रक्षा करी चाहिये, भोगमें खर्च होय नाश होयहै, या प्रकार आदिते अंत पर्यंत श्रम भय चिंता भ्रम मनुष्यनको रहैं है, ताते कबहूं अर्थ सुखकारी नहीं है ॥ १७ ॥ औरहू दोष कहे

एते पञ्चदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम् ॥ तस्माद-
नर्थमर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत् ॥१९॥ भिद्यन्ते
भ्रातरो दाराः पितरः सुहृदस्तथा ॥ एकास्निग्धाः का-
किणिना सद्यः सर्वेऽरयः कृताः ॥२०॥ अर्थेनाल्पीय-
सा ह्येते संरब्धा दीप्तमन्यवः ॥ त्यज्यन्त्याशुस्पृधो
घ्नन्ति सहसोत्सृज्य सौहृदम् ॥ २१ ॥ लब्ध्वा जन्मा-
ऽमरप्रार्थ्यं मानुष्यं तद्द्विजाग्र्यताम् ॥ तदनादृत्य ये
स्वार्थं घ्नन्ति यान्त्यशुभां गतिम् ॥ २२ ॥

हैं चोरी हिंसा झूठ दंभ काम क्रोधके साधनमें हैं, गर्व अहंकार भेद वैर अविश्वास स्पर्द्धा ये छै अनर्थ अर्थ पाये पीछे होय है, और तीनि व्यसन स्त्री मद्य जुआ याही धनकरके होय हैं॥१८॥ या प्रकार पंद्रह अनर्थ अर्थतें (द्रव्यतें) होय हैं सुनो उद्धवजी याको नाम तो अर्थ है, पर अनर्थरूप है, ताते जो अपनो भलो चाहे तो दूरिहीतें छोडे ॥ १९ ॥ दोष यह हैं कि माता पिता भ्राता स्त्री सम्बन्धी जो स्नेहको कारण एक चित्त हैके मिले रहे हैं वेहू धनके निमित्त पृथक् है जाय है और वीस कोडीके ऊपर तत्काल वैरी हो जाय है ॥ २०॥ यह प्राणी थोडेही द्रव्यके निमित्त क्षेमको प्राप्त हो महाक्रोधकर स्पर्द्धासों एक साथ सुहृदता और स्नेह छोडकर परस्पर मारवे लगे हैं ॥ २१ ॥ या लोकमें जो अनर्थ उठेहै, परलोकहूमें अनर्थ होंइगे, सो

---

१ वैरसे बडो अनर्थ होयहै, एक कोई लाला अपने पडोसीसे बडी ईर्षा वैर राखे है सो वैर निकासवेकू काहू देवताकी पूजा करवे लगे, वाने प्रसन्न हो एक शंख दीनो और कही कि जो वस्तु यासे मांगोगे सो मिलैगी, पर पडोसीके उससे दुनी होगी, यह बोले पडौसीने कहा पूजा करी है देवताने कही यही बात है तब यह बोले अच्छा शंख देउ मैं देख लेउगो, जातही घर कही ला हजार वोह बोलो पडौसीके दो हजार, और ऐसेही भई तब इन्होंने झुझलाके कही हमारो एक पैर

स चचार महीमेतां संयतात्मेन्द्रियानिलः ॥ भिक्षार्थं नगरग्रामानसङ्गोऽलक्षितोऽविशत् ॥ ३२ ॥ तं वै प्रवयसं भिक्षुमवधूतमसज्जनाः ॥ दृष्ट्वा पर्यभवन्भद्र बह्वीभिः परिभूतिभिः ॥३३॥ केचित्त्रिवेणुं जगृहुरेके पात्रं कमण्डलुम् ॥ पीठं चैकेऽक्षसूत्रं च कन्थां चीराणि केचन ॥ ३४ ॥ प्रदाय च पुनस्तानि दर्शितान्याददुर्मुनेः ॥ अन्नं च भक्ष्यसंपन्नं भुञ्जानस्य सरित्तटे ॥ ३५ ॥ मूत्रयन्ति च पापिष्ठाः ष्ठीवन्त्यस्य च मूर्धनि ॥ यतवाचं वाचयन्ति ताडयन्ति न वक्ति चेत् ॥ ३६ ॥ तर्जयन्त्यपरे वाग्भिः स्तेनोऽयमिति वादिनः ॥ बध्नन्ति रज्ज्वा तं केचिद्बध्यतां बध्यतामिति ३७

इंद्रियवायु मनको स्थिर करिके पृथ्वीमें फिरत भयो, एक भिक्षाके निमित्त नगर गांममें आवत भयो ॥३२॥ तहांऊ कहू आसक्ति नहीं, और काहूको अपनी श्रेष्ठता न लखावे, विचारतौ रहै, कल्याणरूप वह ब्राह्मण अति वृद्ध भिक्षुक अवधूत वेष रहे, ताको देखि करिकैं दुष्टजन अनेक प्रकारके तिरस्कार करिके दुःख देत भये ॥ ३३ ॥ अब सात श्लोकन करिकैं वाके तिरस्कार कहे हैं, कितनेऊ तो वाकें त्रिदंडको लेत भये, कोऊ आसन पीढा लेले जात भये ॥ ३४ ॥ हे महापुरुष! यह लेहु ऐसे दिखाइके मुनिको दे करिकै फेर लेत भये, और जब भिक्षा मांगिके अन्न लेके नदीके तीर भोजन करे॥३५॥तब पापी याके माथेपर मूत्र करैं फेरि वह जो मौनरहै तौ बुलामें, न बोले तब मारे, एक डरपामें यह चोर है ऐसे वचन कहैं ॥३६॥ कितेक कहैं याको ले रज्जुसो बांधो, मारो मारो कितनेंऊ निंदा करे अवज्ञा करें ॥३७॥

क्षिपन्त्येकेऽवजानन्त एष धर्मध्वजः शठः ॥ क्षीण-
वित्त इमां वृत्तिमग्रहीत्स्वजनोज्झितः ॥ ३८ ॥ अहो
एष महासारो धृतिमान्गिरिराडिव ॥ मौनेन साधय-
त्यर्थं बकवद्‌ दृढनिश्चयः ॥३९॥ इत्येके विहसन्त्ये-
नमेके दुर्वातयन्ति च ॥ तं बबन्धुर्निरुरुधुर्यथा क्री-
डनकं द्विजम् ॥ ४० ॥ एवं स भौतिकं दुःखं दैविकं
दैहिकं च यत् ॥ भोक्तव्यमात्मनो दिष्टं प्राप्तं प्राप्तम-
बुध्यत ॥ ४१ ॥ परिभूत इमां गाथामगायत नराध-
मैः ॥ पातयद्भिः स्वधर्मस्थो धृतिमास्थाय सात्त्वि-
कीम् ॥ ४२ ॥ द्विज उवाच ॥ नायं जनो मे सुखदुः-
खहेतुर्न देवताऽऽत्मा ग्रहकर्मकालाः ॥ मनः परं
कारणमामनन्ति संसारचक्रं परिवर्तयेद्यत् ॥ ४३ ॥

यह पाषंडी है धूर्त है अब द्रव्य तो सब गयो, स्वजनने सबनने छोडि दियो अब यह वृत्ति ग्रहण करत भयो ॥ ३८॥ अहो देखो यह बडो ढीठ अतिबली है, पर्वतकी नाई धैर्यवान् मौन करि बकध्यानी होइकरि अपनो स्वार्थ साधे है याको दृढ निश्चय है ॥३९॥ या प्रकार एक तो हँसे, एक वाके ऊपर अधोवायु छोडे, एक बांधे एक रोकि राखे, जैसे सूवा मारोको रोकि राखे ताकीसी नाईं रोकतभये ॥४०॥ या प्रकार भौतिकदुःख दुर्जननको कियो, देहको दुःख ज्वरादिकन-को कियो, दैवके दुःख शीतउष्ण "ये सब अपनो प्रारब्ध भोग है" दुःख पाइके, वह ऐसे समझत भयो ॥४१ ॥ या प्रकार नराधम दुर्जन करिके तिरस्कृत भयो, तथापि सात्त्विक धैर्यकरिकैं अपने धर्ममें रहिकैं यह कथा गावत भयो ॥ ४२ ॥ ब्राह्मण बोले यह जन देवता

मनो गुणान्वै सृजते बलीयस्ततश्च कर्माणि विलक्षणानि ॥ शुक्लानि कृष्णान्यथ लोहितानि तेभ्यः सवर्णाः सृतयो भवन्ति ॥ ४४ ॥ अनीह आत्मा मनसा समीहता हिरण्मयो मत्सख उद्विचष्टे ॥ मनः स्वलिङ्गं परिगृह्य कामान् जुषन्निबद्धो गुणसङ्गतोऽसौ ॥ ४५ ॥ दानं स्वधर्मो नियमो यमश्च श्रुतानि कर्माणि च सद्व्रतानि ॥ सर्वे मनोनिग्रहलक्षणान्ताः परो हि योगो मनसः समाधिः ॥४६॥ समाहितं यस्य मनः प्रशान्तं दानादिभिः किं वद तस्य कृत्यम् ॥ असंयतं यस्य मनो विनश्यद्दानादिभिश्चेदपरं किमेभिः ॥ ४७ ॥

आत्मा ग्रह कर्म और काल कोउ मेरे सुख दुःखके कारण नहीं है मनही केवल कारण है जो यह संसारचक्रको फिरावे है ॥ ४३ ॥ सोई कारण कहें है, बलवंत मनहीं गुणकी वृत्ति सृजें हैं, पीछे तिन गुणनहींते सात्त्विक राजस तामस न्यारे न्यारे कर्म होइ हैं तिन कर्मनते सात्विक राजस तामस देवता मनुष्य पक्षीनकी जाति होय हैं ॥४४॥ अब कहे हैं तो मनहीको संसार होई आत्माको काहेतें संसार होवे हैं,तहां कहें हैं अविद्या करिकै अनेक अभ्यास करिकै आत्माको संसार है, आपुतें संसार नहीं जाते वासनासहित मन है ताके संग नियंता ह्वेके रहे है, तथापि आत्माको संग नहीं, कर्महू नहीं क्योंकि वह ज्ञानरूप है जीवको सखा है यह जो जीव है सो मनके धर्मनको ग्रहण करि अहंकार और गुणके संगसो विषयनके सेवन करवैसो बंध्यो है ॥ ४५ ॥ मनको विग्रह करे विना सब व्यर्थ है (सो कहे हैं) दान स्वधर्म नेम आचार विद्याध्याय कर्म उत्तम व्रत आदि यह सब एक मनके निग्रह करिवेको उपाय है तातें निश्चयकरिके परमयोग मनको निग्रहही है ॥४६॥ अब जाके मनको निग्रहही है सो, कृत्यकरे

मनोवशेऽन्ये ह्यभवन् स्म देवा मनश्च नान्यस्य वशं स नोति॥ भीष्मो हि देवः सहसः सहीयान् युञ्ज्याद्वशे तं स हि देवदेवः॥ ४८॥ तं दुर्जयं शत्रुमसह्यवेगमरुन्तुदं तन्न विजित्य केचित्॥ कुर्वन्त्यसद्विग्रहमत्र मर्त्यैर्मित्राण्युदासीनरिपून् विमूढाः॥४९॥ देहं मनोमात्रमिमं गृहीत्वा ममाहमित्यन्धधियो मनुष्याः॥ एषोऽहमन्योऽयमिति भ्रमेण दुरन्तपारे तमसि भ्रमन्ति॥५०॥ जनस्तु हेतुः सुखदुःखयोश्चेत्किमात्मनश्चात्र हि भौमयोस्तत्॥जिह्वां क्वचित् संदशति स्वदद्भिस्तद्वेदनायां कतमाय कुप्येत्॥५१॥

हैं सो कहेहैं, जाको मन स्थिर शांत भयो, ताको दान आदि कर्म करके कहा प्रयोजन है, मनतो समाधिमें स्थिर भयो है, और जाको मन विक्षिप्त है आलस्ययुक्त है सो ताको दानादिकनसो और कहा होइगो॥४७॥ कदाचित् कहो दान आदि धर्म करिकै और इंद्रियको तो जय होइगो तहां तिनको जय तो नहीं होवहै यह कहे हैं और जे देवता इंद्रिय ये सब मनके वश हैं, मन कछु उनहूंके वश नहीं हैं, यह मन आपही देव हैं, महाबलिष्ठ है योगीनहूंको महाभयंकर है याको जो वश करें हैं वो देवहूको देव हैं॥४८॥ यह मनरूप शत्रु दुर्जय है, याको वेग सह्यो नहीं जाइहै, सबको पीडा करेहै, ऐसेको जीते विना और मनुष्यनसो युद्ध करें हैं यामें औरहू अनुकूल प्रतिकूल मित्र उदासीन शत्रु करिलेइहैं, वे मूर्ख हैं॥४९॥ तातें संसारमें भ्रमें हैं सो कहे हैं, यह देही एक मनकी वासनासो या देहको ग्रहण करिकै यह मेरी देह है या ममतासो अहंकार करिकै अंधबुद्धि मनुष्य यह मैं यह तू या भ्रम करिकै अंत पारतें रहित संसारमें भ्रमें हैं॥५०॥ तातें सुख दुःखको कारण एक मन है, और कोऊ नहीं है, यह कहै है,

दुःखस्य हेतुर्यदि देवतास्तु किमात्मनस्तत्र विकार-
योस्तत् ॥ यदङ्गमङ्गेन निहन्यते क्वचित् क्रुध्येत क-
स्मै पुरुषः स्वदेहे ॥ ५२ ॥ आत्मा यदि स्यात्सुखदुः-
खहेतुः किमन्यतस्तत्र निजस्वभावः ॥ न ह्यात्मनो-
ऽन्यद्यदि तन्मृषा स्यात् क्रुध्येत कस्मान्न सुखं न दुः-
खम् ॥ ५३ ॥

सुख दुःखको कारण मन है तो आत्माको कहा है दोऊ देह माटीके विकारहैं तिनको सुख दुःखही कारणता है, आत्माको कछु न लगेहै, जीव तो देहके अभिमान करिकै मानिलेयहै, आत्माके मूर्ति नहीं, क्रिया नहीं कौनको मारे, कौनकों सुख देइ,(तोहू दुःख सुख आत्माकों दीखैहै तहां कहैहैं) परमात्मा दोऊ ठौर एक है, वाकों कछु न लगैहै (तहां दृष्टांत कहैहै) जैसे अपनी जीभ आपु काटे तो कोप कौनसों करे, तैसे देहसों देहको दुःखसुख मानि लेइ तो आत्मा कहा करे ॥ ५१ ॥ जो सुख दुःखकों हेतु देवता है तो यह आत्माकों कहा, दुःखको कारण तो देवतानकों हैं देवता विकारी हैं जैसें अंगसों अंग मारिये तो पुरुष अपनी देहमें कौनपै कोप करे तैसें एकके मुखमें हाथ डाल वह काटिखाइ, तो मुखको देवता अग्नि है, हाथको देवता इंद्र है, तिनको कियो दुःख है अविकारी अहंकाररहित आत्माको कछु नहीं लगे ॥ ५२ ॥ जो आत्माहीको सुख दुःखको कारण मानो तौ औरते कहाहै जाके ऊपर कोप करे, या पक्षहूमें औरतें दुःख भयो यह कहनो नहीं संभव है कारण कि वह अपनोही स्वभाव है, आत्मा तो सर्वत्र एकही है आत्मातें और दूसरो नहीं, कदाचित् कहो कि जो कुछ यह दीखै है सो मिथ्या है जब अपनो आत्मा और दूसरेको आत्मा एकही है तब कौनसों कोप करे जातें निमित्त नहीं दुःखहू नहीं॥५३॥

ग्रहा निमित्तं सुखदुःखयोश्चेत्किमात्मनोऽजस्य जनस्य ते वै ॥ ग्रहैर्ग्रहस्यैव वदन्ति पीडां क्रुध्येत कस्मै पुरुषस्ततोऽन्यः॥५४॥ कर्माऽस्तु हेतुः सुखदुःखयोर्वै किमात्मनस्तद्धि जडाजडत्वे॥ देहस्त्वचित् पुरुषोऽयं सुपर्णः क्रुध्येत कस्मै न हि कर्म मूलम्॥५५॥ कालस्तु हेतुः सुखदुःखयोश्चेत्किमात्मनस्तत्र तदात्मकोऽसौ॥ नाग्नेर्हि तापो न हिमस्य तत्स्यात् क्रुध्येत कस्मै न परस्य द्वन्द्वम्॥५६॥

जो कहो ग्रह सुख दुःखको निमित्त हैं तोहू आत्माको कहा, ग्रह तो लगेहैं जाकों जन्म है, जन्म तो देहको है आत्माको नहीं, आत्मातो अजन्मा है, जा लग्नमें देह जन्म लेइहै ता लग्नमें जैसे ग्रह होइ तैसे सुख दुःखको निमित्त है, जाको देह अभिमान है तहां ग्रह है, तातें ग्रह तो अंतरिक्षमें हैं ग्रह परस्पर दृष्टि पडवेसो ग्रहकों पीडा देय हैं ऐसो ज्योतिषी कहै है परन्तु आत्माकों कहा, आत्मा ग्रहतै देहते न्यारो है तातें पुरुष कोप कौंनसों करे॥५४॥ जो कर्मही सुख दुःखको हेतु है यों कहिये तोहू आत्माकों कहा, आत्मा तो कर्मतें न्यारो है सो कर्म होई तो दुःख होइ कर्मही नहीं तो दुःखको हेतु कहांतें होइ सो कहें हैं, कर्म तब होइ जब एक देहीहीकों जडरूपता और अजडरूपता होइ, जडरूप करिकैं तो विकारी होइ, अजडरूप करिकैं हितकारी पन यह दोनों धर्म आने चाहिये विनमें विकारता जडतावारेनको हो और हितको अनुसन्धान जडतारहितनको हो और जो कहैं देह कर्म करै है तो देह जड हैवेसौ वामें अपने हितको अनुसंधान नहीं और आत्माकोहू कर्म करनो नहीं बन सकै क्योंकि वह शुद्धज्ञान स्वरूप है जब सुख दुःखको कारणरूप कर्म सिद्ध नहीं तो फिर पुरुष कोनपै क्रोध करै॥५५॥ जो काल सुख

न केनचित्क्वापि कथंचनास्य द्वन्द्वोपरागः परतः परस्य ॥ यथाऽहमः संसृतिरूपिणः स्यादेवं प्रबुद्धो न बिभेति भूतैः ॥ ५७ ॥ एतां समास्थाय परात्मनिष्ठामध्यासितां पूर्वतमैर्महर्षिभिः ॥ अहं तरिष्यामि दुरन्तपारं तमो मुकुन्दाङ्घ्रिनिषेवयैव ॥ ५८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ निर्विद्य नष्टद्रविणो गतक्लमः प्रव्रज्य गां पर्यटमान इत्थम् ॥ निराकृतोऽसद्भिरपि स्वधर्मादकम्पितोऽमुं मुनिराह गाथाम् ॥ ५९ ॥

दुःखको हेतु है तोहू आत्माकों कहा क्योंकि आत्माहू कालरूपही है, कालहू ब्रह्मांश है, आत्मा ब्रह्महीं है अपने अंशकों आपुतें भय पैदा नहीं होय है जा प्रकार अग्निकी ज्वालाकौ ताप अग्निको नहीं व्यापै है और हिमकण तुषारकौ सीत हिमको नहीं व्यापै है ऐसेही कालके किये सुखदुःखसौं आत्माको सुखदुःख नहीं होय है आत्मा असंग है या कारण वामें दुःखसुखकौ द्वंद्व नहीं व्यापै वा दुःखसुख कौ कारण अज्ञान है आत्मा नहीं ॥ ५६ ॥ इन छः दुःखसुखके कारण विना जो कोऊ और हेतु कहे सोऊ ईश्वरकी महिमा जानि करिकै संभव नहीं यह कहैं है, जो प्रकृतिहूतें परे है ताको काहू भांति सुख दुःख संबंध नहीं जैसे अहंकार संसाररूपी है ताही करिकैं सुख दुःख होय है जो या भांति समझे तो काहूते न डरपे वाको डर नहीं या प्रकार मैं परमात्माके विषें चित्त राखिकैं संसारसमुद्र तरूंगो ॥ ५७॥ पूर्व महर्षिनकी यह जो परमात्माकी निष्ठा है ता निष्ठाकों धरिकें साक्षात् मोक्षके दाता भगवान्‌केचरणारविंदनकी सेवा करिकें पारते रहित संसारसमुद्र पार जाऊंगो॥ ५८ ॥ श्रीकृष्ण उद्धवसों बोले याप्रकार द्रव्य नष्ट हैबेसौ द्रव्यको लेश दूरि करि संन्यास लेकें वह ब्राह्मण

सुखदुःखप्रदो नान्यः पुरुषस्यात्मविभ्रमः ॥ मित्रो-
दासीनरिपवः संसारस्तमसः कृतः ॥ ६० ॥ तस्मात्
सर्वात्मना तात निगृहाण मनो धिया ॥ मय्यावेशि-
तया युक्त एतावान् योगसंग्रहः ॥ ६१ ॥ य एतां भि-
क्षुणा गीतां ब्रह्मनिष्ठां समाहितः ॥ धारयञ्छ्रावयन्
शृण्वन् द्वन्द्वैर्नैवाभिभूयते ॥ ६२ ॥ इति श्रीभागवते
एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे भिक्षुगीता नाम
त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः ।

श्रीभगवानुवाच ॥ अथ ते संप्रवक्ष्यामि सांख्यं पू-
र्वैर्विनिश्चितम् ॥ यद्विज्ञाय पुमान् सद्यो जह्याद्वैक-
ल्पिकभ्रमम् ॥ १ ॥

भूमिमें फिरो दुष्टनते यद्यपि वाकौ बहुत अपमान कियौ तथापि अपने स्वधर्मतें न चलत भयो तब यह गाथा गाई ॥ ५९ ॥ पुरुषको सुख दुःखको दाता मनके भ्रम विना और दूसरो कोऊ नहींहै मित्र उदासीन शत्रु यह जो संसार है सो अज्ञानतें होय तत्त्व विचारेतें कछु नहीं ॥ ६० ॥ हे उद्धव ! ताते तुम सब भाव करिकैं मेरे विषें बुद्धि राखिकैं मनको निग्रह करो इतनोही योगकों तात्पर्य है ॥ ६१ ॥ जो कोई यह भिक्षुककी गाई ब्रह्मनिष्ठाको सावधान होइ धारे सुने सुनावे वह सुख दुःख आदि द्वंद्व धर्मनकरिके पराभव न पावेगो ॥ ६२ ॥ इति श्रीभागवतभाषाटीकायां एका० त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥

अब चौवीसके अध्यायमें श्रीकृष्ण फिरि सांख्यज्ञान करि मनकों मोह निवारैहैं, अब जो सांख्य प्रथम बडेनने निश्चय कियोहै ताकों

आसीज्ज्ञानमथो ह्यर्थ एकमेवाविकल्पितम् ॥ यदा विवेकनिपुणा आदौ कृतयुगे युगे ॥ २ ॥ तन्मायाफलरूपेण केवलं निर्विकल्पितम् ॥ वाङ्मनोऽगोचरं सत्यं द्विधा समभवद्बृहत् ॥ ३ ॥ तयोरेकतरो ह्यर्थः प्रकृतिः सोभयात्मिका ॥ ज्ञानं त्वन्यतमो भावः पुरुषः सोऽभिधीयते ॥ ४ ॥ तमो रजः सत्त्वमिति प्रकृतेरभवन्गुणाः ॥ मया प्रक्षोभ्यमाणायाः पुरुषानुमतेन च ॥ ५ ॥ तेभ्यः समभवत्सूत्रं महान्सूत्रेण संयुतः ॥ ततो विकुर्वतो जातोऽहङ्कारो यो विमोहनः ॥ ६ ॥

तुमसों कहोंगो जाके जानेंते तत्काल पुरुषकों भेद करिकैं कियौ भ्रम जातरहै है ॥ १ ॥ महाप्रलयमें द्रष्टा और दृश्य भेद रहित एक ब्रह्ममें लीन होतभयो, पीछें प्रथम सतयुगमें जब सब प्राणी विवेकसों निपुण है तबहू कुछ भेद न हैवेसों सब ईश्वर रूपही जानो जायहो भेद नहीं है ॥ २ ॥ पीछें जब बहुत सृष्टिको इच्छा भई तब वह अक्षरब्रह्म भेदरहित केवल आनंदमय एकरूप अपने रूपके द्रष्टा और दृश्य दो रूप करत भयो एक मायाको फलरूप वाणी मनकों गम्य प्रपंचरूप करतभयो एक सत्यरूप दो भये ॥ ३ ॥ ब्रह्मसों भये तिनके मध्य एक कार्य्य कारण रूपिणी प्रकृति भई दूसरे भावसों ज्ञानरूप पुरुष भयो, जो प्रकृति पुरुष कहामें हैं ॥ ४ ॥ पुरुष रूप मेरे देखिवे करिकैं क्षोभित भई प्रकृति द्वारा सतोगुण रजोगुण तमोगुण प्रकटे ॥ ५ ॥ प्रथम नित तीनों गुणनतें सूत्र क्रिया शक्ति रूप भयो ता पीछें वह सूत्र ज्ञानशक्ति रूप तत्त्व प्रकट भयो एकही तत्त्वज्ञान क्रिया भेद करिकैं दोऊ रूप भयो ता महत्तत्वतें अहंकार भयो जो सबकों मोह करें है जीवकों भ्रमाय रह्यो है ॥ ६ ॥

वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिवृत् ॥ तन्मात्रेन्द्रियमनसां कारणं चिदचिन्मयः ॥७॥ अर्थस्तन्मात्रिकाज्जज्ञे तामसादिन्द्रियाणि च ॥ तैजसाद्देवता आसन्नेकादश च वैकृतात् ॥ ८ ॥ मया संचोदिता भावाः सर्वे संहत्यकारिणः ॥ अण्डमुत्पादयामासुर्ममायतनमुत्तमम् ॥ ९॥ तस्मिन्नहं समभवमण्डे सलिलसंस्थितौ ॥ मम नाभ्यामभूत्पद्मं विश्वाख्यं तत्र चात्मभूः ॥ १० ॥ सोऽसृजत्तपसा युक्तो रजसा मदनुग्रहात् ॥ लोकान्सपालान्विश्वात्मा भूर्भुवःस्वरिति त्रिधा ॥ ११ ॥

सो अहंकार तीनी प्रकारको है, सात्विक अहंकार राजस अहंकार तामस अहंकार यही अहंकार शब्द स्पर्श रूप रस गंध इंद्रिय मन देवतानको कारण है जीव और देहको ग्रंथिरूप यही है ॥ ७ ॥ अब या त्रिविध अहंकारतें त्रिविध प्रपंचकी उत्पत्ति भईहै सो दिखामें हैं तहां तामस अहंकारते पहिले सूक्ष्मभूत प्रकट भये ॥ ८ ॥ पीछें पंचमहाभूत प्रकट होतभये प्राणीनके आवरणरूप दश अहंकार भये, प्रवृत्ति स्वभावरूप सात्विक अहंकारते देवता दश इंद्रियनके अधिष्ठाता दिशा वायु सूर्य वरुण अश्विनीकुमार अग्नि इंद्र विष्णु प्रजापति चंद्रमा मिलिकैं ग्यारह देवता भये एक मनहूं भयो मन विना इंद्रियको प्रकाश न होइ वह प्रकाशक है या प्रकार सब तत्त्व न्यारे न्यारे भये ॥ ९ ॥ पीछें एक अंड उत्पन्न कियो सो ब्रह्मांड विराट् पुरुषके अंतर्यामी मेरो उत्तम घर है जलमें अंड भयो ता अंडमें श्रीनारायणरूप लीला शरीर करिकैं मैं स्थित भयो, तहां मेरी नाभिमें एक कमल भयो, सो पद्म जगत्रूप तत्वात्मक लोकनको कारणभूत है कमलमेंसो ब्रह्मा प्रकट भयो॥१०॥ सो ब्रह्मा विश्वरूप तपस्या करिकैं

देवानामोक आसीत्स्वर्भूतानां च भुवः पदम् ॥ म-
र्त्यादीनां च भूर्लोकः सिद्धानां त्रितयात्परम् ॥ अ-
धोऽसुराणां नागानां भूमेरोकोऽसृजत्प्रभुः ॥ १२ ॥
त्रिलोक्यां गतयः सर्वाः कर्मणां त्रिगुणात्मनाम् ॥
योगस्य तपसश्चैव न्यासस्य गतयोऽमलाः ॥ १३ ॥
महर्जनस्तपः सत्यं भक्तियोगस्य मद्गतिः ॥ मया
कालात्मना धात्रा कर्मयुक्तमिदं जगत् ॥ गुणप्रवाह
एतस्मिन्नुन्मज्जति निमज्जति ॥ १४ ॥

गुणसों युक्त मेरे अनुग्रहते लोकपाल समेत तीनि लोक भूमि अंत-
रिक्ष स्वर्ग इनको सृजत भयो तिन लोकनहीमें चौदहलोक समझनें,
तहां भूमि कहेते पाताललोक नीचेके आये, भुवर कहेतें अंतरिक्ष
कह्यो, और स्वर्ग कहेतें महर्लोकतें लेके सत्य लोक ताईं सब कहें
॥ ११ ॥ लोक सृष्टिको प्रयोजन कहें हैं, देवतानकों लोकस्थान स्वर्ग
भयो भूत प्राणीनकों स्थान अंतरिक्ष भयो, मनुष्यनको लोक भूमि
भई, जे सिद्ध हैं योगसाधन करें हैं तिनकों स्थान महर्लोकतें आदि
लोक जानने ॥ १२ ॥ भूमितें नीचे लोकनमें असुर नागको स्थान
प्रभु सृजत भये या प्रकार लोक न्यारे न्यारे करें हैं ताको कारण कहें
हैं, जे त्रिगुणात्मक कर्म हैं तिनकी गति त्रिलोकीमें है ॥ १३ ॥
महर्लोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोकमें योग संन्यास ज्ञान करिकैं
निर्मल गति होयहै वैकुंठकी गति मेरी भक्ति विना नहीं होयहै सो
भक्तियोगही करिकैं होइ है वैकुंठकी गति विना और सब स्थान
चंचल है स्थिर तो मेरी गति है, तातें और ठौर वैराग्य राखनो
उचित है मैं कालरूप परमेश्वर हों यह जगत् सब कर्म युक्त कियो है
सो माया गुण प्रवाहमें सब विश्व बूढ उछरे हैं, या लोकते और
लोकमें जाइके फिरि गिरे है तातें यामें चित्त न लगावे ॥ १४ ॥

अणुर्बृहत्कृशः स्थूलो यो यो भावः प्रसिध्यति ॥ सर्वोऽप्युभयसंयुक्तः प्रकृत्या पुरुषेण च ॥ १५ ॥ यस्तु यस्यादिरन्तश्च स वै मध्यं च तस्य सन् ॥ विकारो व्यवहारार्थो यथा तैजसपार्थिवाः ॥१६॥ यदुपादाय पूर्वस्तु भावो विकुरुतेऽपरम् ॥ आदिरन्तो यदा यस्य तत्सत्यमभिधीयते ॥ १७ ॥ प्रकृतिर्ह्यस्योपादानमाधारः पुरुषः परः ॥ सतोऽभिव्यञ्जकः कालो ब्रह्म तत्त्रितयं त्वहम् ॥ १८ ॥

याको ब्रह्मरूप कहैं हैं, जो पदार्थ सूक्ष्म हैं जो बडो है जो स्थूल है दुर्बल है सो प्रकृति और पुरुष इन दोनोनसौं युक्त है ॥ १५ ॥ जा कार्य्यको जो आदि कारण है और जो पीछेंहू रहिवेको स्थान है सोई ताके मध्यमें है, तो वह ताहीको रूप है बीच व्यवहारमें और प्रकार भासे है जे सुवर्णके भूषण हैं माटीके घडा सरैयां हैं नाम न्यारे हैं वस्तुते सब सुवर्ण और माटी है, या प्रकार सब समुझि करिकैं नाम भेद करि जो व्यवहार है सोई विकार है, सो मिथ्या है इतनोई समझनो चाहिये ॥ १६॥ यहां तर्क करे हैं जो तुम या प्रकार कार्यको एकरूप कहिके सत्यरूप कहेहो तो अपने अपने कार्य्यमें महत्तत्त्व आदि लेकैं सब तत्त्व आदि अंत मध्यमें संयुक्त हैं, तो महत्तत्त्वनको सत्यता होसकै है तहां कहै है कि वे कारणरूप ब्रह्म भावरूपको अंगीकार करिकैं कार्यको सृजे हैं, मृत्तिकाके पिंड निमित्त कारण घटको सृजे हैं आदि अन्तमें उसके मृत्तिकाही है जो जाको आदि अन्त है सो सत्य है ताते सबको आदि सो मृत्तिकाको लेकरही सृजे है अंत ब्रह्महीं सत्य है ॥ १७ ॥ प्रकृति या जगत्को उपादान कारण हैं, उत्पत्तिस्थान है, पुरुष आधार अधिष्ठाता है, और काल गुणनके

सर्गः प्रवर्तते तावत्पौर्वापर्येण नित्यशः ॥ महान्गुण-
विसर्गाऽर्थः स्थित्यन्तो यावदीक्षणम् ॥ १९ ॥ विरा-
ण्मयाऽऽसाद्यमानो लोककल्पविकल्पकः ॥ पञ्च-
त्वाय विशेषाय कल्पते भुवनैः सह ॥ २० ॥ अन्ने प्र-
लीयते मर्त्यमन्नं धानासु लीयते ॥ धाना भूमौ प्र-
लीयन्ते भूमिर्गन्धे प्रलीयते ॥ २१ ॥ अप्सु प्रलीयते
गन्ध आपश्च स्वगुणे रसे ॥ लीयते ज्योतिषि रसो
ज्योती रूपे प्रलीयते ॥ २२ ॥

क्षोभ करिकैं वाकों प्रकट करनहारो है, सो ये तीनों ब्रह्मरूप मैंही हों, मोते ये भिन्न नहीं हैं प्रकृति मेरी शक्ति है, पुरुष और काल मेरी अवस्था है मेरो रूप होवेसों मेंही अद्वितीय स्वरूप हूं ॥ १८ ॥ अब या सृष्टिकी अवधि कहें हैं जीवके भोग देवेके निमित्त प्रगट भई यह मेरी सृष्टि जबलो याकों अंत आवै तबतक पिता पुत्र रूपसो निरन्तर चलै है और जबतक परमात्माकों ईक्षण होयहै तबतक रहै है ता पीछे प्रलय होयहै सो कहैं हैं ॥ १९ ॥ यह ब्रह्मांड विराट्रूप जामें लोकनकी कल्पना है जब याके निकट मेरो स्वरूपभूत काल पहुँचवे लगे है तब मुझेसो पीड्यमान हैके सब लोक नाशको पामें हैं जैसे उत्पन्न भयेहैं ताही क्रमसों तत्त्व न्यारे न्यारे ह्वैके अपने कारणसों मिलिकें नष्ट होयहैं ॥ २० ॥ यह शरीर अन्नते भयो है ताते सतवर्ष अनावृष्टिके भयेते क्षीण होय ता अन्नमें लीन होय है, अन्न बीजमें लीन होवे हैं, बीज भूमिमें लीन होय है जब बोयेतें न उपजे, भूमि गंधमें महाप्रलयकी अग्नि करिकैं दग्ध होयहै गंधमात्र रहैहै ॥ २१ ॥ गंध जलमें लीन होय है जल अपने गुणमेंलीन होय है रस ज्योतिमें लीन होवे है ज्योति रूपमें लीन होयहै ॥ २२ ॥

रूपं वायौ स च स्पर्शे लीयते सोऽपि चाम्बरे ॥ अम्बरं शब्दतन्मात्रे इन्द्रियाणि स्वयोनिषु ॥२३॥ योनिर्वैकारिके सौम्य लीयते मनसीश्वरे ॥ शब्दो भूतादिमप्येति भूतादिर्महति प्रभुः ॥ २४ ॥ स लीयते महान् स्वेषु गुणेषु गुणवत्तमः॥ तेऽव्यक्ते संप्रलीयन्ते तत्काले लीयतेऽव्यये ॥ २५ ॥ कालो मायामये जीव जीव आत्मनि मय्यजे ॥ आत्मा केवल आत्मस्थो विकल्पापायलक्षणः ॥ २६ ॥ एवमन्वीक्षमाणस्य कथं वैकल्पिको भ्रमः ॥ मनसो हृदि तिष्ठेत व्योम्नीवार्कोदये तमः ॥ २७ ॥

रूप वायुमें लीन होयहै वायु स्पर्शमें लीन होइ स्पर्श आकाशमें लीन होइ आकाश शब्दमें लीन होइ ॥ २३॥ शब्द अहंकारमें लीन होइ, ऐसे पंचभूतनकी प्रलय कहिकै इंद्रियनकी प्रलय कहैंहै, इंद्रिय अपने प्रवर्तकमें लीन होयहै, जा इंद्रियनको जो देवता है ता देवतामें लीन होयहै ॥ २४ ॥ वे देव सब मनके वश हैं ताते मनमें लीन होयहैं, मन सब इंद्रियनको ईश्वर है, तामें प्रविष्ट होयहै, मन अपने सब देवता सहित सात्त्विक अहंकारमें लीन होइ शब्द तामस अहंकारमें लीन होय है, जाते कालके आधीन है ॥ २५ ॥ काल ज्ञानरूप महापुरुषमें लीन होयहै, पुरुष आत्मारूप जन्मरहित मोमें लीन होयहै, तब आत्मा एक शुद्ध विकल्प संकल्प रहित अपनेई आनंदमें स्थित होइ रहैहै, याप्रकार सब सृष्टिको प्रकार कह्योहै ताको प्रयोजन कहैं हैं ॥ २६ ॥ जब या प्रकार ज्ञानकरिकै देखे वाके मनको कियो भ्रम क्यो होइ, और भयोहू भ्रम हृदयमें क्यों रहे, जैसे आकाशमें सूर्योदय भयेतें अंधकार नहीं रहै ॥ २७ ॥

एष सांख्यविधिः प्रोक्तः संशयग्रन्थिभेदनः ॥ प्रति-
लोमानुलोमाभ्यां परावरदृशा मया ॥ २८ ॥ इति
श्रीमद्भागवते एकादशस्कन्धे चतुर्विंशतितमोऽ-
ध्यायः ॥ २४ ॥

अथ पंचविंशोऽध्यायः ।

श्रीभगवानुवाच ॥ गुणानामसमिश्राणां पुमान्येन
यथा भवेत् ॥ तन्मे पुरुषवर्येदमुपधारय शंसत॥१॥
शमो दमस्तितिक्षेक्षा तपः सत्यं दया स्मृतिः ॥ तुष्टि-
स्त्यागोऽस्पृहा श्रद्धा ह्रीर्दयादिः स्वनिर्वृतिः ॥ २ ॥

उद्धवसों श्रीकृष्ण कहैं है यह सांख्यज्ञान विधि मैंने तुमसों कही, याके जानेते संदेहकी गांठि छूटि जाइ, उत्पत्ति प्रलयके प्रकार कहि समझाय कह्यो है, मोको सब ज्ञान पूर्ण हैं ॥ २८ ॥

इति श्रीभागवतभाषाटीकायां एकादशस्कन्धे चतुर्विंशोऽध्यायः २४॥

पचीसके अध्यायमें मोक्षकी सिद्धिके अर्थ अनेक प्रकार चित्ततें उपजे सत्व आदि गुणनकी वृद्धि कहियै हैं॥ श्रीभगवान् बोले जबतक प्रकृतिपुरुषको ज्ञान न होय जबतक तीन्यो गुणके स्वभाव न जीते होइ तबतक सुख दुःख आदि द्वंद्व धर्म नहीं जायहै तातें जैसें गुणके स्वभाव जानेजाइ हैं ता उपाय करिवेको प्रथम गुणके स्वभाव कहैं हैं हे उद्धव ! पुरुषनमें श्रेष्ठ तीन्यो गुण न्यारे न्यारे होयहैं, जब जा गुणसो जैसो पुरुष होइ सो यह तुम मैं कहूंहूं ॥ १ ॥ तहां प्रथम सत्वगुणको स्वभाव कहैं हैं सतोगुणको स्वभाव जाको होइ ताके ए धर्म होयहै शम, दम, क्षमा, विवेक, तप, सत्य, दया, पहलो और

काम ईहा मदस्तृष्णा स्तम्भ आशीर्भिदा सुखम् ॥
मदोत्साहो यशः प्रीतिर्हास्यं वीर्यं बलोद्यमः ॥ ३ ॥
क्रोधो लोभोऽनृतं हिंसा याच्ञा दम्भः क्लमः कलिः ॥
शोकमोहौ विषादार्ती निद्राऽऽशा भीरनुद्यमः ॥ ४ ॥
सत्त्वस्य रजसश्चैतास्तमसश्चानुपूर्वशः ॥ वृत्तयो वर्णितप्रायाः सन्निपातमथो शृणु ॥ ५ ॥ सन्निपातस्त्वहमिति ममेत्युद्धव या मतिः ॥ व्यवहारः सन्निपातो मनोमात्रेन्द्रियासुभिः ॥ ६ ॥ धर्मे चार्थे च कामे च यदाऽसौ परिनिष्ठितः ॥ गुणानां सन्निकर्षोऽयं श्रद्धारतिधनावहः ॥ ७ ॥

पिछिलो स्मरण, संतोष, त्याग, वैराग्य, आस्तिक बुद्धि अनुचितकर्ममें लज्जा, दान, आत्मासूं रति ये सतोगुणकी वृत्ति कही ॥ २ ॥ रजोगुणकी वृत्ति कहे हैं कामना, चेष्टा, दर्प, तृष्णा, गर्व, देवतानके सुखकी आकांक्षा, विषयभोग, युद्धादिकनको उत्साह, जगमें प्रीति, हास्य, वीर्य्य, बलको उद्यम ये सब रजोगुणकी वृत्ति कही ॥ ३ ॥ तमोगुणकी कहे हैं क्रोध, लोभ, मिथ्या हिंसा, याच्ञा, दंभ, अनुद्यम, श्रम, कलह, शोक, मोह, विषाद, दुःख, हीनता, निद्रा, आशा, भय ये तमोगुणकी वृत्ति न्यारी न्यारी कही, अब एकसों एकमिली हैं ते वृत्ति सुनो ॥४॥५॥ हे उद्धव ! अहं मम यह जो बुद्धि है, तामें मन शब्द स्पर्श रूप रस गंध इंद्रिय प्राण ये सात्विक राजस तामस हैं, इन करिके जो कार्य्य है सो संनिपात जनित कार्य कहिये, तीनों गुणनके मिले कार्य हैं मैं शांत हो मैं कामी हों, क्रोधी हों मोकों शांति है, काम है क्रोध है, ऐसो व्यवहार तीनो गुणनको सन्निपात कार्य कहा है ॥ ६ ॥ जब यह पुरुष धर्म अर्थ काममें स्थित भयो तब जानिये

प्रवृत्तिलक्षणे निष्ठा पुमान् यर्हि गृहाश्रमे ॥ स्वधर्मे
चानुतिष्ठेत गुणानां समितिर्हि सा ॥ ८ ॥ पुरुषं सत्त्व-
संयुक्तमनुमीयाच्छमादिभिः ॥ कामादिभी रजोयु-
क्तं क्रोधाद्यैस्तमसा युतम् ॥ ९ ॥ यदा भजति मां भ-
क्त्या निरपेक्षः स्वकर्मभिः ॥ तं सत्त्वप्रकृतिं विद्या-
त्पुरुषं स्त्रियमेव च ॥ १० ॥ यदा आशिष आशास्य
मां भजेत स्वकर्मभिः ॥ तं रजःप्रकृतिं विद्याद्धिंसा-
माशास्य तामसम् ॥ ११ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति गुणा
जीवस्य नैव मे ॥ चित्तजा यैस्तु भूतानां सज्जमानो
निबध्यते ॥ १२ ॥

तीनों गुणनकी एकता है, धर्म सात्विक, अर्थ राजस, काम तामस, धर्ममें श्रद्धा होई अर्थमें रति होइ काममें धन होइ॥७॥ प्रवृत्ति सकाम धर्ममें निष्ठा राखे गृहाश्रम धर्ममें निष्ठा राखे यहहू गुणनके सन्निपातसों होय है कारण कि सकाम धर्म रजोगुणमय है घरमें आसक्ति तमोगुणमय है नित्यनैमित्तिक धर्ममें निष्ठा है सो सत्व गुणमय है ॥८॥ या प्रकार भिन्न भिन्न और मिलै गुणनकी व्यवस्था कहि जा गुणसों जैसो पुरुष होइ सो कहे है, पुरुषके जो शम दम क्षमा दया ये धर्म होयहैं तो सात्विक जानियें, काम अनुराग करिकै राजस समझि लेइ, क्रोध आदि करिकै तामस जानिये ॥ ९ ॥ और जो भक्ति करिकैं निरपेक्ष होइ सो स्वकर्म करिकैं मेरो भजन करे सो पुरुष होउ अथवा स्त्री होउ वाको सतोगुणरूपी स्वभाव जाननो॥१०॥ जो स्वकर्म कर्म करिके मेरो भजन करे है, और मोते कछु चाहना करै सो रजोगुण स्वभाव जाननो, और जो काहूके मारवेको मेरो भजन करें सो तामस जानिये ॥११॥ अब कहे हैं इन गुणनके वश तो तुमहूं देखे जा हैं तो

यदेतरौ जयेत् सत्त्वं भास्वरं विशदं शिवम् ॥ तदा
सुखेन युज्येत धर्मज्ञानादिभिः पुमान् ॥ १३ ॥ यदा
जयेत्तमः सत्त्वं रजः सङ्गं भिदा चलम् ॥ तदा दुःखेन
युज्येत कर्मणा यशसा श्रिया ॥ १४ ॥ यदा जयेद्रजः
सत्त्वं तमो मूढं लयं जडम् ॥ युज्येत शोकमोहाभ्यां
निद्रया हिंसयाऽऽशया ॥ १५ ॥ यदा चित्तं प्रसीदेत
इन्द्रियाणां च निर्वृतिः ॥ देहेऽभयं मनोऽसङ्गं तत्स-
त्त्वं विद्धि मत्पदम् ॥ १६ ॥

तुम सेव्य क्यों भये, और जीव सेवक क्यौं भयो, सो कहो ताको उत्तर देयहैं ए तीनों गुण जीवकों हैं मोको नहीं हैं, ये सब चित्तके विकारते होयहैं जा करिकै प्राणी आसक्त होइकें बंधे है,मैं तो आसक्त नहीं हूं, नियंता होइ और द्रष्टा होइ रहों हों, तातें बंधनमें नहीं याहीसों अपना भजन करनेके वास्ते वारंवार कहताहूं ॥ १२ ॥ जब एक गुणनको आधिक्य होइ ताको कार्य्य दिखामें हैं, जब प्रकाश-रूपमें निर्मल शांत सतोगुण बढिकैं रजोगुणकों जीते तब पुरुष धर्म ज्ञानकरिकैं परमसुख युक्त होयहै, जब रजोगुण सतोगुण तमोगुणको जीते, तब पुरुष धर्म ज्ञान करिकैं परम सुखयुक्त होइ ॥ १३ ॥ जब रजोगुण सत्व और तमकों जीते तब रजोगुण करिकें संगहोइ ता करिकें भेद बुद्धि सर्वत्र होइ ता करिकैं प्रवृत्ति मार्गको स्वभाव होइ कर्म यश श्री और दुःख करिकै युक्त होइ ॥ १४ ॥ जब तमोगुण सतोगुण और रजोगुणकों जीते तब अवज्ञा करिकैं मोहकों प्राप्त होइ, शोक मोह निद्रा हिंसा आशा करियुक्त होइ विवेक जाइ अनुद्यमरूप जडता होइ रहै और लय होइ ॥ १५ ॥ जब चित्त निर्मल होइ और इंद्रियनके विषयनतें निवृत्ति होइ देहमें अभय होइ मनकी आसक्ति

विकुर्वन् क्रियया चाऽऽधीरनिर्वृत्तिश्च चेतसाम् ॥
गात्रास्वास्थ्यं मनो भ्रान्तं रज एतैर्निशामय ॥ १७॥
सीदच्चित्तं विलीयेत चेतसो ग्रहणेऽक्षमम् ॥ मनो नष्टं
तमो ग्लानिस्तमस्तदुपधारय ॥ १८॥ एधमाने गुणे
सत्त्वे देवानां बलमेधते ॥ असुराणां च रजसि तम-
स्युद्धव रक्षसाम् ॥ १९॥ सत्त्वाज्जागरणं विद्याद्रजसा
स्वप्नमादिशेत् ॥ प्रस्वापं तमसा जन्तोस्तुरीयं त्रिषु
संततम् ॥ २० ॥ उपर्युपरि गच्छन्ति सत्त्वेन ब्रह्म-
णा जनाः ॥ तमसाऽधोऽध आमुख्याद्रजसाऽन्तर-
चारिणः ॥ २१ ॥

कहूं न होइ वह सतोगुण मेरी प्राप्तिको स्थान जान्नो ॥ १६ ॥ जब क्रिया करिकैं विकारकों प्राप्त होइ, बुद्धिकों विक्षेप होइ, ज्ञानेंद्रियनको शांति न होइ, कर्मेंद्रियनको निश्चलता न होइ, मन भ्रमें तब जानियें रजोगुण बहुत बढ्यो है ॥ १७ ॥ जब चित्त अंतर्द्धान होइ लीन होइ ज्ञान करि पदार्थ ग्रहणकों असमर्थ होइ मनहूंमें संकल्प विकल्प उपजते रहे हैं सो नष्ट ह्वैकैं शून्यसों रहें, अज्ञान ग्लानि दुःख होइ तब जानियें तमोगुण बढ्यो है ॥१८॥ हे उद्धव ! सतोगुण बढे तब देवतानको बल बढे, रजोगुण बढे तब असुरनको बल बढे, तमोगुण बढे तब राक्षसनको बल बढेहै ॥ १९ ॥ सतोगुणतें जागरण होइ रजोगुणतें स्वप्न होइ तमोगुण करिकैं सुषुप्तिकी अवस्था होइ इन तीनोंहूं अवस्थामें व्याप्त एक चतुर्थ अवस्थारूप आत्मतत्त्व है, सो वह तुरीय निर्गुण अवस्था है ॥ २० ॥ गुणके उत्कर्षसे कर्म फलको दिखावैहैं सतोगुणके उत्कर्ष करिकैं ब्राह्मण वेदोक्त कर्म कर्त्ता ऊपर ब्रह्मलोक पर्यंत जायहैं, तमोगुण करिकैं नीचेके लोकनमें जाय, रजोगुण करिकैं मनुष्य होयहैं ॥ २१ ॥

सत्त्वे प्रलीनाः स्वर्यान्ति नरलोकं रजोलयाः ॥ तमो-
लयास्तु निरयं यान्ति मामेव निर्गुणाः ॥ २२ ॥ मद-
र्पणं निष्फलं वा सात्त्विकं निजकर्म तत् ॥ राजसं
फलसंकल्पं हिंसाप्रायादि तामसम् ॥ २३ ॥ कैवल्यं
सात्त्विकं ज्ञानं रजो वैकल्पिकं च यत् ॥ प्राकृतं ता-
मसं ज्ञानं मन्निष्ठं निर्गुणं स्मृतम् ॥ २४ ॥ वने तु सा-
त्त्विको वासो ग्रामे राजस उच्यते ॥ तामसं द्यूतस-
दनं मन्निकेतं तु निर्गुणम् ॥ २५ ॥ सात्त्विकः कारको-
ऽसङ्गी रागान्धो राजसः स्मृतः ॥ तामसः स्मृतिवि-
भ्रष्टो निर्गुणो मदपाश्रयः ॥ २६ ॥

अब जा गुणकी आधिक्यतामें मरनेते जो गति होइ सो कहें हैं सतो-
गुणमें मरे तो स्वर्गमें जाइ, रजोगुणमें मरे तो मनुष्यलोकमें जाइ,
तमोगुणमें मरे तो नरकमें जाई और निर्गुण होई तो मोहिको प्राप्ति
होवे है ॥ २२ ॥ जो स्वकर्म करे फल न चाहे अथवा मोकों अर्पण
करे सो सात्विककर्म है जा कर्ममें फलकी याचना सो राजस, जामें
हिंसा अधिक सो तामसकर्म ॥ २३ ॥ अब सब गुण निर्गुण भेदक-
रिकें ज्ञान और भक्ति हू चारि प्रकारकी है सो कहैं हैं, केवल आत्म-
निष्ठ ज्ञान सात्विक है, जो ज्ञान देह इंद्रियनके संबंधसो लीन होइ सो
राजस जानिये जो बालक गुंगेको ज्ञान सो तामस जानिये, केवल
शुद्ध पुरुषोत्तमनिष्ठ ज्ञान होइ सो निर्गुण जानिये ॥ २४॥ वनमें वास
है सो सात्विक है, ग्रामको वास राजस है, जुवाके गृहमें वास तामस
है, भगवन्मंदिरमें निर्गुण वास है ॥ २५ ॥ आसक्ति विना कर्मको
कर्त्ता सात्विक कहिये आसक्तिसे अंध होकै कर्म करनो राजस है,
स्मरणते रहित कर्त्ता तामस है, मेरे एक शरण आई अहंकार छोडि-

सात्त्विक्याध्यात्मिकी श्रद्धा कर्मश्रद्धा तु राजसी ॥
तामस्यधर्मे या श्रद्धा मत्सेवायां तु निर्गुणा ॥ २७ ॥
पथ्यं पूतमनायस्तमाहार्यं सात्त्विकं स्मृतम् ॥ राजसं
चेन्द्रियप्रेष्ठं तामसं चार्तिदाऽशुचि ॥ २८ ॥ सात्विकं
सुखमात्मोत्थं विषयोत्थं तु राजसम् ॥ तामसं मो-
हदैन्योत्थं निर्गुणं मदपाश्रयम् ॥ २९ ॥ द्रव्यं देशः
फलं कालो ज्ञानं कर्म च कारकः ॥ श्रद्धावस्था कृति-
र्निष्ठा त्रैगुण्यः सर्व एव हि ॥ ३० ॥ सर्वे गुणमया भावाः
पुरुषाव्यक्तधिष्ठिताः ॥ दृष्टं श्रुतमनुध्यातं बुद्ध्या वा
पुरुषर्षभ ॥ ३१ ॥

कै कर्म करे सो निर्गुणहै ॥ २६ ॥ आत्माकी श्रद्धा सात्विकी, कर्मकी श्रद्धा राजसी, अधर्ममें श्रद्धा तामसी, मेरी सेवामें श्रद्धा निर्गुण है ॥ २७ ॥ जो आहार भक्ष्य भोज्य वस्तु होई पवित्र होइ विनाश्रम प्राप्तिहोइ सो सात्विक जानिये, जो इंद्रियनको परमप्रिय मधुर कटु अम्ल लवण ये सब राजस है, जातें पीडा होइ अशुद्ध होइ सो तामस जानिये, जो वस्तु मोकूं निवेदन करी होइ सो निर्गुण जानिये ॥ ॥ २८ ॥ आत्माके अनुभवतें भयो सुख सतोगुणरूपी है विषयानुभवतें भयो सुख राजस है, मोह दीनतातें सुख होइ सो तमोगुणी है, मेरे आश्रय करिकैं सुख निर्गुण है ॥ २९ ॥ ये जितेक पदार्थ कहि आये हैं द्रव्य, पवित्रवस्तु देश वन, ग्राम, फल, काल, ज्ञान, कर्म, कर्त्ता, श्रद्धा, अवस्था, आकृति, स्थिति ये सब त्रिगुणमय हैं ॥ ३० ॥ हे श्रेष्ठ पुरुष! ये सब प्रपंचरूप भाव गुणमय जानना, पुरुष और प्रकृति करिकैं अधिष्ठित है, जितनो देखोहो सुन्योहो बुद्धि करिकैं ध्यानमें रहै है सो सब गुणमय है ॥ ३१ ॥

एताः संसृतयः पुंसो गुणकर्मनिबन्धनाः॥ येनेमे निर्जिताः सौम्य गुणा जीवेन चित्तजाः॥३२॥ भक्तियोगेन मन्निष्ठो मद्भावाय प्रपद्यते॥ तस्माद्देहमिमं लब्ध्वा ज्ञानविज्ञानसंभवम्॥ ३३॥ गुणसङ्गं विनिर्धूय मां भजन्ति विचक्षणाः॥ निःसङ्गो मां भजेद्विद्वानप्रमत्तो जितेन्द्रियः॥ रजस्तमश्चाभिजयेत्सत्त्वसंसेवया मुनिः॥ ३४॥ सत्त्वं चाभिजयेद्युक्तो नैरपेक्ष्येण शान्तधीः॥ संपद्यते गुणैर्मुक्तो जीवो जीवं विहाय माम्॥ ३५॥ जीवो जीवविनिर्मुक्तो गुणैश्चाशयसंभवैः॥ मयैव ब्रह्मणा पूर्णो न बहिर्नान्तरश्चरेत्॥ ३६॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे पञ्चविंशोऽध्यायः॥ २५॥

ये सब गुण कर्म करिकै बांधी अर्थात् गुण और कर्मनके अनुसार पुरुषकों संसारकी गति है, हे सौम्य! जो जीव चित्तते उपजे गुण जीते सो भक्तियोग करिकैं निष्ठासो मेरे भावको प्राप्ति होइ हैं॥३२॥ ताते विवेकी तातें जीतिवेहीको उपाय करै है सो कहै हैं ताते ज्ञानविज्ञानकी देनहारी या मनुष्य देहको पाइकें गुणसंगकों दूरि करिकै निपुण मेरो भजन करै है॥ ३३॥ ज्ञानवान सावधान जितेंद्रिय सब संग छोडिके निःसंग होइ मेरो भजन करे॥ ३४॥ सतोगुणकी सेवा करिकै रजोगुण तमोगुणकों जीते, पीछे निरपेक्ष होइ शांत बुद्धि होइ मेरे विषें चित्त राखिकैं सतोगुणकोहू जीते॥ ३५॥ या प्रकार मोकों प्राप्ति होइ सो कहैं हैं, यह जीव जब गुणन करिकैं छूटे तब

अथ षड्विंशोऽध्यायः ।

श्रीभगवानुवाच ॥ मल्लक्षणमिमं कायं लब्ध्वा मद्धर्म आस्थितः ॥ आनन्दं परमात्मानमात्मस्थं समुपैति माम् ॥ १ ॥ गुणमय्या जीवयोन्या विमुक्तो ज्ञाननिष्ठया ॥ गुणेषु मायामात्रेषु दृश्यमानेष्ववस्तुतः ॥ वर्तमानोऽपि न पुमान् युज्यते वस्तुभिर्गुणैः ॥ २ ॥

अपने वासना देहकों छोडिके मोकों प्राप्त होइ जब मोकों प्राप्त भयो तब फेरी संसारी नहीं होइ, जीव लिंगशरीर करिकैं और चित्ततें उपजे गुण करिकैं मुक्तभये पीछें मोसों मिलिकैं ब्रह्म होइके रहे, विषयभोग न करे, और विषयभोगनको स्मरणहू न करे ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभागवते भाषाटीकायां एकादशस्कन्धे पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

अब छव्वीसके अध्यायमें दुष्ट संगते भ्रष्ट होइ, साधुसंगते योग, उत्तम सिद्धताके लिये पुरूरवा राजाकी कथा श्रीकृष्ण कहते हैं ॥ हे उद्धव ! यह जीव जातें मेरो रूप जान्यो जाइ ऐसे मनुष्यदेहकों पाइकैं मेरे धर्ममें स्थित होइ सो अपनें आत्मामें स्थित आनंद रूप परमात्मारूपकों प्राप्तिहोइ है ज्ञान निष्ठाके प्रभावके कारण गुणमय लिंगशरीरसों मुक्त भयो पुरुष गुण कि जो माया मात्र और वास्तविक रीतिसों प्रतीत है रहे हैं विनमें निवास करवे पैहू इन मिथ्या गुण-

१ दोनो एकहि रूप हमारे ॥ चाहै भजन करो निर्गुणसे चाहै सगुण सुधारे ॥ चाहै योग साध अभ्यन्तर रहो ध्यान उरधारे ॥ चाहै करो मूर्तिपूजन मंदिर बैठ सुखारे ॥ उत मन मंदिर सबके राजत इत लखनैन उधारे ॥ उत एक प्रणव अलख उच्चारण इत श्रीकृष्ण मुरारे ॥ यह दोनो वोहित तारण हित मन रुचिके अनुसारे ॥ जहां ज्वालाप्रसाद रुचि उपजै सेवहु कपट बिसारे ॥

सङ्गं न कुर्यादसतां शिश्नोदरतृपां क्वचित्॥ तस्यानुगस्तमस्यन्धे पतत्यन्धानुगाऽन्धवत् ॥ ३ ॥ ऐलः सम्राडिमां गाथामगायत बृहच्छ्रवाः ॥ उर्वशीविरहान्मुह्यन्निर्विण्णः शोकसंयमे ॥ ४ ॥ त्यक्त्वात्मानं व्रजन्तीं तां नग्न उन्मत्तवन्नृपः ॥ विलपन्नन्वगाज्जाये घोरे तिष्ठेति विक्लवः ॥ ५ ॥ कामानतृप्तोऽनुजुषन्क्षुल्लकान्वर्षयामिनीः ॥ न वेद यान्तीर्नायान्तीरुर्वश्याऽऽकृष्टचेतनः ॥ ६ ॥

नकैं संगको प्राप्त नहीं होयहै ॥ १॥२ ॥ यद्यपि वाकों सर्वत्र वस्तुकी इच्छा नहीं तथापि दुष्ट संग न करे जो केवल उपस्थ इंद्रिय और उदरकों तृप्ति करवेवारे हैं ऐसे दुष्टनको कबहूं संग न करे क्योंकि एकहू दुष्टजनको जो संग होइ तोहू महाघोर अंधतम नरकमें परे हैं जैसै एक अंधके पीछे दूसरौ अंधौ गिरै है बहुतनकों संग बाधा करै है, यामें कहा कहनो ॥३॥ इलाको पुत्र बडो यशस्वी राजा पुरूरवा जब प्रथम उर्वशीके विरहसों मोहित भयौ हो तब और दुखसो कातर हैकै कुरु क्षेत्रमें पहुँचौ और वहां उर्वशीको देख प्रार्थना कीनी वानें गन्धर्वनकी उपासना बताई विनके द्वारा राजा गन्धर्वलोकनमें प्राप्त भयौ जब वहां वाकौ शोक निवृत्त भयौ तब वाने यह गाथा गाई ॥ ४ ॥ पुरूरवा राजाकों छोडिकै जब उर्वशी चलीगई, तब उन्मत्त कीसी नाईं नग्न ताके पीछे विलाप करती जाय, यह कहत भयो हे घोरे ! हे जाये ! तिष्ठ तिष्ठ याप्रकार विव्हल हैकै कहत चल्यो ॥५॥ पुरूरवा राजा अपनी पहिली अवस्था कहै है, तुच्छकामनाको सेवत मैं तृप्त न भयो अनेकन वर्षनकी रात्रि आई और बीती पर विनमें जानत न भयो, चित्त उर्वशी करिकै हरचो है जब ज्ञान भयो

ऐल उवाच ॥ अहो मे मोहविस्तारः कामकश्मलचे-
तसः ॥ देव्या गृहीतकण्ठस्य नायुःखण्डा इमे स्मृताः
॥ ७ ॥ नाहं वेदाभिनिर्मुक्तः सूर्यो वाऽभ्युदितोऽमु-
या ॥ मुषितो वर्षपूगानां बताहानि गतान्युत ॥ ८ ॥
अहो मे आत्मसंमोहो येनात्मा योषितां कृतः ॥ क्री-
डामृगश्चक्रवर्ती नरदेवशिखामणिः ॥ ९ ॥ सपरिच्छ-
दमात्मानं हित्वा तृणमिवेश्वरम् ॥ यान्तीं स्त्रियं चा-
न्वगमं नग्न उन्मत्तवद्रुदन् ॥ १० ॥ कुतस्तस्यानुभावः
स्यात्तेज ईशत्वमेव वा ॥ योऽन्वगच्छत् स्त्रियं यान्तीं
खरवत्पादताडितः ॥ ११ ॥

तब जैसे वचन कहे सो कहे हैं ॥ ६ ॥ पहिलें आठ श्लोकन करिकै वा राजाको पश्चात्ताप कहे हैं, अहो देखो मेरे मोहको विस्तार मैंने इतनो विषय कीनो; तोऊ काम करिकै मलीन चित्तमें उर्वशी करिकै कंठ ग्रहण सहित रहत भयो, सो इतनी आयु मेरी व्यर्थ गई मैंने कछु जानी नहीं ॥ ७॥ अब अति खेद करिकै कहें हैं देखो या उर्वशी करिकै मैं वंचित भयो, सूर्य्य उदित भयो कै अस्त भयो यह मैंने न जान्यो बहुत वर्षनके इतनें दिन बीत गये मैंने कछू न जाने ॥ ८ ॥ हे उद्धव ! अब और कहे हैं अहो मेरे मनको देखो जो मेरो आत्मा इन स्त्रीनके खेलिवेको हरिण कियो मैं राजानको राजा हों, सो मैं ऐसो पराधीन भयो ॥ ९ ॥ राज्यादि सहित चक्रवर्ती मोकों देखो, जो तृणकीसी भांति मोय छोडिकै उठि जाति भई, ता स्त्रीके पीछे नग्न उन्मत्तकीसी भांति मैं हूं उठि चल्यो ॥ १० ॥ ऐसे मोको प्रताप तेज ऐश्वर्य कहांते होइ जो मैं चली जाति स्त्रीके पीछेई लग्यो चल्यो आयो जैसें गधैयाकी भांति वह तो पाइनसों मारति जायहै और

किं विद्यया किं तपसा किं त्यागेन श्रुतेन वा ॥ किं
विविक्तेन मौनेन स्त्रीभिर्यस्य मनो हृतम् ॥ १२ ॥ स्वा-
र्थस्याकोविदं धिङ्‌ मां मूर्खं पण्डितमानिनम् ॥ यो-
ऽहमीश्वरतां प्राप्य स्त्रीभिर्गोखरवज्जितः ॥ १३ ॥ सेव-
तो वर्षपूगान् मे उर्वश्या अधरासवम् ॥ न तृप्यत्या-
त्मभूः कामो वह्निराहुतिभिर्यथा ॥ १४ ॥ पुंश्चल्याऽ-
पहृतं चित्तं को न्वन्यो मोचितुं प्रभुः ॥ आत्मारामे-
श्वरमृते भगवन्तमधोक्षजम् ॥ १५ ॥ बोधितस्यापि
देव्या मे सूक्तवाक्येन दुर्मतेः ॥ मनोगतो महामोहो
नापयात्यजितात्मनः ॥ १६ ॥

गदहा वाके पीछें जैसें चल्यो जायहै तैसें मैं चल्यो गयो ॥ ११ ॥ जाको मन स्त्रीन करिकैं हरचोहै, ताको विद्या तप दान अध्ययन एकांतवास मौन इन साधनान करिकै कहा होइहै ॥ १२ ॥ विचार करो तातें मैंने अपनो स्वार्थ न जान्यो और आपुकों पंडित मानि लीनो मूर्ख हो मोकों धिक्कार है, जो मैं ऐश्वर्यकों पाइकैंहू स्त्री करिकै बैल गदहाकी भांति आधीन भयो ॥ १३ ॥ अनेक वर्षनके समूह मैं उर्वशीको अधरमधु पीवतभयो, तथापि यह काम अबहूं तृप्त नहीं होयहै, जैसें आहुतिनसो अग्नि तृप्त नहीं होइ ॥ १४ ॥ या प्रकार आठ श्लोकन करिकै वैराग्य कह्यो अब विवेक दश श्लोकन करिकै कहें है, जिनके चित्त वेश्यान्ने हरे हैं, तिन्है छुडाइवेकों आत्माराम ईश्वर अधोक्षज भगवान् विना और कौन समर्थ है तातें एक परमेश्वरहीको भजन कीजे; बहु तेरे यज्ञन करिके देवता प्रसन्न किये पर अंतसमयमें दुःखही पायो ॥ १५ ॥ ईश्वर प्रसाद विना मोह निवर्त्त नहीं होयहै

किमेतया नोऽपकृतं रज्ज्वा वा सर्पचेतसः ॥ रज्जु-
स्वरूपाविदुषो योऽहं यदजितेन्द्रियः ॥ १७ ॥ क्वायं
मलीमसः कायो दौर्गन्ध्याद्यात्मकोऽशुचिः ॥ क्व
गुणाः सौमनस्याद्या ह्यध्यासोऽविद्यया कृतः॥१८॥
पित्रोः किं स्वं नु भार्यायाः स्वामिनोऽग्नेः श्वगृध्र-
योः ॥ किमात्मनः किं सुहृदामिति यो नावसीयते
॥१९॥ तस्मिन् कलेवरेऽमेध्ये तुच्छनिष्ठे निषज्जते ॥
अहो सुभद्रं सुनसं सुस्मितं च मुखं स्त्रियाः ॥ २० ॥

तातें विनहीको भजन करिये, देखो उर्वशीनें उत्तम वाक्यन करिकैं मोकों समझायोहो, तोहू मेरे मनको मोह न गयो मैं अजितेंद्रिय महामूढ हों ॥ १६ ॥ उर्वशीको अपराध नहीं यह मेरोही अपराध है कारण कि मैं अपने अजितेन्द्रीपनसौंही दुःखी भयौ हूं वाने मेरो कहा अपराध कियोहै जेवरीकों न जान जैसें जेवरीमें सर्पको भ्रम करेतो विद्यवान जेवरीको कहा अपराध है ॥ १७ ॥ कदाचित् कहो याने अपने रूप गुणकरिकैं मोह उपजायो यह दोष याहीकों है, दोनों ये दोष मनमें रचे हैं अज्ञानतें हैं सो कहें हैं यह अति मलीन दुर्गंधादिसों भरी देह कहां और पुष्पकी सुगंधके तुल्य आत्माके गुण कहां, सब ठौर ममत्व अविद्याको कियोहै वस्तुतें विचारेतें सर्व मिथ्या है ॥१८॥ यह देह माताकी कहिये स्त्रीकी है कै स्वामीकी है कै अग्निकी है कै कूकर गीधनकी है कै आत्माकी है कै मित्रनकी है कौनकी कहिये इतनौ तो याको निश्चय होयंही नहीं है ॥ १९ ॥ ऐसे अपवित्र तुच्छदेहमें आसक्त होय हैं सो कहैं हैं देखो तो कैसो सुंदर मुख है कैसी सुंदर नाक है कैसो सुंदर हँसिवो है यों भूलें हैं और यह तो सब कृमि विष्ठा भस्मरूप हैं ॥ २० ॥

त्वङ्मांसरुधिरस्नायुमेदोमज्जास्थिसंहतौ॥ विण्मूत्रपूये रमतां कृमीणां कियदन्तरम्॥ २१॥ अथापि नोपसज्जेत स्त्रीषु स्त्रैणेषु चार्थवित्॥ विषयेन्द्रियसंयोगान्मनः क्षुभ्यति नान्यथा॥ २२॥ अदृष्टादश्रुताद्भावान्न भाव उपजायते॥ असंप्रयुञ्जतः प्राणान् शाम्यति स्तिमितं मनः॥२३॥ तस्मात्सङ्गो न कर्तव्यः स्त्रीषु स्त्रैणेषु चेन्द्रियैः॥ विदुषां चाप्यविश्रब्धः षड्वर्गः किमु मादृशाम्॥ २४॥ श्रीभगवानुवाच॥ एवं प्रगायन्नरदेवदेवः स उर्वशीलोकमथो विहाय॥ आत्मानमात्मन्यवगम्य मां वै उपारमज्ज्ञानविधूतमोहः॥ २५॥

त्वचा मांस रुधिर आंतें मेद मज्जा हाड संघातरूप देहमें जे आसक्त हैं तिनमें और विष्ठा मूत्र पीवमें जे रमै हैं तिनमें कहां अंतर कछू नहीं जैसै कृमि तैसे वे मनुष्य है॥ २१॥ यद्यपि या प्रकार स्त्री कदर्यमयी जानेहैं तोहू विन स्त्रीलंपटनके निकट जो विवेकी होइ तौं न जाय विषय असत इंद्रियनके संगतें मन सर्वथा विकारको प्राप्त होइ है संग न होइ तो न होइ तातें दूररहे॥ २२॥ जो वस्तु देखी सुनी नहीं है वामें मनकी इच्छा नहीं होय है या कारण जो पुरुष इन्द्रियनको रोकै है वा पुरुषको मन निश्चय हैकै शांत है जाय है॥ २३॥ तातें इंद्रियनसौं स्त्रीनसो और स्त्रीलंपटनको संग न करे जे विवेकी ज्ञानवंत हैं तिनहूंकों इन इंद्रियनको विश्वास कर्त्तव्य नहीं मो सरीखेनकी तो बातही कहा कहिये॥ २४॥ अब श्रीकृष्ण उद्धवतें कहैं हैं याप्रकार गावत राजाधिराज वह राजा उर्वशी लोकको छोडि अपनेमें आत्मरूपको जानि ज्ञानसों मोह निवृत्ति करिकैं

ततो दुःसङ्गमुत्सृज्य सत्सु सज्जेत बुद्धिमान् ॥ सन्त
एतस्य छिन्दन्ति मनोव्यासङ्गमुक्तिभिः ॥ २६ ॥
सन्तोऽनपेक्षा मच्चित्ताः प्रशान्ताः समदर्शिनः ॥ नि-
र्ममा निरहंकारा निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः ॥ २७॥ तेषु
नित्यं महाभाग महाभागेषु मत्कथाः ॥ संभवन्ति
हिता नृणां जुषतां प्रपुनन्त्यघम् ॥२८॥ ता ये शृण्व-
न्ति गायन्ति ह्यनुमोदन्ति चादृताः ॥ मत्पराः श्रद्द-
धानाश्च भक्तिं विन्दन्ति ते मयि ॥ २९ ॥ भक्तिं लब्ध-
वतः साधोः किमन्यदवशिष्यते ॥ मय्यनन्तगुणे ब्र-
ह्मण्यानन्दानुभवात्मनि ॥३० ॥ यथोपश्रयमाणस्य
भगवन्तं विभावसुम् ॥ शीतं भयं तमोऽप्येति साधून्
संसेवतस्तथा ॥ ३१ ॥

निवृत्त होत भयो ॥ २५ ॥ तातें दुःखसंगको छोडि बुद्धिवंत ह्वैकें साधुसों संग करै वे अपने वचनसों याके मनकी गांठि काटेहै ॥२६॥ साधु कछु चाहें नहीं हैं निरपेक्ष है, उनके चित्त मेरे विषें हैं, समदृष्टि है ममतारहित है, अहंकाररहित शांत हैं, सुख दुःख परिग्रहही नहीं है तातें विनको संगही या मनुष्यको तारेहै ॥ २७ ॥ हे महाभाग! वे बडे भाग्यवंत है जो निरंतर मेरी कथानको श्रवण करे है वे कथा मनुष्यके मनके संपूर्ण पाप दूरि करेहै ॥ २८ ॥ जे कोऊ कथा सुनेहैं गामें है स्तुति करें है आदर करें है ते मो विषें तत्पर ह्वैके श्रद्धासों मेरी भक्तिकों पामेंगे ॥ २९ ॥ अनंत गुण पूर्ण आनंदरूप अनुभवरूप मो विषें जा साधुने भक्ति पाई फेरि वाकों और कहा बाकी रह्यो ॥ ३० ॥ जैसें भगवान् अग्निकी सेवातें शीत अंधकार जाय

निमज्ज्योन्मज्जतां घोरे भवाब्धौ परमायनम् ॥ सन्तो ब्रह्मविदः शान्ता नौर्दृढेवाप्सु मज्जताम् ॥ ३२ ॥ अन्नं हि प्राणिनां प्राण आर्तानां शरणं त्वहम् ॥ धर्मो वित्तं नृणां प्रेत्य सन्तोऽर्वाग् बिभ्यतोऽरणम् ॥ ३३ ॥ सन्तो दिशन्ति चक्षूंषि बहिरर्कः समुत्थितः ॥ देवता बान्धवाः सन्तः सन्त आत्माऽहमेव च ॥ ३४ ॥ वैतसेनस्ततोऽप्येवमुर्वश्या लोकनिस्पृहः ॥ मुक्तसङ्गो महीमेतामात्मारामश्चचार ह ॥ ३५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे ऐलगीतं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

है तैसें साधुसेवातें संसारभय जाय है ॥ ३१ ॥ प्राणी घोर संसार समुद्रमें बूडते उछरतेहै तिनको ब्रह्मके ज्ञाता साधु शांतही परम गति हैं जैसे जलमें बूडतेंको दृढ नाव परम गति होय है ॥ ३२ ॥ प्राणीनको जैसे अन्न प्राण है तैसें आर्त्तनकों शरण मैं हों, मनुष्यकों परलोकको धर्मही धन है तैसें संसारते डरे पुरुषकों शरणके देनवारे साधु है ॥ ३३ ॥ साधु नेत्र देइ है जैसे नेत्रनतें सब ज्ञान होइ तैसें साधुनतें सब गुण निर्गुणज्ञान होई सूर्य्य बाहिर प्रकाशक है साधु ईश्वरको ज्ञान प्रकाश करै है देवता बांधव साधु है, आत्मा है, सो संत जननमेंही है ॥ ३४ ॥ प्रथम याको पिता शुद्धमनसों स्त्रीरूप ह्वैके पार्वतीके वनमें गयोहो ताते ताके बेटा पुरूरवाको नाम वैतसेन कह्यो सो ता उर्वशी लोकतै ऐसें निस्पृह ह्वैके संग छोडि आत्मारामहोइ या पृथ्वीमें विचरत भयो ॥ ३५ ॥

इति श्रीमद्भा० ए० श्रीभगवदुद्धवसंवादे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

अथ सप्तविंशोऽध्यायः ।

उद्धव उवाच ॥ क्रियायोगं समाचक्ष्व भवदाराधनं प्रभो ॥ यस्मात्त्वां ये यथार्चन्ति सात्वताः सात्वतर्षभ ॥ १॥ एतद्वदन्ति मुनयो मुहुर्निःश्रेयसं नृणाम् ॥ नारदो भगवान् व्यास आचार्योऽङ्गिरसः सुतः॥२॥ निःसृतं ते मुखाम्भोजाद्यदाह भगवानजः ॥ पुत्रेभ्यो भृगुमुख्येभ्यो देव्यै च भगवान् भवः ॥ ३ ॥ एतद्वै सर्ववर्णानामाश्रमाणां च संमतम् ॥ श्रेयसामुत्तमं मन्ये स्त्रीशूद्राणां च मानद ॥ ४ ॥ एतत्कमलपत्राक्ष कर्मबन्धविमोचनम् ॥ भक्ताय चानुरक्ताय ब्रूहि विश्वेश्वरेश्वर ॥५॥

अब सत्ताईसके अध्यायमें संक्षेपतें सांख्यकर्म योग कहें हैं जातें चित्त प्रसन्न होइ सब कामकी प्राप्ति होय है॥ तहां उद्धवजी पूछेहै हे प्रभो! हे यादवनमें श्रेष्ठ! अपनो आराधनरूप क्रियायोग मोसों कहो तातें तुम्हारे भक्त जैसे तुम्हारी पूजा करैहै सो कहो ॥ १ ॥ यह योग फिरि पूछतभये ताको कारण कहा तहां कहैं हैं तुम्हारो यह पूजन मनुष्यनकों परमश्रेयदायक है नारद भगवान् व्यास अंगिराके पुत्र बृहस्पति ये सब मुनीश्वर वारंवार कहें हैं ॥ २ ॥ जो वाणी तुम्हारे मुखकमलतें निकसी सोई भगवान् अजन्मा ब्रह्मा अपने पुत्र भृगु आदि सबनसों कहत भये, जो महादेवने पार्वतीसों कह्योहो सो तुम हमसों कह्योहो ॥ ३ ॥ हे मानके दाता! यह सब वर्ण आश्रमनकों संमत है, स्त्री शूद्रकों परम कल्याण करैहै ॥ ४ ॥ हे कमलदलनेत्र! हे विश्वेश्वरनके ईश्वर! यह कर्मबंधनको छुडामनहारो पूजाविधान

श्रीभगवानुवाच ॥ न ह्यन्तोऽनन्तपारस्य कर्मकाण्डस्य चोद्धव ॥ संक्षिप्तं वर्णयिष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥ ६ ॥ वैदिकस्तान्त्रिको मिश्र इति मे त्रिविधो मखः ॥ त्रयाणामीप्सितेनैव विधिना मां समर्चयेत् ॥ ७ ॥ यदा स्वनिगमेनोक्तं द्विजत्वं प्राप्य पूरुषः ॥ यथा यजेत मां भक्त्या श्रद्धया तन्निबोध मे ॥ ८ ॥ अर्चायां स्थण्डिलेऽग्नौ वा सूर्ये वाऽप्सु हृदि द्विजे ॥ द्रव्येण भक्तियुक्तोऽर्चेत् स्वगुरुं माममायया ॥ ९ ॥ पूर्वं स्नानं प्रकुर्वीत धौतदन्तोऽङ्गशुद्धये॥ उभयैरपि च स्नानं मन्त्रैर्मृद्ग्रहणादिभिः ॥ १० ॥

मोसो कहो, मैं तुह्मारो भक्त हों तुम विषें अनुरक्त हो ॥ ५ ॥ तब श्रीकृष्ण कहे हैं हे उद्धव ! यह कर्मकांड अनंत हैं, याको पार नहीं, तातें जैसे है तैसे क्रम करिकैं संक्षेपते कहूंहूं ॥ ६ ॥ वैदिक तांत्रिक मिश्रित तप यह तीनि प्रकारको मेरो पूजन है इन तीनोंनमें जाकी जैसी इच्छा होइ ता विधिसों भक्ति करिकैं मोको पूजे ॥ ७ ॥ जब ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तीनि वर्ण अपनी विधिसों भक्ति करिकैं मोकों पूज्यो चाहें ताको प्रकार सुनि, प्रथम गर्भतें अष्टमके एकादशके द्वादशके वर्षमें अपनें वेदमें कह्यो गायत्री उपदेश पाइकै पुरुष जैसे भक्ति करिकै मोकों भजे सो मोतें सुनो ॥ ८ ॥ प्रतिमामें पूजा योग्य, भूमिमें अग्निमें अपनें हृदयमें सूर्य्यमें जलमें ब्राह्मणमें द्रव्य करिके भक्तिसों निष्कपट ह्वैकें अपने गुरुनको पूजे ॥ ९ ॥ आपु प्रथम तो दंतधावन करे, माटी ले अंगशुद्धिके लिये स्नान करे पीछे वैदिक तांत्रिक विधिसों स्नान करे ॥ १० ॥

संध्योपास्त्यादिकर्माणि वेदेनाऽऽचोदितानि मे ॥
पूजां तैः कल्पयेत् सम्यक्संकल्पः कर्मपावनीम्
॥ ११ ॥ शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सै-
कती ॥ मनोमयी मणिमयी प्रतिमाऽष्टविधा स्मृता
॥ १२॥ चलाचलेति द्विविधा प्रतिष्ठा जीवमन्दिरम् ॥
उद्वासावाहने न स्तः स्थिरायामुद्धवार्चने ॥ १३ ॥
अस्थिरायां विकल्पः स्यात् स्थण्डिले तु भवेद्द्वयम्॥
स्नपनं त्वविलेप्यायामन्यत्र परिमार्जनम् ॥ १४ ॥
द्रव्यैः प्रसिद्धैर्मद्यागः प्रतिमादिष्वमायिनः ॥ भक्त-
स्य च यथालब्धैर्हृदि भावेन चैव हि ॥ १५ ॥

पीछें वेदविहित संध्योपासनादि कर्म सब करे, पीछें तिन करिकें कर्मकी दूर करनहारी मेरी पूजा करे, मनकों संकल्प मेरे विषें राखे ॥ ११ ॥ अब प्रतिमाके भेद कहें हैं काष्ठकी, लोहेकी, माटीकी, चित्रकी, रेतकी, मानसी, मणिजटित होइ ये आठ प्रतिमा कहै हैं ॥ १२ ॥ अब प्रतिमाके भेद कहिके विशेष कहैं हैं हे प्यारे उद्धव ! भगवान्‌की मानसी पूजा करनी हो तौ हृदयमें मनोमयी मूर्तिकी पूजा करनी प्रतिमा दो प्रकारकी है एक तो चर और अचर तहां स्थिर मूर्तिकी पूजामें आवाहन विसर्जन नहीं है ॥ १३ ॥ शालग्राममें आवाहन विसर्जन न करे और ठौर करे, अस्थिर प्रतिमाहूमें आवाहन विसर्जन है कहूं नहीं है; माटी चंदनकी प्रतिमामें औरचित्रकीमें मार्जन मात्र करे, स्नान नहीं करावें ॥ १४ ॥ अब सकाम निष्काम भेद करिकें विशेष कहैं हैं, सकामको प्रसिद्ध द्रव्य पूजामें कहै हैं तिन करिकें मेरी प्रतिमामें पूजा करे, जो भक्त निष्काम होइ सो जो सामग्री यथालाभ पावै सो सब मोको समर्पण करै न पावे तब वह

स्नानालंकरणं प्रेष्ठमर्चायामेव तूद्धव ॥ स्थण्डिले तत्त्वविन्यासो वह्नावाज्यप्लुतं हविः॥ १६ ॥ सूर्ये चाभ्यर्हणं प्रेष्ठं सलिले सलिलादिभिः॥श्रद्धयोपाहृतं प्रेष्ठं भक्तेन मम वार्यपि ॥ १७ ॥ भूर्यप्यभक्तोपहृतं न मे तोषाय कल्पते ॥ गन्धो धूपः सुमनसो दीपोऽन्नाद्यं च किं पुनः ॥ १८ ॥ शुचिः संभृतसंभारः प्राग्दर्भैः कल्पितासनः॥ आसीनः प्रागुदग् वार्चेदर्चायामथ संमुखः ॥ १९॥ कृतन्यासः कृतन्यासां मदर्चां पाणिना मृजेत् ॥ कलशं प्रोक्षणीयं च यथावदुपसाधयेत् ॥ २० ॥

हृदयमें भावना करिकैं पूजा करे, तो मैं वाके भावही करिकै सब मानिलेउहूं ॥ १५ ॥ स्नान अलंकार ये सब प्रतिमाहीमें मोको प्रिय है, हे उद्धव ! स्थंडिलमें मंत्रही करिकै अपने स्थानमें तिन तिन देवतानको स्थापन है, अग्निमें घृतसंयुक्त हविकरिकै होम करे ॥ १६ ॥ सूर्य्यमें अर्घ उपस्थान करे, जलमें तर्पणादि करै, भक्तनकों श्रद्धा करिकै दियो जलमात्रहू मोको अति प्रिय है ॥ १७ ॥ सुगंध फूल धूप दीप अन्नादिक समर्पण करे तो वाको कहा कहनो है, मेरो भक्ति न होइ और बहुत समर्पै तो मैं वासों संतुष्ट नहीं होउहूं ॥ १८ ॥ अब पूजाको प्रकार कहे हैं, प्रथम तो आपु स्नानादिक शौच करिकै शुद्ध होइ, पीछे पूजाकी सामग्री सब शुद्ध करिकैं राखे, फेरि पूर्वमुख वा उत्तरमुख बैठे पूर्वमुखको अग्र करिकैं दर्भनसों आसन करिकै स्थिर प्रतिमामें सन्मुख व्हैकें पूजा करे ॥ १९ ॥ पहिले तो न्यास करे, पीछें मूलमंत्रनकरिकैं न्यास कृत मेरी प्रतिमाकों हाथसों स्पर्श करे, रातिके निर्माल्य फूल पत्र जो कछु होइ सो दूरि करे आगे जल भरयो

तदद्भिर्देवयजनं द्रव्याण्यात्मानमेव च ॥ प्रोक्ष्य पात्राणि त्रीण्यद्भिस्तैस्तैर्द्रव्यैश्च साधयेत् ॥ २१ ॥ पाद्यार्घ्याचमनीयार्थं त्रीणि पात्राणि दैशिकः ॥ हृदा शीर्ष्णाऽथ शिखया गायत्र्या चाभिमन्त्रयेत् ॥ २२॥ पिण्डे वाय्वग्निसंशुद्धे हृत्पद्मस्थां परां मम ॥ अण्वीं जीवकलां ध्यायेन्नादान्ते सिद्धभाविताम्॥२३॥तयात्मभूतया पिण्डे व्याप्ते संपूज्य तन्मयः ॥ आवाह्यार्चादिषु स्थाप्य न्यस्ताङ्गं मां प्रपूजयेत् ॥ २४ ॥

कलश राखे और प्रोक्षणीपात्र राखे ताकों चंदन तुलसीपत्र पुष्प करिकैं शोधन करे ॥ २० ॥ पीछें प्रोक्षणीके जलसों पूजनकों स्थान शुद्ध करे, ताहीसों द्रव्यकों और अपनपेको प्रोक्षण करे, पीछे पाद्यके लियें ता कलशके जलसों तीनि पात्र भरराखे,तिनहूंको इन वस्तुनते शोधन करे, पाद्यको सामा दूब कमल विष्णुक्रांता ये चाहिये, गंध पुष्प अक्षत यव कुश तिल सरसों दूर्वा ये अर्घ्यको आठ द्रव्य चाहियें, जावित्री लौंग कंकोल ये आचमनको चाहिये ॥२१ ॥ पाद्य अर्घ्य आचमनके तीन पात्रनको हृदय मस्तक शिखा मंत्र करिकैं और गायत्री करिके अभिमंत्रण ॥ २२ ॥ करे पीछें देहकों कोष्ठगत वायु करिकै शोधे, मूलाधाप विषें स्थित अग्नि करिकै जरावे, फेरि ललाट विषें स्थित चंद्रमामंडल है तहां अमृत प्रवाह करिकै अमृतमय करे तहां हृदयकमलमें स्थित सूक्ष्म जीव कला नारायण मूर्ति है, ताकों ध्यानकरकें प्रणव अक्षरके अकार उकार मकार कि जाकौ सिद्ध ध्यान करै हैं ध्यान करे ॥ २३ ॥ दीपकके प्रकाशसौ घरकी समान अपने स्वरूपकी भावनासो जब देह व्याप्त होइ प्रथम वा देहहीमें पूजा करिकै आपु तन्मय होय, पीछें आवाहन करिकैं प्रतिमामें

पाद्योपस्पर्शार्हणादीनुपचारान् प्रकल्पयेत् ॥ धर्मा-
दिभिश्च नवभिः कल्पयित्वाऽऽसनं मम ॥ २५ ॥
पद्ममष्टदलं तत्र कर्णिकाकेसरोज्ज्वलम् ॥ उभाभ्यां
वेदतन्त्राभ्यां मह्यं तूभयसिद्धये ॥ २६ ॥ सुदर्शनं
पाञ्चजन्यं गदासीषुधनुर्हलान् ॥ मुशलं कौस्तुभं
मालां श्रीवत्सं चानुपूजयेत् ॥२७॥नन्दं सुनन्दं गरु-
डं प्रचण्डं चण्डमेव च ॥ महाबलं बलं चैव कुमुदं कु-
मुदेक्षणम् ॥ २८॥ दुर्गां विनायकं व्यासं विष्वक्सेनं
गुरून् सुरान् ॥ स्वे स्वे स्थाने त्वभिमुखान् पूजये-
त्प्रोक्षणादिभिः ॥ २९ ॥

स्थापन करे, फिर न्यास करिकैं मोको पूजे ॥ २४ ॥ सो प्रकार कहे हैं फेरि आवाहन करि प्रतिमामें पाद्य आचमन अर्घ्यादि सब उपचार करे धर्मादिक नव शक्ति है तिन करिकैं मोकों आसन देइ ॥ २५ ॥ अष्टदल कमल बनावै, केशरिसो उज्ज्वल सुंदर कर्णिकामें वेद आगममें कथित मुक्ति पाइवेके फलकी सिद्धि निमित्त वैदिक तांत्रिक मार्ग करिकै मेरी पूजा करे, वह आसन सुखशय्या है, ताके चारि कोण हैं, चार पाउ हैं तहां धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य आग्नेय नैर्ऋत्य वायव्य ईशान्य इन चारिहू कोनमें राखे ॥ २६ ॥ आयुधनकी पूजा करे सुदर्शनचक्र पांचजन्य शंख गदाखड्ग बाण धनुष हल मूसल कौस्तुभ माला श्रीवत्सकी पूजा करे ॥ २७ ॥ नंद सुनंद गरुड चंड प्रचंड महाबल कुमुद कुमुदेक्षण ये आठ पार्षद हैं तिनकी आठों दिशानमें पूजा करे ॥ २८ ॥ दुर्गा विनायक व्यास विष्वक्सेनकों कोनेनमें राखे, गुरुको वाम भागमें राखे, देवता इंद्र आदि लोकपालनको पूर्वतें लेकें अपनी अपनी दिशानमें ईश्वरके सन्मुख राखे, अर्घ्यपाद्य

चन्दनोशीरकर्पूरकुङ्कुमागुरुवासितैः॥ सलिलैः स्नापयेन्मन्त्रैर्नित्यदा विभवे सति ॥ ३० ॥ स्वर्णघर्मानुवाकेन महापुरुषविद्यया॥ पौरुषेणापि सूक्तेन सामनीराजनादिभिः ॥ ३१ ॥ वस्त्रोपवीताभरणपत्रस्रग्गन्धलेपनैः॥ अलंकुर्वीत सप्रेम मद्भक्तो मां यथोचितम् ॥ ३२ ॥ पाद्यमाचमनीयं च गन्धं सुमनसोऽक्षतान् ॥ धूपदीपोपहार्याणि दद्यान्मे श्रद्धयार्चकः ॥ ३३ ॥ गुडपायससर्पींषि शष्कुल्यापूपमोदकान् ॥ संयावदधिसूपांश्च नैवेद्यं सति कल्पयेत् ॥ ३४ ॥ अभ्यङ्गोन्मर्दनादर्शदन्तधावाभिषेचनम् ॥ अन्नाद्यं गीतनृत्यानि पर्वाणि स्युरुतान्वहम् ॥ ३५ ॥

करिकैं पूजा करे ॥ २९ ॥ चंदन उशीर कपूर कुंकुम अगर इन सुगंधन करिकै राखे, जलसों मंत्रण करिकें स्नान करावे, जो वैभव होइ तो ये सामग्री करे न होइ तो जो होइ तासों करे॥ ३० ॥ सुवर्णघर्मानुवाक और महापुरुष विद्या और सहस्रशीर्षा और राजानकीसी सामग्रीन करिके पूजा करे॥ ३१ ॥ स्नानपीछे वस्त्र जनेऊ आभूषण मकराकृत कुंडल माला सुगंध लेपन करिकै श्रृंगार करे, प्रेमसहित मेरो भक्त यथोचित या प्रकार मेरो पूजन करे॥ ३२ ॥ पाद्य आचमन गंध पुष्प अक्षत धूप दीप नैवेद्य ये सब श्रद्धा करिकै भक्त देई॥३३॥ वैभव होई तो नैवेद्यकी अनेक प्रकारकी सामग्री करे, गुड मिश्री खीर आदिक घृत पुरी पुआ लडुवा गेहूंकी खीर दही दालि ये सब करे ॥ ३४ ॥ पर्वमें उत्सवमें अथवा नित्य फुलेलसों अभ्यंग उबटनो दर्पण दंतधावन स्नान अन्नादि पाक सामग्री गीत नृत्य ये सब करने

विधिना विहिते कुण्डे मेखलागर्तवेदिभिः॥ अग्निमाधाय परितः समूहेत् पाणिनोदितम्॥३६॥ परिस्तीर्याथ पर्युक्षेदन्वाधाय यथाविधि॥ प्रोक्षण्याऽऽसाद्य द्रव्याणि प्रोक्ष्याग्नौ भावयेत माम्॥ ३७॥ तप्तजाम्बूनदप्रख्यं शङ्खचक्रगदाम्बुजैः॥लसच्चतुर्भुजं शान्तं पद्मकिञ्जल्कवाससम्॥ ३८॥ स्फुरत्किरीटकटककटिसूत्रवराङ्गदम्॥ श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभं वनमालिनम्॥ ३९॥ ध्यायन्नभ्यर्च्य दारूणि हविषाऽभिघृतानि च॥प्रास्याऽऽज्यभागावाऽऽघारौ दत्त्वा चाज्यप्लुतं हविः॥४०॥ जुहुयान्मूलमन्त्रेण षोडशर्चावदानतः॥ धर्मादिभ्यो यथान्यायं मन्त्रैः स्विष्टकृतं बुधः॥४१॥

या प्रकार प्रतिमामें पूजा कही है अब अग्निमें पूजा कहें हें विधिसों यदि सदा न हो सकै तौ पर्वमें वा उत्सवके दिन अवश्य करे॥३५॥ कुंड बनावे, मेखला गर्त्त और वेदी कर तामें अग्नि राखे प्रथम हाथसों एकत्र करे तब कुंडमें राखे॥ ३६॥ पीछे कुशा बिछावे चारोंहू दिशा छिरके अन्वाधान नामकर्म समिधसों होम करिके जल फेरि छिरके मेरो ध्यान करे॥ ३७॥ ऐसो रूप मेरो ध्यान करे, तप्त सुवर्ण जैसो लाल होइ तैसो रूप पीताम्बर पहिरे शांत रूप शंख चक्र गदा पद्मसो चारों भुजा शोभित है॥ ३८॥ प्रकाशित मुकुट कंकण मेखला बाजूबंद श्रीवत्सको वक्षःस्थलमें चिह्न शोभायुक्त कौस्तुभमणि वनमाला धरे हैं॥ ३९॥ ऐसे रूपको ध्यान कर घृत मिलाइ समिधसों होम करे, आज्य भाग और आघार नाम होम करे और घृतसों बूडी हविष्य लेइ॥४०॥ मूलमंत्रसों सहस्रशीर्षाकी ऋचासो

अभ्यर्च्याथ नमस्कृत्य पार्षदेभ्यो बलिं हरेत् ॥ मूलमन्त्रं जपेद्ब्रह्म स्मरन्नारायणात्मकम् ॥ ४२ ॥ दत्त्वाचमनमुच्छेषं विष्वक्सेनाय कल्पयेत् ॥ मुखवासं सुरभिमत्ताम्बूलाद्यमथार्हयेत् ॥ ४३ ॥ उपगायन् गृणन् नृत्यन्कर्माण्यभिनयन् मम ॥ मत्कथाः श्रावयन् शृण्वन् मुहूर्तं क्षणिको भवेत् ॥४४॥ स्तवैरुच्चावचैः स्तोत्रैः पौराणैः प्राकृतैरपि ॥ स्तुत्वा प्रसीद भगवन्निति वन्देत दण्डवत् ॥ ४५॥ शिरो मत्पादयोः कृत्वा बाहुभ्यां च परस्परम् ॥ प्रपन्नं पाहि मामीश भीतं मृत्युग्रहार्णवात् ॥ ४६ ॥

होमकरे धर्मादिक देवतानके निमित्त यथायोग्य होम करे ॥ ४१ ॥ पार्षदनको बलि देइ, नारायणरूप ब्रह्मको स्मरण करते देवतानके समीप बैठिके मूलमंत्र जपे, फेरि नैवेद्य करिकै भोजनकी सामग्रीको ध्यान करे ॥ ४२ ॥ पीछे आचमन देइ, वह शेष उच्छिष्टभाग विष्वक्सेनके आगे रख उनकी आज्ञाते आप लेइ पीछे मुखवासार्थ सुगंध तांबूल सब देइ ॥ ४३ ॥ ता पीछे मेरे चरित्र गावैं, नृत्य करेमेरे कर्मनको अभिनय दिखावे, मेरी कथा मोकूं सुनावे, आपुहू सुनें, एक मुहूर्त्त निश्चल चित्त ह्वैकें रहै ॥ ४४ ॥ वेद पुराणके तथा प्राकृत भाषाके स्तोत्रन करिकै स्तुति करे, हे भगवन् ! प्रसन्न होउ, यह कहिकै दंडवत् प्रणाम करे ॥ ४५ ॥ प्रणाम या प्रकार करे शिर मेरे पाउ ऊपर राखे दोऊ हाथबांधि पीठिपर राखे अपराधीकीसी नाईं हैं तुम्हारे शरण हों हे प्रभो ! मोकों राखिलेउ मृत्युरूप जहां ग्राह है ऐसे संसारसमुद्रते भयभीत हों ॥ ४६ ॥

इति शेषां मया दत्तां शिरस्याधाय सत्वरम् ॥ उद्वासयेच्चेदुद्वास्यं ज्योतिर्ज्योतिषि तत् पुनः ॥ ४७ ॥ अर्चादिषु यदा यत्र श्रद्धा मां तत्र चार्चयेत् ॥ सर्वभूतेष्वात्मनि च सर्वात्माहमवस्थितः ॥ ४८ ॥ एवं क्रियायोगपथैः पुमान् वैदिकतान्त्रिकैः ॥ अर्चन्नुभयतः सिद्धिं मत्तो विन्दत्यभीप्सिताम् ॥ ४९ ॥ मदर्चां संप्रतिष्ठाप्य मन्दिरं कारयेत् दृढम् ॥ पुष्पोद्यानानि रम्याणि पूजायात्रोत्सवाऽऽश्रितान् ॥ ५० ॥ पूजादीनां प्रवाहार्थं महापर्वस्वथान्वहम् ॥ क्षेत्रापणपुरग्रामान् दत्त्वा मत्सार्ष्टितामियात् ॥ ५१ ॥ प्रतिष्ठया सार्वभौमं दानेन भुवनत्रयम् ॥ पूजादिना ब्रह्मलोकं त्रिभिर्मत्साम्यतामियात् ॥ ५२ ॥

या प्रकार पूजा करिकैं शेष प्रसाद पुष्प तुलसी मोइ देउ ऐसो ध्यान करे ताको लेकें माथे धरे, आदरपूर्वक विसर्जन कर ज्योति ज्योतिसों जाइ मिलावे ॥ ४७ ॥ इतने स्थलमें प्रतिमादिकनमें, कौन मुख्य है यापै कहे हैं जाकों जहां श्रद्धा हो सो तहां पूजा करे, जाते सर्व भूतनमें सर्वरूप मैंही स्थित हों और सर्व भूत मोमें निवास करे हैं ॥ ४८ ॥ या प्रकार क्रिया योगके मार्ग वैदिक तांत्रिकके प्रकारसौं पूजा करते पुरुष या लोक परलोककी वांछित सिद्धि मोते पावे है ॥ ४९ ॥ मेरी प्रतिमाकी स्थापना करिकैं दृढ मंदिर बनावे, पीछे फूलनको उत्तम बाग बनवावें, जहां मेरी यात्रा उत्सव होय हैं ॥ ५० ॥ नित्य अथवा बडे पर्वन विषे पूजा सदा चली जाइ, ताके निमित्त क्षेत्र वा पुर ग्राम लगाय देई, तब मेरे समान ऐश्वर्य्यकों पावे ॥ ५१ ॥ प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करे तो सब पृथ्वीको राजा होय, मंदिर बनवावनवारो त्रिलो-

मामेव नैरपेक्ष्येण भक्तियोगेन विन्दति ॥ भक्तियोगं स लभते एवं यः पूजयेत माम् ॥ ५३ ॥ यः स्वदत्तां परैर्दत्तां हरेत सुरविप्रयोः ॥ वृत्तिं स जायते विड्भुग् वर्षाणामयुतायुतम् ॥५४॥ कर्तुश्च सारथेर्हेतोरनुमोदितुरेव च ॥ कर्मणां भागिनः प्रेत्य भूयो भूयसि तत्फलम् ॥ ५५ ॥ इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

कीको राज्य पावे, पूजा आदि ये सब कृत्य करे तो ब्रह्मलोक पावें, तीनों प्रकार करे तो मेरी सायुज्य मुक्तिको पावे ॥ ५२ ॥ या प्रकार पूजाको फल मुक्तिपर्यंत कह्यो, अब निष्काम होइ ताकों भक्तिको फल कहै है, निरपेक्ष भक्तियोग करिकैं मोहींकों पावे सो भक्ति कैसें होइ तहां कहें हैं भक्ति तब होइ जब ऐसी भांति मेरी पूजा करे ॥ ५३ ॥ दाताको फल कह्यो, अब दै करिकैं छीड लेइ ताकों निंदित कर्म कहै हैं जो अपनी दीनि तथा पराई दीनि ब्राह्मण देवताकी वृत्तिको हरण करलेइ सो अयुत वर्षपर्यंत विष्ठाको भोजन करै है ॥ ५४ ॥ जो फल कर्त्ताकों सोइ फल सहाइकारिको होइ है प्रेरक अनुमोदनकर्त्ता इन सबनको परलोकमें एकसो फल होइ कारण यह कि यह सब कर्मके विभागी हैं जिनसे जितनौ अधिक कियौ, वाकू वितनोही अधिक फल मिलै है सहाइ आदि कर्म बहुत कियो होइ तो बहुत फल होय है ॥ ५५ ॥

इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां एकादशस्कन्धे श्रीभगवदुद्धवसंवादे पुरुषार्चनविधिर्नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अथ अष्टाविंशोऽध्यायः।

श्रीभगवानुवाच ॥ परस्वभावकर्माणि न प्रशंसेन्न गर्हयेत् ॥ विश्वमेकात्मकं पश्यन्प्रकृत्या पुरुषेण च॥ १ ॥ परस्वभावकर्माणि यः प्रशंसति निन्दति ॥ स आशु भ्रश्यते स्वार्थादसत्यभिनिवेशतः ॥ २ ॥ तैजसे निद्रयापन्ने पिण्डस्थो नष्टचेतनः ॥ मायां प्राप्नोति मृत्युं वा तद्वन्नानार्थदृक् पुमान् ॥ ३ ॥ किं भद्रं किमभद्रं वा द्वैतस्यावस्तुनः कियत् ॥ वाचोदितं तदनृतं मनसा ध्यातमेव च ॥ ४ ॥

अब अट्ठाईसके अध्यायमें पहिलें जो विस्तारसों ज्ञानयोग कह्यो हो सो अब फिर संक्षेपतें कहैं हैं ॥ श्रीकृष्ण कहैं हैं हे उद्धव ! जो मेरी भक्तिमें पूजामेंरहै सो यह ज्ञाननिष्ठा करै पराये स्वभाव कर्मनकी स्तुति और निंदा न करै, सो संपूर्ण विश्वकों प्रकृति पुरुष करिकैं एक रूप जानें मोतेंभिन्न न जाने ॥ १ ॥ जो पराये स्वभाव कर्मकी निंदा करे सराहना करे जाके मिथ्याभूत प्रपंच दृष्टि होइ सो शीघ्र ज्ञानते भ्रष्ट होइ ॥ २ ॥ जब इंद्रियगण निद्रा करिकै व्याप्त होय हैं, तब मन करिकै यह जीव स्वप्न देखे है, मायारूप स्वप्न है, पीछें मनहू लीन होयहैं, तब चेतना नष्ट होय है तब मृत्युसमान सुषुप्ति दशा होयहैं, तैसें जाकी बुद्धि या विश्वको नानाप्रकार करिकैं जाने है, सो विक्षेप लयको पावे हैं, स्वप्नमें जो होयहै सोई भ्रमरूप यहहै ॥ ३ ॥ जो वस्तु नहीं, भ्रम है तामें यह भलो भयो यह बुरो भयो इतनो भलो इतनो बुरो यह कहा कहनो याको नाम धर्यो सो सब मिथ्या है मन करिकै ध्यान करै है, नेत्रन करिकै जो देखे हैं सो सब मिथ्या

छायाप्रत्याह्वयाभासा ह्यसन्तोऽप्यर्थकारिणः ॥ एवं देहादयो भावा यच्छन्त्यामृत्युतो भयम् ॥ ५ ॥ आत्मैव तदिदं विश्वं सृज्यते सृजति प्रभुः ॥ त्रायते त्राति विश्वात्मा ह्रियते हरतीश्वरः ॥ ६ ॥ निरूपितेयं त्रिविधा निर्मूला भातिरात्मनि ॥ इदं गुणमयं विद्धि त्रिविधं मायया कृतम् ॥ ७ ॥ एतद्विद्वान्मदुदितं ज्ञानविज्ञाननैपुणम् ॥ न निन्दति न च स्तौति लोके चरति सूर्यवत् ॥ ८ ॥ प्रत्यक्षेणानुमानेन निगमेनात्मसंविदा ॥ आद्यन्तवदसद् ज्ञात्वा निःसङ्गो विचरेदिह ॥ ९ ॥

हैं, तहां भलो बुरो कहे तो सब अपनो अज्ञान भ्रम है ॥ ४ ॥ तहां दृष्टांत कहें हैं प्रतिबिंब झांई सीपीमेंरूपेकी बुद्धि ये सब जैसें मिथ्या हे कार्यकों करते, तैसें ये देहादिकभाव मरणताईं भय देइ है ॥ ५ ॥ वेदमें जो सृष्टि कही है सो आपुही ब्रह्म विश्वरूप व्हैकें प्रकट होय है आपुही उत्पत्ति होइ आपुही सृजे है आपुही रक्षा कराइलेइ ईश्वर आपही संहार करै है और जाकौ संहार करता यह भावही है ॥ ६ ॥ आत्मा जो सबसौं पृथक् निरूपण कियो है वासौं कोई पदार्थ पृथक् नहीं यह अध्यात्म अधिदैव और अधिभूत रूप जो प्रतीत होय है यह सब मायारचित हैवेसौ निर्मल है यह अध्यात्मादि तीन प्रकारकौ गुणयुक्त संसार आत्मामें मायाकें द्वारा भासै है ॥ ७ ॥ यह मेरी कही ज्ञान विज्ञानकी चेष्टाकों जानें सो काहूकी न निंदा करे न स्तुति करे, सूर्य्यकी भांति सम होइ लोकमें फिरे ॥ ८ ॥ वह कैसें होइ सो प्रकार कहें हैं, जो वस्तु आदिअंतयुक्त हैं सो मिथ्या है, यह जानि करि प्रत्यक्ष उपजे और नष्ट भये जगतकूं अनुमान वेद और

उद्धव उवाच ॥ नैवात्मनो न देहस्य संसृतिर्द्रष्टृदृ-
श्ययोः ॥ अनात्मस्वदृशोरीश कस्य स्यादुपलभ्यते
॥ १० ॥ आत्माऽव्ययोऽगुणः शुद्धः स्वयंज्योति-
रनावृतः ॥ अग्निवद्दारुवदचिद्देहः कस्येह संसृतिः
॥ ११ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यावद्देहेन्द्रियप्राणैरात्मनः
सन्निकर्षणम् ॥ संसारः फलवांस्तावदपार्थोऽप्यविवे-
किनः ॥ १२ ॥ अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते॥
ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा ॥ १३ ॥

अपनें अनुभव करिकै यों जानें, जो दीखै है सो सब मिथ्या है, यह दृढज्ञान जब होइ तब निःसंग विचरे ॥ ९ ॥ तहां तर्क करि उद्धव पूछे हैं आत्मा स्वयंप्रकाश है ज्ञानरूप है देह तो जड है, तो यह संसार कौनकों लगैहै, हे प्रभो ! आत्माकों है या देहकों संसार है इनहीकों आत्मा द्रष्टा है वह देखेहै देह तो जड है आत्मा जड नहीं पर देखनवारो है ॥ १० ॥ आत्मा अव्यय अगुण शुद्ध स्वयंज्योति आवरणरहित है, और देह तो जड है परि इनको संयोग काष्ठ और अग्निसौ है अग्नि और काष्ठ भिन्न नहीं जानिये तैसे देह आत्मामें एकता है, इन दोऊनमें संसार काहूकों नहीं संभव है तोहूं अग्नि प्रकाशक है काष्ठ प्रकाश है ॥ ११ ॥ यह सत्य है तोऊ संसारकों अविवेक कारण है तहां श्रीकृष्ण कहैं हैं जहांलों देह इन्द्रिय प्राणसों आत्माकों संबंध है तहांताईं मिथ्याहू संसार भासे है, यद्यपि आत्माको और इंद्रियनको संबंध नहीं पर अविवेक करिकै मानि लेइ है ॥ १२ ॥ तहां पूछें हैं देह तो असत्य है ताकों संसार क्यों भासे, तो कहतेहैं यद्यपि विषयभोगकी वस्तु पास नहीं तोउ संसार जाय नहीं है जाते याको ध्यान विषयनकों रहैहै ताते संसार होय है जैसे

यथा ह्यप्रतिबुद्धस्य प्रस्वापो बह्वनर्थभृत ॥ स एव
प्रतिबुद्धस्य न वै मोहाय कल्पते ॥ १४ ॥ शोकहर्ष-
भयक्रोधलोभमोहस्पृहादयः॥ अहंकारस्य दृश्यन्ते
जन्म मृत्युश्च नात्मनः ॥ १५ ॥ देहेन्द्रियप्राणम-
नोभिमानो जीवोऽन्तरात्मा गुणकर्ममूर्तिः ॥ सूत्रं
महानित्युरुधेव गीतः संसार आधावति कालतन्त्रः
॥ १६ ॥ अमूलमेतद्बहुरूपरूपितं मनोवचःप्राणश-
रीरकर्म ॥ ज्ञानासिनोपासनया शितेन च्छित्त्वा मु-
निर्गां विचरत्यतृष्णः ॥ १७ ॥

स्वप्नमें अनर्थको देखैहै ॥ १३॥ अब तर्क करै हैं ध्यानतेजो विषयकी स्फूर्ति है सो तो जीवन्मुक्तहूसे निवारण नहीं होय है तो मोक्ष काहूको होइ नहीं तहां कहे हैं जैसें शोचनहारेनको स्वप्नहूं अनर्थ करै सोइ जो जागत रहै तो वो अनर्थ याको न होइ या जीवन्मुक्तनको विषयकी स्फूर्ति अनर्थ नहीं करसके है ॥ १४ ॥ शोक हर्ष भय क्रोध लोभ मोह काम जन्म और मृत्यु ये सब अहंकारते हैं आत्माकों ये कछु नहीं लगे हैं ॥ १५ ॥ देह इंद्रिय प्राण मनको अभिमान कर यह आत्माही विनके मध्य स्थित जीव है, याहीतें गुण कर्ममय मूर्ति हैंइन गुणकर्म करिकैं बंध्यो है,तातें ईश्वरके आधीन होइ सब संसारमें दौरत फिरै है सूत्र और महत्त्व इत्यादि नानारूप करिकैं अनेक प्रकार यही कह्यो हैं ॥ १६ ॥ या प्रकार अहंकार करिकैं जीव बंध्यो है ज्ञान करिकैं याकी मुक्ति होइ सो कहै है वचन मन प्राणविषें अहं-कार निर्मूल है अज्ञानमें बहुत रूप प्रकाशे है तातें गुरुनकी सेवा करिकै तीक्ष्ण ज्ञानरूप खड्ग लेकै या अहंकार बंधनको काटिकै संग छोडिकै पृथिवीमें फिरै याके कारणको यह उपाय है ॥ १७ ॥

ज्ञानं विवेको निगमस्तपश्च प्रत्यक्षमैतिह्यमथानु-
मानम् ॥ आद्यन्तयोरस्य यदेव केवलं कालश्च हेतु-
श्च तदेव मध्ये ॥१८॥ यथा हिरण्यं स्वकृतं पुरस्ता-
त्पश्चाच्च सर्वस्य हिरण्मयस्य ॥ तदेव मध्ये व्यवहा-
र्यमाणं नानाऽपदेशैरहमस्य तद्वत् ॥१९॥

अब सोई ज्ञान कहे हैं सो विवेकज्ञान ता ज्ञानको साधन करनवारो वेद है, सो वेदके कहे धर्म करै तब विवेक उपजे, तप स्वधर्म अपनो अनुभव उपदेश तर्क इतने साधना करिकें ज्ञान उपजे, ता ज्ञानको फल कहें हैं योग तप है कारण और जगत्के आदि अन्त मध्यमें वही है ॥ १८ ॥ नानाभेदको व्यवहारहू एकब्रह्म मध्यमेंही होय है सो कहे हैं, जैसे सुवर्णके अनेक आभूषण करे तिनकी उत्पत्तिते प्रथम और पीछेहू सुवर्णही है अनेकनाम भये पीछेहू सुवर्णही रहै है सुवर्ण-तें और वस्तु तो वह नहीं तैसे यह विश्व अनेक रूप करिकै दीखै है सोहू मैंही हूं ऐसे जानिये ॥ १९ ॥

---

१ परन्तु नाममात्रके ब्रह्मज्ञानी बननेसे मुक्ति नहीं होती ॥ एक नगरमें सबही ब्रह्मज्ञानी थे हकीमजी सारेमें फिरे परन्तु उनकी किसीने बात न बूझी सब कहैं हम तौ ब्रह्मज्ञानी हैं प्रारब्धसे राजाने हकीमजीको बुलायो राजाकी नाडी देख हकीमजीने कही कि आराम तौ हो जायगो पर दवा मिलनी कठिन है राजा बोले सो क्या हकीमजी बोले एक ब्रह्मज्ञानीको तेल चाहिये राजाने कही यामें कहाहै हमारे नगरमें बहुत ब्रह्मज्ञानी हैं अभी हम आदमीको भेजकै बुलाते हैं और चौकीदारको भेजदियो सो वाने जाके एक मनुष्यसों कही क्योंजी तुम ब्रह्मज्ञानी हो क्या ? वोह बोल्यो हां तौ कही चलो राजा बुलावे हैं इन कही कहा होयगो चौकीदार बोलो एक ब्रह्मज्ञानीको तेल चहिये यह सुन्तेही सुन्न ह्वैगयो और कही भैया मैंने तौ हंसीसे कह दीथी न मैं न मेरे बाप न मेरे दादा ब्रह्मज्ञानी और यह बात सारे नगरमें फैलगई सब नगर ब्रह्मज्ञानते रहित ह्वै गयो तब राजा कही कि अबकैसी होय हकीमजी बोले मैंने तौ इनकी परीक्षा दृढ निष्ठाकी लीथी कि वह नामके ब्रह्मज्ञानी हैं या सत्य आप दवा खाओ आराम होयगो और राजा-का रोग निवृत्त होगया यासे साधनासहित ज्ञान फलदायक है ॥

विज्ञानमेतत् त्रियवस्थमङ्ग गुणत्रयं कारणकार्य-कर्तृ ॥ समन्वयेन व्यतिरेकतश्च येनैव तुर्येण तदेव सत्यम् ॥ २० ॥ न यत्पुरस्तादुत यन्न पश्चान्मध्ये च तन्न व्यपदेशमात्रम्॥ भूतं प्रसिद्धं च परेण यद्यत्तदेव तत्स्यादिति मे मनीषा॥२१॥ अविद्यमानोऽप्यवभासते यो वैकारिको राजससर्ग एषः॥ब्रह्म स्वयं ज्योतिरतो विभाति ब्रह्मेन्द्रियार्थात्मविकारचित्रम्॥२२॥

या प्रकार विश्वको रूप कहिकै या देह इंद्रियनमें जातें प्रकाशक होयहै ताको तद्रूपता कहै हैं, या मनकी तीनि अवस्था कारण हैं, सतोगुण रजोगुण तमोगुण ये गुण हैं जे सब कार्य्य कारण कर्त्ता रूप है अध्यात्म कारण कार्य अधिभूत कर्ता अधिदैव या प्रकार त्रिगुण-रूप जगत् है ऐसोहू जाते होय है और जाके अनुप्रवेशतें प्रकाशे है, सो चतुर्थस्थान ब्रह्म है, इंद्रियादिकके ज्ञान विना जो समाधि आदि विषै है सोई सत्य है ॥ २० ॥ या प्रकार ज्योतिनहूंमें और भांति न होइ सो सत्य है यह कही अब जो और प्रकार होयहै सो असत्य है यह कहै हैं जो वस्तु प्रथम नहीं और पीछेहूं न होइगी मध्यहूमें नहीं केवल नाममात्रही कहनेकों है जाते प्रगटभई और प्रकाशी सो वही है मेरी यह बुद्धि है ॥ २१ ॥ प्रपंचको ब्रह्मसो अभेद कहें हैं यद्यपि प्रथम मैंही हों यह रजोगुणतें उत्पत्ति भयो विकारको समूह ब्रह्मको कार्य है तथापि ब्रह्मके प्रकाश करिके भासैहै, ब्रह्म आपु स्वयं ज्योति है ताते इंद्रिय विषय आत्मा देवता पंचभूत ये सब तत्व ब्रह्मरूप ह्वैकैं भासे हैं यह विचित्रता ब्रह्महीको कार्य है ॥ २२ ॥

एवं स्फुटं ब्रह्मविवेकहेतुभिः परापवादेन विशारदेन॥
छित्त्वात्मसंदेहमुपारमेत स्वानन्दतुष्टोऽखिलकामु-
केभ्यः॥ २३॥ नात्मा वपुः पार्थिवमिन्द्रियाणि देवा
ह्यसुर्वायुजलं हुताशः॥ मनोऽन्नमात्रं धिषणा च
सत्त्वमहंकृतिः खं क्षितिरर्थसाम्यम्॥२४॥ समाहितः
कः करणैर्गुणात्मभिर्गुणो भवेन्मत्सुविविक्तधाम्नः॥
विक्षिप्यमाणैरुत किन्नु दूषणं घनैरुपेतैर्विगतै रवेः
किम्॥२५॥ यथा नभो वाय्वनलाम्बुभूगुणैर्गतागतै-
र्वर्तुगुणैर्न सज्जते॥ तथाऽक्षरं सत्त्वरजस्तमोमलैरहं-
मतेः संसृतिहेतुभिः परम्॥ २६॥

या प्रकार ब्रह्मके विवेकके हेतु करिके और देहादिकमें आत्माबुद्धिके त्याग करिकै गुरुद्वारा अपनो संदेह काटि सब कामनते निवर्त होइ आत्माके आनंद करि संतुष्ट होइ रहै॥२३॥ जे छोडे चहियें तिनको स्वरूप कहैहैं,यह देह आत्मा नहीं यह पृथ्वीको विकार है इंद्रियनके अधिष्ठाता देवता प्राण मन बुद्धि चित्त अहंकार ये सब आत्मा नहीं है जाते अन्नमात्रके आश्रय करिकै रहे है तातें विकारयुक्त हैं और वायु जल अग्नि आकाश पृथ्वी ये पंचभूत शब्द स्पर्श रूप रस गंध प्रकृति येऊ सब आत्मा नहीं क्यों कि जड है॥ २४॥ या प्रकारके विवेक ज्ञानवंत मुक्तकों इंद्रियनको कियो गुण दोष न होइ सो कहे हैं जो विवेकी ज्ञानवंत हैं, जीवन्मुक्त दशाको प्राप्त हैं, तिन्हननें गुण रूप इन इंद्रियनको निग्रह कियो होइकै न कियो होइ तोहू ताकों न तो गुण हैं न दोष है जैसे मेघ आकाशमें आये सूर्य्यको कछु दोष नहीं लगे हैं और मेघ गये कछु गुण नहीं लगैहैं॥ २५॥ जो निःसंग है ब्रह्मरूप होइ रह्यो है ताको काहूसों गुण दोष न लगे तहां दृष्टांत कहे

तथापि सङ्गः परिवर्जनीयो गुणेषु मायारचितेषु तावत् ॥ मद्भक्तियोगेन दृढेन यावद्रजो निरस्येत मनःकषायः ॥२७॥ यथाऽमयोऽसाधु चिकित्सितो नृणां पुनः पुनः संतुदति प्ररोहन् ॥एवं मनोऽपक्वकषायकर्म कुयोगिनं विध्यति सर्वसङ्गम् ॥२८॥ कुयोगिनो ये विहितान्तरायैर्मनुष्यभूतैस्त्रिदशापसृष्टैः ॥ ते प्राक्तनाभ्यासबलेन भूयो युञ्जन्ति योगं नतु कर्मतन्त्रम् ॥ २९ ॥ करोति कर्म क्रियते च जन्तुः केनाप्यसौ चोदित आ निपातात् ॥ न तत्र विद्वान् प्रकृतो स्थितोऽपि निवृत्ततृष्णः स्वसुखानुभूत्या ॥ ३० ॥

हैं, जैसे आकाश भूमिमें आवत जात ऋतुके गुण शीत उष्णादिक और वायु अग्नि जलसों बंध होते नहीं, तैसें अक्षयब्रह्म सत्व रज तम ये गुण अहंकारके हैं संसारकों हेतु कारणसों मिले नहीं है तिनतें न्यारे न्यारे हैं ॥ २६ ॥ तथापि तौलौं मायाके गुणनको संगम करे, जहांलों मेरै दृढभक्ति योग करिकैं यह मनकी विषयनमें आसक्ति न जाइ ॥ २७ ॥ जैसे रोगको भले उपचारनसों दूरि न कियो होइ तो फिरि फिरि वह रोग उपजिकैं दुःख देईहै तैसें रागादिक और कर्म जाके दग्ध नहीं भये तो और सब विषयनमें आसक्त मनहूं योगिको फेरि बाधा करे है ॥२८॥ जो योगतें भ्रष्ट भयो होइ तो फिरि वाको उपाय कहा तहां कहे हैं, जो योगिको देवतान करिकैं प्रेरे बंधुरूप विघ्न करेहैं योगतें भ्रष्ट भयेते फेरि पूर्व अभ्यास बल करिकैं योग करे पर कर्ममार्गके धर्म न करे, केवल धर्मकीही साधना करे ॥ २९ ॥ जो काहू करिकै प्रेरित होइ तो मरणपर्यंत कर्म करिकै सुख दुःख

तिष्ठन्तमासीनमुत व्रजन्तं शयानमुक्षन्तमदन्तमन्नम् ॥ स्वभावमन्यत् किमपीहमानमात्मानमात्मस्थमतिर्न वेद ॥३१॥ यदि स्म पश्यत्यसदिन्द्रियार्थं नानानुमानेन विरुद्धमन्यत् ॥ न मन्यते वस्तुतया मनीषी स्वाप्नं यथोत्थाय तिरोदधानम् ॥ ३२ ॥ पूर्वं गृहीतं गुणकर्मचित्रमज्ञानमात्मन्यविविक्तमङ्ग ॥ निवर्तते तत्पुनरीक्षयैव न गृह्यते नापि विसृज्य आत्मा ॥ ३३ ॥

जाइहै, विकारको पावे जो विवेकी होइ सो देहमें स्थितहू आत्मसुखके अनुभव करिकै तृष्णाते निवर्त्त भयो विकार न पावे ॥ ३० ॥ जाकी मति बुद्धि आत्मामें स्थित है सो ठाढे होते, बैठते, चलते, सोवते, मूत्र करते, अन्न भोजन करते, औरहू स्वभावतें दर्शन आदिक करते देहकों नहीं जानें है ॥ ३१ ॥ जो इंद्रियवंत है सो विना देखें क्यों रहै तहां कहै है जो विवेकयुक्त है सो यद्यपि इन इंद्रियनके विषयनकों देखें हैं, तथापि अनुमान करि विरुद्ध जानि आत्मातें औरकों वस्तु करिकैं नहीं मानें वह स्वप्नकी भांति सब मिथ्या जाने है जैसें जागनेपर स्वप्नके विषय सब आपुही अंतर्द्धान ह्वै जाइहैं ॥ ३२ ॥ आत्मामें मुक्तावस्थादिमेंहू विकार नहीं होयहै कारण कि बद्धावस्थामें गुण और करमनसौं विचित्र अज्ञानके कार्यरूप करो देहेन्द्रियादि अध्याससौं अपने स्वरूपमें मिलेभये मानेगये हैं वेही देहेन्द्रियादिक मुक्तावस्थामें ज्ञानसो निवृत्त है जायहैं आत्माको काऊसो त्याग और ग्रहण कियौ नहीं जानतैहै यदि मुक्ति को क्रियाको फल मानें तौ आत्मामें विकार होय यासों मायिक पदार्थनकी निवृत्तिको होनौही मोक्ष है बंधमोक्ष आत्माको स्पर्श

यथा हि भानोरुदयो नृचक्षुषां तमो निहन्यान्न तु सद्विधत्ते ॥ एवं समीक्षा निपुणा सती मे हन्यात्तमिस्रं पुरुषस्य बुद्धेः ॥ ३४ ॥ एष स्वयंज्योतिरजोऽप्रमेयो महानुभूतिः सकलानुभूतिः ॥ एकोऽद्वितीयो वचसां विरामे येनेषिता वागसवश्चरन्ति ॥ ३५ ॥ एतावानात्मसंमोहो यद्विकल्पस्तु केवले ॥ आत्मन्नृते स्वमात्मानमवलम्बो न यस्य हि ॥ ३६ ॥ यन्नामाकृतिभिर्ग्राह्यं पञ्चवर्णमबाधितम् ॥ व्यर्थेनाप्यर्थवादोऽयं द्वयं पण्डितमानिनाम् ॥ ३७ ॥

नहीं करैहै या कारण आत्मा निर्विकार है ॥ ३३ ॥ परन्तु प्रथमसौंही विद्यमान घटादिक पदार्थनमें कछु विकार नहीं करै है या प्रकार मेरी अध्यात्मविद्या मनुष्यनके मनके अन्धकारको दूर करैहै परन्तु आत्मामें कछु विकार नहीं होयहै आत्मा जा स्थितिमें रहैहै वाहीमें रहैहै ॥ ३४ ॥ यह स्वयं प्रकाश जन्मरहित ज्ञान विज्ञानतेहू जानौ नहीं जायहै महान् प्रतापयुक्त काहू विकार करिकै न घटे न बढे सदा एकरूप रहै, और सबनमें प्रकाशक एक है दूसरेतें रहित है जामें वचनकी गति नहीं श्रुतिहू कहतीहै जब आगे गम्य नहीं तहांतें मन समेत वाणी फिरि आवैहै, जाके प्रेरे वाणी और प्राण कार्य करैहैं ॥ ३५ ॥ केवल भेदरहित आत्मा है तामें भेद देखनो इतनोई भ्रम मनको है अपने आत्मा विना या भेदको आश्रय हैई नहीं ॥ ३६ ॥ जे भेद माने है तिनको मत दूषित है, रूप और नाम करिकै जो वस्तु कही जायहै सो पंचभूत रूप है, देह इंद्रिय, दूसरो पदार्थ, यह मति पंडितमानिनको वाद है तत्वके ज्ञातानके लेखे वस्तु विचारिकै देखो तो सब मिथ्या है ॥ ३७ ॥

योगिनोऽपक्वयोगस्य युञ्जतः काय उत्थितैः ॥ उपसर्गैर्विहन्येत तत्रायं विहितो विधिः ॥ ३८ ॥ योगधारणया कांश्चिदासनैर्धारणान्वितैः ॥ तपोमन्त्रौषधैः कांश्चिदुपसर्गान् विनिर्दहेत् ॥३९॥ कांश्चिन्ममानुध्यानेन नामसंकीर्तनादिभिः॥ योगेश्वरानुवृत्त्या वा हन्यादशुभदाञ्छनैः ॥ ४० ॥ केचिद्देहमिमं धीराः सुकल्पं वयसि स्थिरम् ॥ विधाय विविधोपायैरथ युञ्जन्ति सिद्धये ॥ ४१ ॥ नहि तत्कुशलादृत्यं तदायासो ह्यपार्थकः ॥ अन्तवत्त्वाच्छरीरस्य फलस्येव वनस्पतेः ॥ ४२ ॥

जो अपक्क योगी योग साधे हैं जाको देहतें उठे रोगादिक उपद्रव करिकें योगभ्रष्ट होय हैं ताको मैंने यह आगे लिखी विधि कही है ॥ ३८ ॥ सो कहे हैं योगकी धारणासों चंद्रमा सूर्य्यके तापको जीते आसन करिकैं प्राण वायु धारणा वायु करिकै वातरोग जीते, तप मंत्र औषधि करिकैं पापग्रह सर्पादिकृत अशुभ दूरि करे ॥ ३९ ॥ चित्तको दोष मेरे ध्यान करिके दूरि करे, मेरे नाम कीर्त्तन आदि करिकै काम क्रोधादिकनकों दूरि करे, कितनेऊं योगेश्वरनकी सेवा करिकैं सब दंड अहंकारादिक अशुभनकों शनैः शनैः दूरि करें ॥ ४० ॥ कितनेहू योगीश्वर याही देहकों समर्थ तरुणतामें अनेक उपायनसों स्थिर करिकै परकायाप्रवेशकी सिद्धि निमित्त योग करें हैं ज्ञानकी निष्ठा नहीं करें हैं ॥ ४१ ॥ कुशल ज्ञाता जे हैं ते वाको आदर नहीं करें हैं, देह अनित्य है यातें निश्चय करि योग करिकें याके राखवेको श्रम निरर्थक हैं, जैसें वृक्षके फल मिथ्या हैं ॥४२॥

योगं निषेवतो नित्यं कायश्चेत्कल्पतामियात् ॥
तच्छ्रद्दध्यान्न मतिमान् योगमुत्सृज्य मत्परः॥४३॥
योगचर्यामिमां योगी विचरन् मद्व्यपाश्रयः ॥ ना-
न्तरायैर्विहन्येत निःस्पृहः स्वसुखानुभूः ॥४४॥ इति
श्रीभा० एकादशस्कन्धे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

अथ एकोनत्रिंशोऽध्यायः ।

उद्धव उवाच ॥ सुदुष्करामिमां मन्ये योगचर्या-
मनात्मनः ॥ यथाऽञ्जसा पुमान् सिद्ध्येत्तन्मे ब्रूह्य-
ञ्जसाऽच्युत ॥ १ ॥

योगको नित्य सेवन करते २ प्राणायामादिकके प्रभावसो शरीरमें सामर्थ्य है जाय तौ तौहू मेरे भक्त बुद्धिमान् पुरुषको समाधि त्यागनकै या शरीरकी सिद्धिपर विश्वास करनौ युक्त नहीं हैं ॥ ४३ ॥ योगी मेरो आश्रय करिकै यह योग करे तब विघ्न न होइ, निस्पृह ह्वैकै आत्माकों अनुभव होइ मेरे आश्रयतें विघ्न सब निवृत्त होइहै तब आनंदसों पूर्ण होइ है ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां एकादशस्कन्धेऽष्टा-
विंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

उंतीसके अध्यायमें जो प्रथम विस्तारपूर्वक भक्तियोग कह्योहो सोई भक्तियोग अपने भक्त उद्धवकों संक्षेपतें कहैं है उद्धवजी प्रश्न करै हैं हे श्रीकृष्ण ! यह तुमने योगकी क्रिया कही सो जाको मन वश नहीं ताकों अतिकठिन लगैहैं, याको चित्त वश नहीं यह अज्ञानी है याकों जैसें शीघ्र सिद्धि होइ सुगम होइ सो उपाय मोसों कहो ॥ १ ॥

प्रायशः पुण्डरीकाक्ष युञ्जन्तो योगिनो मनः॥ विषी-
दन्त्यसमाधानान्मनोनिग्रहकर्शिताः ॥ २ ॥ अथात
आनन्ददुघं पदाम्बुजं हंसाः श्रयेरन्नरविन्दलोचन ॥
सुखं नु विश्वेश्वर योगकर्मभिस्त्वन्माययाऽमी विह-
ता न मानिनः॥ ३॥ किं चित्रमच्युत तवैतदशेषबन्धो
दासेष्वनन्यशरणेषु यदात्मसात्त्वम् ॥ योऽरोचय-
त्सह मृगैः स्वयमीश्वराणां श्रीमत्किरीटतटपीडि-
तपादपीठः ॥ ४ ॥ तं त्वाऽखिलात्मदयितेश्वरमाश्रि-
तानां सर्वार्थदं स्वकृतविद्विसृजेत को नु ॥ को वा
भजेत्किमपि विस्मृतयेऽनुभूत्यै किं वा भवेन्न तव
पादरजोजुषां नः ॥ ५ ॥

हे कमलनेत्र ! बहुधा जो योग करें हैं ते मनको निग्रह करतेमें क्लेश बहुत पावें हैं तौभी मन निग्रह नहीं होयहै तब थकित हो विषादयुक्त होय हैं ॥ २ ॥ योगमें अति क्लेश है जे परमहंस हैं वे सार असारकों जानें हैं हे कमललोचन ! जो तुम्हारे चरणारविंदनकों आश्रय करें हैं ये चरणारविंद तिनके आनंदहीकों पूर्ण करेंहैं हे कमललोचन !आप भक्तनकों सुखरूप है, जे तुह्मारी माया करिकें मोहित योगेश्वर योग कर्म करिके अभिमानकों धरेंहैं ते सिद्धि नहीं है ॥ ३ ॥ हे श्रीकृष्ण ! हे सबनके बंधु ! जो अनन्य शरण तुह्मारे दास हैं तिनके तुमही वश हो यह कहा आश्चर्य है जैसे नंद यशोदाके घर खेलत फिरे रामरूप धरिकें बंदरनसों मैत्री करी ब्रह्माआदि देवतानके शोभासंयुक्त मुकुटनके अग्रने तुह्मारे चरणारविंदनको सिंहासन पीडित कियोहै ऐसे तुम हो ॥ ४ ॥ जे तुम भक्तनकी सेवा जानोहो, सबनके आत्मा हो, याहीतें अतिप्रिय हो, ईश्वर हो, ये जे

नैवोपयन्त्यपचितिं कवयस्तवेश ब्रह्मायुषापि कृत-
मृद्धमुदः स्मरन्तः ॥ योऽन्तर्बहिस्तनुभृतामशुभं
विधुन्वन्नाचार्यचैत्यवपुषा स्वगतिं व्यनक्ति ॥ ६ ॥
श्रीशुक उवाच ॥ इत्युद्धवेनात्यनुरक्तचेतसा पृष्टो
जगत्क्रीडनकः स्वशक्तिभिः ॥ गृहीतमूर्तित्रय ईश्वरे-
श्वरो जगाद सप्रेममनोहरस्मितः ॥७॥ श्रीभगवानु-
वाच॥ हन्त ते कथयिष्यामि मम धर्मान्सुमङ्गलान् ॥
यान् श्रद्धया चरन्मर्त्यो मृत्युं जयति दुर्जयम् ॥८॥

तुह्मारे आश्रय हैं तिनको सब अर्थ देउहो, प्रह्लादआदि भक्तनमें किये उपकार जान कौन तुमकों छोडे, तो कहा फलके निमित्त मोको सेवे तहां कहे हैं नहीं, और देवता अथवा और धर्म ज्ञानादि साधन तौ ऐश्वर्यके अर्थ हैं, और मोक्षके अर्थ कौन भजे तौ कहे हैं, साधना विना भोग मोक्षफल कैसे होइ तौ तुह्मारे चरणरेणुको जो सेवेहैं तिनको कहा फल नहीं होइहै जो चाहै सो फल होइ है ॥ ५ ॥ अब कहैं हैं अन्य भजनकी बातही रहन देऊ तुह्मारे किये उपकारको जो तुम्हारे विषे आत्मनिवेदन करे ताही प्रत्युपकार होइ और प्रकारते न होइ सो कहैं हैं आनंदवृद्ध ब्रह्मके ज्ञाता तुम्हारे उपकारको स्मरण करते ब्रह्माकी आयु करिकैं तुम्हारे उपकारते अनृण नहीं होय हैं उपकारको कहे हैं, जो तुम बाहिर गुरुरूप हो भीतर अंतर्यामिरूप प्राणीनकी विषयवासना दूरि करो हो, अपनो आनंदस्वरूप प्रगट करोहो याको प्रत्युपकार कहा करे ॥ ६ ॥ शुकदेवजी बोले जब अनुरक्त चित्त उद्धवने या प्रकार पूछे तब ईश्वरनकेहू ईश्वर-भगवान् प्रेमसहित अतिमनोहर हँसि करिकैं कहत भये जे भगवान् सत्त्व, रज, तम इन तीनि शक्ति करिके तीनि मूर्ति ब्रह्मादि धारण करैं हैं और जगत् जिनको खिलौना है ॥ ७ ॥ अब बडे आनंदसूं

कुर्यात्सर्वाणि कर्माणि मदर्थं शनकैः स्मरन् ॥ मय्यर्पितमनश्चित्तो मद्धर्मात्ममनोरतिः ॥ ९ ॥ देशान्पुण्यान्संश्रयेत मद्भक्तैः साधुभिः श्रितान् ॥ देवासुरमनुष्येषु मद्भक्ताचरितानि च ॥ १० ॥ पृथक्सत्रेण वा मह्यं पर्वयात्रामहोत्सवान् ॥ कारयेद्गीतनृत्याद्यैर्महाराजविभूतिभिः ॥ ११ ॥ मामेव सर्वभूतेषु बहिरन्तरपावृतम् ॥ ईक्षेतात्मनि चात्मानं यथा खममलाशयः ॥ १२ ॥ इति सर्वाणि भूतानि मद्भावेन महाद्युते॥ सभाजयन्मन्यमानो ज्ञानं केवलमाश्रितः॥ १३॥

हर्षि करिकैं कहे हैं हे उद्धव ! मैं सुमंगल अपने धर्म तोसो कहूंगो जिन धर्मनकों श्रद्धा करिकैं करते यह मनुष्य दुर्जय मृत्युको जीते ॥ ८ ॥ ते धर्म कहे हैं, मेरो स्मरण करते शनैः शनैः सब कर्म करे ये सब कर्म मेरे निमित्त करे मेरेई विषैं मन बुद्धि अर्पित करे धर्मनहीमें आत्माकी मनकी प्रीति राखे ॥ ९ ॥ जहां मेरे भक्त साधु रहते होंइ तिन पुण्य देशनमें जाइ रहै देव असुर मनुष्यनमें जे मेरे भक्त हैं तिनको कर्मनको आश्रय करे ॥१०॥ विन भक्तनसों मिलिकैं उत्सव करैं, अथवा न्यारे आपुही सबकी यात्रा उत्सव करै, नृत्य गीत सब करावे महाराजके छत्र चामरादि उपचारसों सब करावे ॥ ११ ॥ निर्मलचित्त पुरुष सब भूतमात्रमें और अपनेमेंहू बाहिर अंतर मोहीकों देखै मैं आकाशकी नाईं असंग हैवेके कारण सबमें स्थित हौकेहू आवरणरहित और बाहर भीतर सदा पूर्ण हूं ॥ १२ ॥ या प्रकार ज्ञानमें स्थित हो सब प्राणीमात्रकों मेरे भाव करिकैं मानिकै पूजे सो पंडित है ॥ १३ ॥

ब्राह्मणे पुल्कसे स्तेने ब्रह्मण्येऽर्के स्फुलिङ्गके ॥ अ-
क्रूरे क्रूरके चैव समदृक् पण्डितो मतः ॥ १४ ॥ नरे-
ष्वभीक्ष्णं मद्भावं पुंसो भावयतोऽचिरात् ॥ स्पर्धासू-
यातिरस्काराः साहंकारा वियन्ति हि ॥ १५ ॥ वि-
सृज्य स्मयमानान्स्वान्दृशं व्रीडां च दैहिकीम् ॥
प्रणमेद्दण्डवद्भूमावाश्वचाण्डालगोखरम् ॥ १६ ॥
यावत्सर्वेषु भूतेषु मद्भावो नोपजायते ॥ तावदेवमु-
पासीत वाङ्मनःकायवृत्तिभिः ॥ १७ ॥ सर्वं ब्रह्मात्म-
कं तस्य विद्ययाऽऽत्ममनीषया ॥ परिपश्यन्नुपरमे-
त्सर्वतो मुक्तसंशयः ॥ १८ ॥

ब्राह्मण नीच जाति चोर ब्रह्मण्य सूर्य्य अग्निके कणिका ये क्रूर होइ अथवा क्रूर न होइ इनमें जो समदृष्टि होइ सो पंडित है ॥ १४॥ मनुष्यनमें मेरे भावकी भावना राखे तो वेगिही पुरुषके ईर्षा निंदा तिरस्कार अहंकार ये सब निश्चय करिकैं नष्ट होयहैं ॥ १५ ॥ तातें अंतर्यामी ईश्वरकी दृष्टिसों सबनकों प्रणाम करे हास्य करत अपनें मित्रनकों छोडिकैं अपनी ऊंच नीच दृष्टि लज्जा छोडिकें भूमिको दंडवत् करे कूकर चांडाल बैल खर ऐसें नीचनहूंकों मेरी बुद्धि करिकें प्रणाम करे ॥ १६ ॥ जहांलों सब भूतमात्रनमें मेरो भाव न उपजेगो तहांताईं वाणी मन देहीकी प्रवृत्तिमें मेरी उपासना करें ॥ १७ ॥ या प्रकार उपासना करते वाकों सब विश्व ब्रह्मरूपही भासेहै, आत्म

१ ऊधो भक्त हमारे प्रान ॥ होत न न्यारो तिनसो कबहूं यह तू निश्चय जान ॥ जिमि छोटे बालकके पाछे माता फिरत लुभान ॥ तैसे तिनकी पल छिन रक्षा राखत सुन मतिमान ॥ ज्ञान वृक्ष ज्ञानिनकी चिन्ता इतनी होत न आन ॥ जैसे बडे भये बालकके मात पिताको ध्यान ॥ तासे भक्ति करो सब कुछ तज यह सिद्धान्त महान ॥ यह ज्वालाप्रसाद सार है भगवद्वचन प्रमाण ॥

अयं हि सर्वकल्पानां समीचीनो मतो मम ॥ मद्भावः
सर्वभूतेषु मनोवाक्कायवृत्तिभिः ॥ १९ ॥ न ह्यङ्गोप-
क्रमे ध्वंसो मद्धर्मस्योद्धवाण्वपि ॥ मया व्यवसितः
सम्यक् निर्गुणत्वादनाशिषः ॥२०॥ यो यो मयि परे
धर्मः कल्प्यते निष्फलाय चेत् ॥ तदायासो निरर्थः
स्याद्भयादेरिव सत्तम ॥ २१ ॥ एषा बुद्धिमतां बुद्धि-
र्मनीषा च मनीषिणाम् ॥ यत्सत्यमनृतेनेह मर्त्यें-
नाप्नोति माऽमृतम् ॥ २२ ॥ एष तेऽभिहितः कृत्स्नो
ब्रह्मवादस्य संग्रहः ॥ समासव्यासविधिना देवाना-
मपि दुर्गमः ॥ २३ ॥

विद्या करिकैं सर्वत्र ब्रह्महीं देखते २ सब संदेह दूरि होयहैं, और सबतें विरक्त होइ ॥ १८ ॥ यह सब पक्षनतें मेरो मत निश्चय करिकैं मेरो उत्तम पक्ष है, जो देह वाणी मन करिकैं सब प्राणीनमें मेरो भाव होइ ॥ १९ ॥ हे उद्धव ! निष्काम मेरे धर्म करते करते भूलचूक है जाय तोहू कछु हानि नहीं कारण कि यह उत्तम धर्म निर्गुणपनके निमित्त मने निश्चय कियौ है ॥ २० ॥ हे साधुनमें श्रेष्ठ! जो जो व्यर्थहू लौकिक परिश्रम करें हैं, सोऊ जो मोकों समर्पै फल वांछा विना मेरे तो हे उद्धव ! विन कर्मनको परिश्रम अर्थ है जाय अर्थात वे अशुभ कर्महू अपने अशुभ फल देवेको समर्थ नहीं होय है निमित्त करे जैसें भय शोकादितें दौरिवो रोइवो क्लेश व्यर्थ हैं सोहू मोको समर्पण कर देवेसो धर्म है जाय हैं ॥ २१ ॥ यही बडे बुद्धिमाननकी बुद्धि चतुरनकी चातुरी है, जो असत्यरूप या मनुष्यदेहसो सत्यरूप मोकों या जन्ममें प्राप्त होइ ॥ २२ ॥ यह ब्रह्मवादकों संपूर्ण संग्रह मैंने तोसों कह्योहै, संक्षेपतें और विस्तारहूसों कह्यो, हे उद्धव। यह देवतानहूंको

अभीक्ष्णशस्ते गदितं ज्ञानं विस्पष्टयुक्तिमत् ॥ एत-
द्विज्ञाय मुच्येत पुरुषो नष्टसंशयः ॥ २४ ॥ सुविविक्तं
तव प्रश्नं मयैतदपि धारयेत् ॥ सनातनं ब्रह्म गुह्यं
परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ २५ ॥ य एतन्मम भक्तेषु सं-
प्रदद्यात्सुपुष्कलम् ॥ तस्याहं ब्रह्मदायस्य ददाम्या-
मानमात्मना ॥ २६ ॥ य एतत्समधीयीत पवित्रं
परमं शुचि ॥ स पूयेताहरहर्मां ज्ञानदीपेन दर्शयन्
॥ २७ ॥ य एतच्छ्रद्धया नित्यमव्यग्रः शृणु यान्नरः ॥
मयि भक्तिं परां कुर्वन् कर्मभिर्न स बध्यते ॥ २८ ॥
अप्युद्धव त्वया ब्रह्म सखे समवधारितम् ॥ अपि ते
विगतो मोहः शोकश्चासौ मनोभवः ॥ २९ ॥

दुर्लभ है ॥ २३ ॥ वारंवार मैंने तोसो प्रकट करिकै युक्तिनसो यह ज्ञान कह्योहै. यह ब्रह्मवाद रीतिको ज्ञान जानि करिकै पुरुष संदेहतें रहित मुक्त होइहै ॥ २४ ॥ जो याको स्मरण राखे कहे सुने पढेहैं तोहू यह फल होइ सो कहे है, हे उद्धव ! मैंनें यह तुह्मारे प्रश्नको उत्तर दियो है याको जो कोऊ चित्तमें धरे सो नित्य वेदहूमें गोप्य परब्रह्मको प्राप्तहोइ ॥ २५ ॥ जो कोऊ मेरे भक्तसों विस्तारसों यह कहै ताको मैं अपनी आत्माकों देऊं जाते वहभक्तनको दाता है ॥ २६ ॥ जो कोऊ परम पवित्र मेरे कहे शास्त्रको पढै साधककों या ज्ञान दीपक करिकैं मोकों दिखावै सो दिन दिन शुद्ध होइ ॥ २७ ॥ जो मनुष्य याकोंश्रद्धा पूर्वक नित्य सावधान व्हैकै सुने मो विषे परमभक्ति करै सो कर्मनसों बद्ध न होइ ॥ २८ ॥ हे उद्धव! हे मित्र ! तैंने यह ज्ञान नीकें मनमें धरयो है तेरे मनको मोह शोक गयो कहा ॥ २९ ॥

नैतत्त्वया दाम्भिकाय नास्तिकाय शठाय च ॥
अशुश्रूषोरभक्ताय दुर्विनीताय दीयताम् ॥ ३० ॥
एतैर्दोषैर्विहीनाय ब्रह्मण्याय प्रियाय च ॥ साधवे
शुचये ब्रूयाद्भक्तिः स्याच्छूद्रयोषिताम् ॥ ३१ ॥ नै-
तद्विज्ञाय जिज्ञासोर्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥ पीत्वा पी-
यूषममृतं पातव्यं नावशिष्यते ॥ ३२ ॥ ज्ञाने कर्म-
णि योगे च वार्तायां दण्डधारणे ॥ यावानर्थो नृणां
तात तावांस्तेऽहं चतुर्विधः ॥ ३३ ॥ मर्त्यो यदा त्यक्त-
समस्तकर्मा निवेदितात्मा विचिकीर्षितो मे ॥ तदा-
ऽमृतत्वं प्रतिपद्यमानो मयात्मभूयाय च कल्पते वै ३४

यह ज्ञान जो दंभी होइ नास्तिक होइ धूर्त्त होइ जाकें सुनवेकी इच्छा न होइ मेरो भक्त न होइ ताकों मति सुनैयो ॥ ३० ॥ सुन उद्धव जो इन दोषन करिकै रहित होइ ब्रह्मण्य होइ अति प्रिय साधु होइ शुचि होइ तासों कहियें जो भक्ति होइ तो स्त्री शूद्रनसोंहू कहै ॥ ३१ ॥ जाननहारेकों याकें जाने पीछें फिरि कछु जाननो अवशिष्ट नहीं जैसे सुस्वाद अमृत पिये पीछें और पीवेकों योग्य नहीं रहै ॥ ३२ ॥ भक्तनकों और साधना कछु नहीं चाहियें भक्तकों सब मेंही हों, ज्ञान करिकैं मोक्ष होयहै, विहित कर्म करे धर्म होइ, योग करे अणिमादि सिद्धि होइ सहजके कर्म करे काम होइ, खेती करे अर्थ होइ, दंड नीति करे ऐश्वर्य होइ और इन साधनान करिकैं चारचो पुरुषार्थ होयहै, हे उद्धव ! सब पुरुषार्थरूप तुमकों मैं हो, तातें तुमकों और कुछ करनो नहीं एक मेरी शरण रहो ॥ ३३ ॥ जब यह मनुष्य सब कर्मनकों छोडिकैं मोकों आत्मा निवेदन करे, तब मोको श्रेष्ठ करिवेकों योग्य भयो, ताते वह मोक्षकों पावे निश्चय करिके मेरे समान

श्रीशुक उवाच ॥ स एवमादर्शितयोगमार्गस्तदोत्तमश्लोकवचो निशम्य ॥ बद्धाञ्जलिः प्रीत्युपरुद्धकण्ठो न किंचिदूचेऽश्रुपरिप्लुताक्षः ॥ ३५ ॥ विष्टभ्य चित्तं प्रणयावघूर्णं धैर्येण राजन्बहु मन्यमानः ॥ कृताञ्जलिः प्राह यदुप्रवीरं शीर्ष्णा स्पृशंस्तच्चरणारविन्दम् ॥ ३६ ॥ उद्धव उवाच ॥ विद्रावितो मोहमहान्धकारो य आश्रितो मे तव सन्निधानात् ॥ विभावसोः किं नु समीपगस्य शीतं तमो भीः प्रभवन्त्यजाद्य ॥ ३७ ॥ प्रत्यर्पितो मे भवताऽनुकम्पिना भृत्याय विज्ञानमयः प्रदीपः ॥ हित्वा कृतज्ञस्तव पादमूलं कोऽन्यत्समीयाच्छरणं त्वदीयम् ॥ ३८ ॥

ऐश्वर्य्यको योग्य होई ॥ ३४ ॥ या प्रकार भगवान्‌ने सफल योगमार्गकों स्वरूप दिखायो, तब उत्तमयश श्रीकृष्णको यह वचन सुनिके अंजलि जोरि प्रीति करिकें कंठ गद्गद होइ नेत्रनते अश्रुपात परते कछु बोलत न भये ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! अरे प्यारे परीक्षित ! अतिस्नेह करिकैं विह्वल चित्तकों धीर्जकरि थामिकैं आपकों कृतार्थकरि मानतभये, तब हाथ जोरि माथेकारि प्रभुके चरणारविंदकों स्पर्श करिकैं उद्धव श्रीकृष्णसों बोलत भये ॥ ३६ ॥ हे ब्रह्मादिकके उत्पन्न करनवारे ! जो मैंने मोहरूप महा अंधकार आश्रय कियोहो सो तुह्मारे समीपते गयो, सूर्यके समीप अंधकार शीत भये कहा है सकेहै ॥ ३७ ॥ तुमने अति दयाकरिकै मोको अपने सेवककों विज्ञानदीपक दियो कौन तुह्मारो उपकारको ज्ञाता हैं अब तुह्मारे चरणारविंदमूलकों छोडिकैं औरके शरण कौन जाइ ॥ ३८ ॥

वृक्णश्च मे सुदृढः स्नेहपाशो दाशार्हवृष्ण्यन्धकसा-
त्वतेषु ॥ प्रसारितः सृष्टिविवृद्धये त्वया स्वमायया
ह्यात्मसुबोधहेतिना ॥ ३९॥ नमोऽस्तु ते महायोगिन्
प्रपन्नमनुशाधि माम् ॥ यथा त्वच्चरणाम्भोजे रतिः
स्यादनपायिनी ॥४०॥ श्रीभगवानुवाच॥ गच्छोद्धव
मयादिष्टो बदर्याख्यं ममाश्रमम् ॥ तत्र मत्पादती-
र्थोदे स्नानोपस्पर्शनैः शुचिः ॥ ४१ ॥ ईक्षयाऽलकन-
न्दाया विधूताशेषकल्मषः ॥ वसानो वल्कलान्यङ्ग
वन्यभुक् सुखनिस्पृहः ॥ ४२ ॥ तितिक्षुर्द्वन्द्वमात्राणां
सुशीलः संयतेन्द्रियः ॥ शान्तः समाहितधिया ज्ञान-
विज्ञानसंयुतः ॥ ४३ ॥

उद्धवजी कहैं हैं हे प्रभो! जो सृष्टिकी बुद्धि निमित्त तुमने अपनी मायासो मेरो स्नेहरूप पाश दाशार्ह वृष्णि अंधक सात्त्वतनमें बढायो हो सो आत्मज्ञान शस्त्र करिकैं तुमहीनें काटिकैं दूरि कियो ॥ ३९ ॥ हे महायोगिन्! तुमकों प्रणाम है, मैं शरण हो,मोको इतनी शिक्षा देउ, जाते तुह्मारे चरणारविंद विषे दृढ प्रीति होइ ॥ ४० ॥ यह बात उद्धवजीकी अंगीकार करिकैं लोकसंग्रह निमित्त श्रीकृष्णने यह आज्ञा दीनी हे उद्धव! तुम बद्रिकाश्रमको जाउ मेरी आज्ञा है मेरे चरणतीर्थ गंगाके जलसों स्नान आचमन करिकैं शुद्ध होउगे ॥ ४१ ॥ हे उद्धव! अलकनंदाके दरशन करिकै सकल पाप दूरि करकै वल्कल वस्त्र पहिरि वनके फल खाते सुखमें निष्ठ होउ ॥ ४२ ॥ तहां सब इंद्रियनको निग्रह करि शीत उष्ण सहि सुशील शांत होइ ज्ञान विज्ञानकर संयुक्त समाधिमें बुद्धि स्थिर करो ॥ ४३ ॥

मत्तोऽनुशिक्षितं यत्ते विविक्तमनुभावयन् ॥ मय्यावे-
शितवाक्चितो मद्धर्मनिरतो भव ॥ अतिव्रज्य गती-
स्तिस्रो मामेष्यसि ततः परम् ॥ ४४ ॥ श्रीशुक
उवाच ॥ स एवमुक्तो हरिमेधसोद्धवः प्रदक्षिणं तं
परिसृत्य पादयोः ॥ शिरो निधायाश्रुकलाभिरार्द्र-
धीर्न्यषिञ्चदद्वन्द्वपरोऽप्यपक्रमे ॥ ४५ ॥ सुदुस्त्यज-
स्नेहवियोगकातरो न शक्नुवंस्तं परिहातुमातुरः ॥
कृच्छ्रं ययौ मूर्धनि भर्तृपादुके बिभ्रन्नमस्कृत्य ययौ
पुनः पुनः ॥ ४६ ॥ ततस्तमन्तर्हृदि संनिवेश्य गतो
महाभागवतो विशालाम् ॥ यथोपदिष्टां जगदेकब-
न्धुना तपः समास्थाय हरेरगाद् गतिम् ॥ ४७ ॥

मोतें जो जो रहस्य सीख्यो है और अच्छी तरह विचार्यो है, ताकी भावना करते मेरे आवेश युक्तवचन चित्तकरिकैं मेरे धर्ममें तत्पर होहु इन तीनगुणनकी गतिनको अतिक्रम करिकै आगे मोको प्राप्त होउगे ॥ ४४ ॥ शुकदेवजी बोले संसारके हरवेवारे श्रीकृष्णके या प्रकार कहेते उद्धवजी प्रदक्षिणा करि माथो पांउनपर धरिकै अश्रुपातके जलसो भगवान्के चरणको अभिषेक करतभये, यद्यपि सुख दुःख रहित भयेहै तथापि चलिवेके स्नेह करि कोमल बुद्धि होतभये ॥ ४५ ॥ अत्यंत दुस्त्यज स्नेहके वियोग करिकैं अति अधीर होइ श्रीकृष्ण अपने प्रभुकों छोडवेकों समर्थ न भये आर्त होइ अति कष्ट पायो फिरि अपनें भर्त्ताके पादुका माथे धरि प्रणाम करिकैं चलतभये, या प्रकार वारंवार प्रणाम करि चले ॥ ४६ ॥ तापीछें अंतःकरणमें श्रीकृष्णकों धरिकैं परमभागवत उद्धव बद्रिकाश्रमकूं जातभये, जगत्के एक बंधु श्रीकृष्णकरिकैं या भांति उपदेशको

य एतदानन्दसमुद्रसंभृतं ज्ञानामृतं भागवताय भाषितम् ॥ कृष्णेन योगेश्वरसेविताङ्घ्रिणा सच्छ्रद्धयाऽऽसेव्य जगद्विमुच्यते ॥ ४८ ॥ भवभयमपहन्तुं ज्ञानविज्ञानसारं निगमकृदुपजह्रे भृङ्गवद्वेदसारम् ॥ अमृतमुदधितश्चापाययद्भृत्यवर्गान् पुरुषमृषभमाद्यं कृष्णसंज्ञं नतोऽस्मि ॥४९॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

अथ त्रिंशोऽध्यायः।

राजोवाच ॥ ततो महाभागवत उद्धवे निर्गते वनम् ॥ द्वारवत्यां किमकरोद्भगवान्भूतभावनः ॥ १ ॥

पाय ताही भांति तपस्याकों साधि करि हरिकी गतिकों पावत भये ॥४७॥ योगेश्वर जिनके चरणनको सेवे, तिन श्रीकृष्णने यह ज्ञानरूप अमृत आनंदसमुद्र परम भागवत उद्धवजीसो कह्यो जो मनुष्य याको श्रद्धापूर्वक सेवन करैं सो संसारते मुक्त होयहैं ॥ ४८ ॥ अब जगद्गुरु भगवान्कों प्रणाम करेहैं, जिन वेदकर्त्ता भगवान्नें संसारको भय दूरि करवेकों एक ज्ञानरूप वेदसार अमृत भ्रमरकी भांति उद्धरयो "एक अमृत तो समुद्रतें काढ्योहो सो तौ देवतानकोही प्यायो हो" यह वाणीरूपी अमृत अपनें सेवक भक्तनको प्यायो, ऐसे श्रीकृष्णकों प्रणाम करूंहूं ॥ ४९ ॥

इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां एकादशस्कन्धे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

तीसके अध्यायमें श्रीकृष्ण अपनें लोक पधारो चाहें हैं सो पहलें कह्यो है, मुशलयुद्धके मिषकरिकें अपनें कुलकों संहार करतभये

ब्रह्मशापोपसंसृष्टे स्वकुले यादवर्षभः ॥ प्रेयसीं सर्व-
नेत्राणां तनुं स कथमत्यजत् ॥ २ ॥ प्रत्याक्रष्टुं नय-
नमबला यत्र लग्नं न शेकुः कर्णाविष्टं न सरति ततो
यत्सतामात्मलग्नम् ॥ यच्छ्रीर्वाचां जनयति रतिं किं
नु मानं कवीनां दृष्ट्वा जिष्णोर्युधि रथगतं यच्च तत्सा-
म्यमीयुः ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ दिवि भुव्यन्तरिक्षे
च महोत्पातान् समुत्थितान् ॥ दृष्ट्वासीनान् सुधर्मा-
यां कृष्णः प्राह यदूनिदम् ॥ ४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥
एते घोरा महोत्पाता द्वार्वत्यां यमकेतवः ॥ मुहूर्त्तम-
पि न स्थेयमत्र नो यदुपुङ्गवाः ॥ ५ ॥

यह कथा कहेंगे ॥ राजा पूछेहैं परमभागवत उद्धवके वन गये पीछें विश्वके रक्षक भगवान् द्वारकामें कहा करत भये ॥ १ ॥ अपने कुलको ब्रह्मशापसौं व्याप्त देख सब नेत्रनके परम प्रिय शरीरको यादवनमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण कैसें छोडतभये॥२॥ जा रूपमें लगे नेत्रनकों स्त्री छुडायवेको समर्थ न भई जो स्वरूप कर्णद्वाराहृदयमें प्रविष्ट भयो, साधुनके मनविषें लिख्योसो रहेहै, जा रूपकी शोभा वर्णन करेतें पंडितनकी वाणीकी प्रीति उपजैहै, अर्जुनके रथ ऊपर स्थित जा स्वरूपको देखिकै भारतमें मेरे युद्धविषें जो योद्धा है ते सारूप्य मुक्तिको पावतभये ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजी कहेहैं श्रीकृष्ण स्वर्गविषें सूर्यके मंडल आदि, भूमिमें कंपादि, अंतरिक्षमें दिशानके दाहादिक, उठे बडे उत्पातनको देखिकै सुधर्मा सभा विषें बैठे यादवनसों यह कहत भये ॥ ४ ॥ श्रीकृष्ण कहेंहैं हे यादवनमें श्रेष्ठ ! ये घोर बडे मृत्युको बतामनहारे उत्पात उठ रहे हैं अब या द्वारका विषें दो घडीहू हमको रहिवेकों योग्य नहीं ॥ ५ ॥

स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च शङ्खोद्धारं व्रजन्त्वितः ॥ वयं प्रभासं यास्यामो यत्र प्रत्यक् सरस्वती ॥ ६ ॥ तत्राभिषिच्य शुचय उपोष्य सुसमाहिताः ॥ देवताः पूजयिष्यामः स्नापनालेपनार्हणैः ॥ ७ ॥ ब्राह्मणांस्तु महाभागान्कृतस्वस्त्ययना वयम् ॥ गोभूहिरण्यवासोभिर्गजाश्वरथवेश्मभिः ॥ ८ ॥ विधिरेष ह्यरिष्टघ्नो मङ्गलायनमुत्तमम् ॥ देवद्विजगवां पूजा भूतेषु परमो भवः ॥ ९ ॥ इति सर्वे समाकर्ण्य यदुवृद्धा मधुद्विषः ॥ तथेति नौभिरुत्तीर्य प्रभासं प्रययू रथैः ॥ १० ॥ तस्मिन्भगवतादिष्टं यदुदेवेन यादवाः ॥ चक्रुः परमया भक्त्या सर्वश्रेयोपबृंहितम् ॥ ११ ॥

यातें स्त्री और बालक और वृद्ध शंखोद्धारकों जाहु हम तो प्रभासक्षेत्रकों जांइगे जहां पश्चिम वाहिनी सरस्वती है ॥ ६ ॥ तहां स्नान करिकैं पवित्र हो उपवास करि भली भांति सावधानतासौं स्नान कराइ चंदन और पूजाकी सामग्री करिकैं देवतानकों पूजेंगे ॥ ७ ॥ बडे भाग्यवंत ब्राह्मणनकों गौ भूमि सुवर्ण वस्त्रन करिकै और हाथी घोडा रथनसौं पूजेंगे ॥ ८ ॥ निश्चय करिकैं यह विधि अरिष्टकी नाशक है, और उत्तम मंगलकी आश्रय है प्राणीनविषें देवता ब्राह्मण गौकी पूजा कल्याणको हेतु है ॥ ९ ॥ यादवन विषें सब वृद्ध यह श्रीकृष्णको वचन सुनिकै तैसेंही है यों स्तुति करिकैं नावन करिकैं समुद्रको उतरिकै रथन करिकैं प्रभास क्षेत्रकों जात भये ॥ १० ॥ यादवनके देव भगवान्के उपदेशको सब यादव मंगलन सहित परमभक्ति करिकैं प्रभासक्षेत्रविषे करतभये ॥ ११ ॥

ततस्तस्मिन्महापानं पपुर्मैरेयकं मधु ॥ दिष्टविभ्रं-
शितधियो यद्द्रवैर्भ्रश्यते मतिः ॥ १२ ॥ महापानाभि-
मत्तानां वीराणां दृप्तचेतसाम् ॥ कृष्णमायाविमूढानां
संघर्षः सुमहानभूत् ॥ १३ ॥ युयुधुः क्रोधसंरब्धा
वेलायामाततायिनः ॥ धनुर्भिरसिभिर्भल्लैर्गदाभि-
स्तोमरर्ष्टिभिः ॥ १४ ॥ पतत्पताकै रथकुञ्जरादिभिः
खरोष्ट्रगोभिर्महिषैर्नरैरपि ॥ मिथः समेत्याश्वतरैः
सुदुर्मदा न्यहन् शरैर्दद्भिरिव द्विपा वने ॥ १५ ॥ प्रद्युम्न-
साम्बौ युधि रूढमत्सरावक्रूरभोजावनिरुद्धसात्य-
की ॥ सुभद्रसंग्रामजितौ सुदारुणौ गदौ सुमित्रासु-
रथौ समीयतुः ॥ १६ ॥

ता पीछें प्रभासक्षेत्रके विषे दैव करि हतबुद्धि यादव अति सुरस मदिरा महापान पीवत भये, जा मदिराके रस करिकैं बुद्धि भ्रष्ट होय है ॥ १२ ॥ श्रीकृष्णकी माया करिकै मोहित मद्यपान करिकै अति-गर्वयुक्त चित्त यादवनको अतिवडो कोलाहल होत भयो ॥ १३ ॥ ता पीछे क्रोध करिकै संयुक्त वधको उद्यत यादव समुद्रतट विषें धनुष खड्ग गदा तोमर रिष्टीन करि युद्ध करत भये ॥ १४ ॥ दुर्मद यादव चलायमान ध्वजावारे रथ हाथी खच्चर ऊंट बैल गधा भैंसानहूं करि परस्पर मिलिकै बाणनकरि मारत भये जैसें वनमें हाथी दंतन-करि हाथीनको आपुसमें मारे हैं ॥ १५ ॥ असहनताको प्राप्त हो प्रद्युम्न और सांब अक्रूर और भोज अनिरुद्ध और सात्यकि सुभद्र और संग्रामजित् अति दारुण हैकै गद श्रीकृष्णको भैया एक श्री-कृष्णको पुत्र सुमित्र और सुरथ यह अति क्रूर स्वभाववारे मत्सरसों व्याप्त हैकै परस्पर घोर युद्ध करन लगे ॥ १६ ॥

अन्ये च ये वै निशठोल्मुकादयः सहस्रजिच्छताजि-
द्भानुमुख्याः ॥ अन्योऽन्यमासाद्य मदान्धकारिता
जघ्नुर्मुकुन्देन विमोहिता भृशम् ॥ १७॥ दाशार्हवृष्णय-
न्धकभोजसात्वता मध्वर्बुदा माथुरशूरसेनाः ॥ विस-
र्जनाः कुकुराः कुन्तयश्च मिथस्ततस्तेऽथ विसृज्य
सौहृदम् ॥ १८ ॥ पुत्रा अयुध्यन्पितृभिर्भ्रातृभिश्च
स्वस्रीयदौहित्रपितृव्यमातुलैः ॥ मित्राणि मित्रैः सुहृ-
दः सुहृद्भिर्ज्ञातींस्त्वहञ्ज्ञातय एव मूढाः ॥१९॥ शरेषु
क्षीयमाणेषु भज्यमानेषु धन्वसु ॥ शस्त्रेषु क्षीयमाणे-
षु मुष्टिभिर्जह्रुरेरकाः ॥ २० ॥ ता वज्रकल्पा ह्यभ-
वन्परिघा मुष्टिना भृताः ॥ जघ्नुर्द्विषस्तैः कृष्णेन वार्य-
माणास्तु तं च ते ॥ २१ ॥

याही प्रकार औरहू निशठ उल्मुक सहस्रजित् शतजित् भानु आदि
यादव जो भगवान्की इच्छासों मोहित है गये हे वे वारुणीके पानसों
मत्त और अंधप्राय हो परस्पर युद्ध करते लडने लगे ॥१७॥ दाशार्ह
वृष्णि अंधक भोज सात्वत मधुके वंशके और अर्बुद मथुरा शूरसेन
देशके विसर्ज्जन कुक्कुर कुंति देशके स्नेहको तोरि परस्पर मारत भये
॥ १८ ॥ पुत्र पितानसों और भैयानसों भानजेनसो धेवतेनसो काक-
नसों मित्रनसों सुहृदनसों युद्ध करत भये मूरख ज्ञातीही ज्ञातिनको
मारत भये ॥ १९॥ बाणनके हीन भये पीछें धनुषके टूटेतें शस्त्रनके
छीन भयेते हाथनसों पटेरानको ग्रहण करत भये॥ २० ॥ वे पटेरे
यादवनके हाथमें लेतेही वज्रके समान दुधारा खांडे होत भये, तिन
करिके यादव वैरिनकों मारत भये जब श्रीकृष्णनें तिन्हे वरजो॥२१॥

प्रत्यनीकं मन्यमाना बलभद्रं च मोहिताः ॥ हन्तुं कृतधियो राजन्नापन्ना आततायिनः ॥ २२ ॥ अथ तावपि संक्रुद्धावुद्यम्य कुरुनन्दन ॥ एरकामुष्टिपरिघौ चरन्तौ जघ्नतुर्युधि ॥ २३ ॥ ब्रह्मशापोपसृष्टानां कृष्णमायावृतात्मनाम् ॥ स्पर्द्धाक्रोधः क्षयं निन्ये वैणवोऽग्निर्यथा वने ॥ २४ ॥ एवं नष्टेषु सर्वेषु कुलेषु स्वेषु केशवः ॥ अवतारितो भुवो भार इति मेनेऽवशेषितः ॥ २५ ॥ रामः समुद्रवेलायां योगमास्थाय पौरुषम् ॥ तत्याज लोकं मानुष्यं संयोज्यात्मानमात्मनि ॥२६॥ रामनिर्याणमालोक्य भगवान् देवकीसुतः ॥ निषसाद धरोपस्थे तूष्णीमासाद्य पिप्पलम् २७

हे परीक्षित ! तब श्रीकृष्णकों और बलदेवजीकों वैरी मानि मारिवेकी बुद्धिकर यादव मोहित हैके शस्त्र ले सन्मुख आवत भये ॥ २२ ॥ हे कुरुनंदन ! ता पीछें ते दोऊ भैया क्रोधयुक्त खड्गरूप पटेरेनको हाथमें लेकर युद्धमें विचरते मारते भये ॥ २३ ॥ ब्रह्मशापसों व्याप्त श्रीकृष्णकी मायासो मोहित आत्मा यादवनको स्पर्द्धातें उपज्यो क्रोध, क्षय करतभयो जैसे वांसकी आगि वनको क्षय करे ॥ २४ ॥ या प्रकार अपने सब कुलके नाश भये पीछे एक श्रीकृष्णही बाकी रहिगये, तब भूमिको भार उतार्‌यो मानतभये ॥ २५ ॥ बलदेवजू समुद्रतट विषे परमपुरुषके ध्यानरूप योग करि आपुको आप विषे युक्तकरि मनुष्यलोकको छोडतभये ॥ २६ ॥ श्रीदेवकीजीके पुत्र भगवान् बलदेवजीको चलिवो देखिके पीपरको आश्रय लेकारिके मौन भये भूमितलमें बैठतभये ॥ २७ ॥

बिभ्रच्चतुर्भुजं रूपं भ्राजिष्णु प्रभया स्वया ॥ दिशो वितिमिराः कुर्वन्विधूम इव पावकः ॥ २८ ॥ श्रीवत्साङ्कं घनश्यामं तप्तहाटकवर्चसम् ॥ कौशेयाम्बरयुग्मेन परिवीतं सुमङ्गलम् ॥ २९ ॥ सुन्दरस्मितवक्त्राब्जं नीलकुन्तलमण्डितम् ॥ पुण्डरीकाभिरामाक्षं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ ३० ॥ कटिसूत्रब्रह्मसूत्रकिरीटकटकाङ्गदैः ॥ हारनूपुरमुद्राभिः कौस्तुभेन विराजितम् ॥ ३१ ॥ वनमालापरीताङ्गं मूर्तिमद्भिर्निजायुधैः ॥ कृत्वोरौ दक्षिणे पादमासीनं पङ्कजारुणम् ॥ ३२ ॥ मुशलावशेषायःखण्डकृतेषुर्लुब्धको जरा ॥ मृगास्याकारं तच्चरणं विव्याध मृगशङ्कया ॥ ३३ ॥

शोभायुक्त चतुर्भुजरूपको धरे अपनी कांति करिकै दिशानको अंधकार दूरि करते निर्धूम अग्निसे दीखतेभये ॥ २८ ॥ अब चतुर्भुज रूपको वर्णन करे है, श्रीवत्सको चिह्न मेघसों श्याम, सुवर्णकीसी कांतिवारे पीताम्बर पहिरे परममंगल ॥ २९ ॥ सुंदर हास्ययुक्त मुख कमल, नील केश करिकै शोभित कमलसे सुंदर नेत्र देदीप्यमान मकराकृतकुंडल ॥ ३० ॥ कटिसूत्र जनेऊ मुकुट कंकण विराजमान हार नूपुर मुद्रिका कौस्तुभसों शोभित ॥ ३१ ॥ वनमालासों व्याप्त अंग, मूर्तिवंत अपने आयुधन करिकै युक्त लाल कमलकीसी शोभावारो वामचरण दाहिनी जांघपर धरिकै बैठे ॥ ३२ ॥ मूसलके अवशेष लोहेके खंडसों जिनसों बाण बनायो हो वोह जरानाम वधिक मृगके आकार वा चरणकों मृगकी शंका करि वधते भयो ॥ ३३ ॥

१ यह व्याधा कुछ बहुत समयका नहीं था यह उसी समय स्वर्गसे भागव-

चतुर्भुजं तं पुरुषं दृष्ट्वा स कृतकिल्बिषः॥ भीतः पपात
शिरसा पादयोरसुरद्विषः ॥ ३४ ॥ अजानता कृतमि-
दं पापेन मधुसूदन ॥ क्षन्तुमर्हसि पापस्य उत्तमश्लो-
क मेऽनघ ॥३५॥ यस्यानुस्मरणं नृणामज्ञानध्वान्त-
नाशनम् ॥ वदन्ति तस्य ते विष्णो मयाऽसाधु कृतं
प्रभो ॥ ३६ ॥ मामाशु जहि वैकुण्ठ पाप्मानं मृग-
लुब्धकम् ॥ यथा पुनरहं त्वेनं न कुर्यां सदतिक्रमम्
॥३७॥ यस्याऽऽत्मयोगरचितं न विदुर्विरञ्चो रुद्रा-
दयोऽस्य तनयाः पतयो गिरां ये ॥ त्वन्मायया
पिहितदृष्टय एतदञ्जः किं तस्य ते वयमसद्गतयो
गृणीमः ॥ ३८॥

फिर भगवान्‌के समीप आय चतुर्भुज ता पुरुषकों देखिकरि भय-
भीत भयो, अपराधी वधिक माथे करि दैत्यनके शत्रु श्रीकृष्णके
चरणनविषें परतभयो ॥ ३४ ॥ हे मधुसूदन ! पापी मैंने ये अपराध
अज्ञानतें कियो है, हे उत्तमयश निष्पाप ! पापी मोपे क्षमा करो
॥३५॥ हे प्रभो ! जाको स्मरण मनुष्यको अज्ञानतमको नाश करैहैं,
ता तुम विष्णुकों मैं अपराधी भयो ॥ ३६ ॥ हे वैकुंठनाथ ! तातें
मृगलोभी मो पापीकों शीघ्र मारो जैसें फेरि साधुनको ऐसो अपराध
न करों ॥ ३७ ॥ जा तुह्मारी स्वाधीन माया करि रचनाकों ब्रह्मा
और या ब्रह्माके रुद्रादिक पुत्र और वेदके द्रष्टाहू नहीं जानते हें विन-
के ब्राह्मणनके शापकौ लगनौ हम मायासौं अंधे भये पापी पुरुपनसौं

न्की इच्छानुसार अंगद व्याधेके रूपमें आया और मोहित हो बाण मार पिताके
ऋणसे मुक्त हुआ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ मा भैर्जरे त्वमुत्तिष्ठ काम एष कृतो हि मे ॥ याहि त्वं मदनुज्ञातः स्वर्गं सुकृतिनां पदम् ॥ ३९ ॥ इत्यादिष्टो भगवता कृष्णेनेच्छाशरीरिणा ॥ त्रिः परिक्रम्य तं नत्वा विमानेन दिवं ययौ ॥४०॥ दारुकः कृष्णपदवीमन्विच्छन्नधिगम्य ताम्॥ वायुं तुलसिकामोदमाघ्रायाभिमुखं ययौ ॥ ४१ ॥ तं तत्र तिग्मद्युभिरायुधैर्वृतं ह्यश्वत्थमूले कृतकेतनं पतिम् ॥स्नेहप्लुतात्मा निपपात पादयो रथादवप्लुत्य स बाष्पलोचनः ॥ ४२॥ अपश्यतस्त्वच्चरणाम्बुजं प्रभो दृष्टिः प्रनष्टा तमसि प्रविष्टा ॥ दिशो न जाने न लभे च शान्तिं यथा निशायामुडुपे प्रनष्टे ॥ ४३ ॥

कैसे कह्यो जाय सकै है यासों यह बात चाहैं कछु होउ आप मोकूं मार डारो ॥ ३८ ॥ तब श्रीभगवान् कहैहैं हे जरा ! तू भय मति करे तू उठि ठाढोहो, यह तो मेरी कामनाही कीनीहैं, तू मेरी आज्ञातें पुण्यवानके स्थान स्वर्गको जाउ ॥ ३९ ॥ इच्छा करिकैं शरीरी भगवान् कृष्णते आज्ञा पाय वधिक श्रीकृष्णकी तीनि परिक्रमा दे नमस्कार करिकैं विमानमें बैठ स्वर्गको जातभयो ॥ ४० ॥ दारुक श्रीकृष्णके मार्गको विना पाये तुलसी चंदनकी गंध मिली वायुको सूंघते श्रीकृष्णके सन्मुख जातभयो ॥ ४१ ॥ता पीपरके मूल विषे मैं तीक्ष्ण कांतियुक्त आयुधन करिकैं व्याप्त अपने पति श्रीकृष्णको बैठो देखि स्नेहसो मग्न आत्मा नेत्रनमें जल भर दारुक रथतें उतरिकें चरणन विषें परतभयो ॥४२॥ हे प्रभो ! तुम्हारे चरणारविंदकों विना देखें मेरो ज्ञान नाश भयों, मोहमें प्रविष्ट भयोहो मैं दिशानकों नहीं

इति ब्रुवति सूते वै रथो गरुडलाञ्छनः ॥ खमुत्पपात
राजेन्द्र साश्वध्वज उदीक्षतः ॥ ४४ ॥ तमन्वगच्छन्
दिव्यानि विष्णुप्रहरणानि च ॥ तेनातिविस्मितात्मा-
नं सूतमाह जनार्दनः ॥ ४५ ॥ गच्छ द्वारवतीं सूत
ज्ञातीनां निधनं मिथः ॥ संकर्षणस्य निर्याणं बन्धुभ्यो
ब्रूहि मद्दशाम् ॥ ४६ ॥ द्वारकायां च न स्थेयं भवद्भिः
स्वस्वबन्धुभिः ॥ मया त्यक्तां यदुपुरीं समुद्रः प्लावयि-
ष्यति ॥ ४७ ॥ स्वं स्वं परिग्रहं सर्वं आदाय पितरौ
च नः ॥ अर्जुनेनाविताः सर्व इन्द्रप्रस्थं गमिष्यथ
॥ ४८ ॥ त्वं तु मद्धर्ममास्थाय ज्ञाननिष्ठ उपेक्षकः ॥
मन्मायारचनामेतां विज्ञायोपशमं व्रज ॥ ४९ ॥

जानूंहूं और शांतिकों नहीं पाऊंहूं जैसें रात्रिमें चंद्रमाके गये पीछें दिशा नहीं जानी जाय हैं ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! जब ऐसें दारुक सारथि कहतभयो तब सारथिके देखतेही गरुड़ चिह्न युक्त रथ घोडा ध्वजा सहित आकाशकों उडतभयो ॥ ४४ ॥ ता पीछें विष्णुके दिव्य आयुध जातभये, या करिकें विस्मितमन सारथिसों भगवान् जनार्दन कहतभये ॥ ४५ ॥ हे सूत ! तुम द्वारका जाहु बांधवनसों परस्पर ज्ञातिको मरण, योगमार्ग करिकै बलदेवजूको प्रस्थान और मेरी दशा कहो ॥ ४६ ॥ तुम बांधवसहित द्वारका विषें मति रहो मो करिकें छोडी द्वारकाकों समुद्र बोरेगो ॥ ४७ ॥ अपनी अपनी सामग्री ले सब तुम्हारे हमारे माता पिताकों लेकरिकै अर्जुन करिकै रक्षित ह्वैके इंद्रप्रस्थ जाओ ऐसें बांधवनसों कहो ॥ ४८ ॥ तुम ज्ञाननिष्ठ निस्पृह हो मेरे धर्मकों करि और यह मेरी मायाकी रचना जानिकैं शांतिकों प्राप्तहोउ ॥ ४९ ॥

इत्युक्तस्तं परिक्रम्य नमस्कृत्य पुनः पुनः ॥ तत्पा-
दौ शीर्ष्ण्युपाधाय दुर्मनाः प्रययौ पुरीम् ॥ ५० ॥ इति
श्रीभागवते महापुराण एकादशस्कन्धे यदुकुलसं-
क्षयो नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

अथ एकत्रिंशोऽध्यायः।

श्रीशुक उवाच ॥ अथ तत्रागमद्ब्रह्मा भवान्या च स-
मं भवः ॥ महेन्द्रप्रमुखा देवा मुनयः सप्रजेश्वराः
॥ १ ॥ पितरः सिद्धगन्धर्वा विद्याधरमहोरगाः ॥ चा-
रणा यक्षरक्षांसि किन्नराप्सरसो द्विजाः ॥ २ ॥ द्रष्टु-
कामा भगवतो निर्याणं परमोत्सुकाः ॥ गायन्तश्च
गृणन्तश्च शौरेः कर्माणि जन्म च ॥ ३ ॥

ऐसें जब कह्यो तब दारुक श्रीकृष्णजीको वारंवार परिक्रमा करिकें श्रीकृष्णको पाइ माथेपर धरिकें कुलके नाशतें मलीनचित्त होइके द्वारका जातभयो ॥ ५० ॥

इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां एकादशस्कन्धे
त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

इकतीसके अध्यायमें भगवान् मनुष्यलोकतें अपनें धामको पधारते भये पीछें वसुदेवादिक प्रीतिसों श्रीकृष्णके पीछें जातभये श्रीकृष्ण स्वेच्छापूर्वक अपनें शरीरहीसों अपने धामको पधारतभये यह कथा कहैंगे ॥ श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षितसों कहैं हैं दारुकके गये पीछें तहां ब्रह्मा पार्वतीसहित महादेव, इंद्रादिक देवता सनकादिक मुनि मरीचि आदि प्रजापति ॥१॥ पितर गंधर्व विद्याधर महानाग चारण यक्ष राक्षस किंनर अप्सरा पक्षी ॥ २ ॥ भगवान्के प्रस्था-

ववृषुः पुष्पवर्षाणि विमानावलिभिर्नभः ॥ कुर्वन्तः सं-
कुलं राजन् भक्त्या परमया युताः ॥४॥ भगवान् पि-
तामहं वीक्ष्य विभूतीरात्मनो विभुः ॥ संयोज्यात्म-
नि चात्मानं पद्मनेत्रे न्यमीलयत्॥५॥ लोकाभिरामां
तनुं धारणाध्यानमङ्गलम् ॥ योगधारणयाऽऽग्नेय्या-
ऽदग्ध्वा धामाविशत् स्वकम् ॥ ६ ॥ दिवि दुन्दु स्व-
भयो नेदुः पेतुः सुमनसश्च खात् ॥ सत्यं धर्मो धृति-
र्भूमेः कीर्तिः श्रीश्चानु तं ययुः ॥ ७ ॥

नके देखिवेकी इच्छासौ परम उत्कंठित श्रीकृष्णके जन्म कर्म गावते और कहते तहां आवतभये ॥ ३ ॥ हे राजन् परीक्षित्! फूलनकी वर्षा करतभये परमभक्ति करिकें युक्त विमाननकी पंक्ति करिकैं आकाशको संकुल करतभये ॥ ४ ॥ प्रभु व्यापक भगवान् ब्रह्माकों और इंद्रादिक अपनी विभूतिकों देखिकैं आपुविषें आपकों संयुक्त करिकैं अपने लोक ले जाइवेकों आये बहुत देवतानकों देखिकैं समाधि करकैं नेत्रकमल मूंदतभये ॥ ५ ॥ जैसे स्वेच्छामृत्युवाले योगी अपने शरीरको अग्निकी योग धारणा करिकैं जराइ लोकमें प्रवेश करैहैं श्रीकृष्ण तैसें न करत भये सब लोकनकी स्थिति वा देहविषें हैं जगत्के आश्रय भगवान्के शरीरके दाहतें जगत्हूको दाह होइ और वह शरीर धारण और ध्यानको विषय है जो दाह मानिये तो धारणा ध्यान कैसे होइ और अबहूं उपासकनको तैसेंही वह रूप साक्षात्कार दीखै है यासौं इच्छाको शरीर बनाइकैं ताकों योग धारणा करिकैं जराये विना अंतर्धान करि जातभये ॥ ६ ॥ तहां देवलोकमें नगाडे बाजतभये, आकाशते फूलनकी वृष्टि होतभई, श्रीकृष्णके पीछें भूमिते सत्य धर्म धैर्य कीर्ति लक्ष्मी ये सब

देवादयो ब्रह्ममुख्या न विशन्तं स्वधामनि ॥ अवि-
ज्ञातगतिं कृष्णं ददृशुश्चातिविस्मिताः ॥ ८ ॥ सौदा-
मन्या यथाकाशे यान्त्या हित्वाऽभ्रमण्डलम् ॥ ग-
तिर्न लक्ष्यते मर्त्यैस्तथा कृष्णस्य दैवतैः ॥ ९ ॥ ब्र-
ह्मरुद्रादयस्ते तु दृष्ट्वा योगगतिं हरेः ॥ विस्मितास्तां
प्रशंसन्तः स्वं स्वं लोकं ययुस्तदा ॥ १० ॥ राजन् पर-
स्य तनुभृज्जननाप्ययेहा मायाविडम्बनमवेहि यथा
नटस्य ॥ सृष्ट्वात्मनेदमनुविश्य विहृत्य चान्ते संहृत्य
चात्ममहिमोपरतः स आस्ते ॥ ११ ॥

जातभये ॥ ७ ॥ ब्रह्मादिक देवता श्रीकृष्णकों स्वधाम विषें प्रवेश करते न देखत भये तातें अति विस्मित भये, जातें श्रीकृष्णकी गति काहूनें न जानी ॥ ८ ॥ सोई दृष्टांत करिकैं कहैं हैं जैसे मेघमंडलकों छोडि आकाश विषें जाती वीजरीकी गति मनुष्यन करिकैं नहीं लखी जाय है तैसे देवतान करिकैं श्रीकृष्णकी गति न लखी गई विनकी गति विनके पार्षदही जाने हैं ॥ ९ ॥ ते ब्रह्मा रुद्रादिक देवता श्रीकृष्णकी योगगति देखिकै विस्मय पावतभये ता गतिकी स्तुति करत अपनें अपनें लोकनमें जातभये ॥ १० ॥ हे राजन् परीक्षित् ! यादवनके विषें श्रीकृष्णको जन्म धारण करनो माया करिकैं अनुकरण मात्र जानो, जैसे नट निर्विकार है नाना रूपन करिकैं जन्मादिककों अनुकरण करै या प्रकार आपुही यह जगत उपजाई अंतर्यामी भावसो जगत्में आवेश करि अंतकालमें संहार करै हैं परंतु आप अपनी महिमासो निर्विकार हैं ॥ ११ ॥

मर्त्येन यो गुरुसुतं यमलोकनीतं त्वां चानयच्छर-
णदः परमास्त्रदग्धम् ॥ जिग्येऽन्तकान्तकमपीशम-
सावनीशः किं स्वावने स्वरनयद् मृगयुं सदेहम्
॥ १२ ॥ तथाऽप्यशेषस्थितिसंभवाप्ययेष्वनन्यहेतु-
र्यदशेषशक्तिधृक् ॥ नैच्छत्प्रणेतुं वपुरत्र शेषितं म-
र्त्येन किं स्वस्थगतिं प्रदर्शयन् ॥ १३ ॥

तुम और मूर्ति मति जानो, याही अवतारमें कृष्णको प्रताप बहुत बडो देख्यो है जिननें परलोकतें सांदीपनको पुत्र प्राप्तकियो, और वाकूंही शरीरसों शरणागतरक्षक श्रीकृष्ण ले आवतभये ब्रह्मास्त्र करिकें दग्ध तुमकों रक्षा करतभये, कालनके काल महारुद्रकों बाणासुरके संग्राममें जीतत भये, और जरानाम वधिककों देहसहित स्वर्गकों प्राप्त कियो, श्रीकृष्ण कहा अपनी रक्षामें असमर्थ हैं ॥१२॥ अहो जो श्रीकृष्ण समर्थ है तो कोऊ काल यह शरीर यहांही क्यों न रहे, तहां कहेहें संपूर्ण जगत्के सृष्टि प्रतिपालन संहार विषें आपुही कारण हैं औरकी आकांक्षा नहीं राखे हैं, अनेक शक्तिनको धरेंहैं, यद्यपि ऐसे हैं तोहू यादवनकों संहार करिकैं अपनें देहकों या लोकमें राखिवेको न इच्छा करत भये, आपुहूं निज धाम विषें अपने देहको प्राप्त करतभये तहां हेतु कहेहैं अब या देहको यहां कहा कार्य्य है स्वधर्मी आत्मनिष्ठनको दिव्यरीतिहीसो दिखावत भये, और भांति वे आत्मनिष्ठ दिव्यगतिको अनादर करि योगबलकरिकै देह सिद्धिको करि कहूं यहांहीं क्रीडा करिवेकों मन न करे याके अर्थ प्रभु आपुहू सिधारे हैं प्रयोजन यामें यह है कि अपने अपने शरीरके अंतर्धान करिवेमें यह उपदेश कियो कि जब अखिलकोटि ब्रह्मांडनायक मेंहू या लोकमें स्थिर न रह्यो तब फिर और कौन रहेगो ऐसे या जगत्की अनित्यता दिखाई ॥ १३ ॥

य एतां प्रातरुत्थाय कृष्णस्य पदवीं पराम् ॥ प्रयतः
कीर्त्तयेद्भक्त्या तामेवाप्नोत्यनुत्तमाम् ॥ १४ ॥ दारुको
द्वारकामेत्य वसुदेवोग्रसेनयोः ॥ पतित्वा चरणावस्रै-
र्न्यषिञ्चत्कृष्णविच्युतः ॥ १५ ॥ कथयामास निधनं
वृष्णीनां कृत्स्नशो नृप ॥ तच्छ्रुत्वोद्विग्नहृदया जनाः
शोकविमूर्च्छिताः ॥ १६ ॥ तत्र स्म त्वरिता जग्मुः
कृष्णविश्लेषविह्वलाः ॥ व्यसवः शेरते यत्र ज्ञातयो
घ्नन्त आननम् ॥ १७ ॥ देवकी रोहिणी चैव वसुदेव-
स्तथा सुतौ ॥ कृष्णरामावपश्यन्तः शोकार्ता विजहुः
स्मृतिम् ॥ १८ ॥ प्राणांश्च विजहुस्तत्र भगवद्विरहा-
तुराः ॥ उपगुह्य पतींस्तात चितामारुरुहुः स्त्रियः ॥ १९ ॥

जो प्रातःकाल उठि करिकैं सावधान होइ या श्रीकृष्णकी परमगतिकों भक्तिसों कहै, सो परम उत्तम गतिको पावे ॥ १४ ॥ वसुदेव आदिकनकी गति कहें हैं, दारुक सारथि श्रीकृष्ण विछुरचो द्वारकामें आइकै वसुदेव उग्रसेनके चरणमें परिकै आंसून करिकै तिनके चरणनकों सींचत भयो ॥ १५ ॥ हे राजन् परीक्षित् ! और सब यादवनको नाश कहत भयो, यह सुनिकै वसुदेवादिक जन हृदयमें उद्वेग पावतभये शोक करिकैं मूर्छित हो ॥ १६ ॥ मुखकों कूटते श्रीकृष्णके वियोगसे विह्वल उतावले तहांई आवतभये जहां बांधव प्राणरहित सोयेहैं ॥ १७ ॥ देवकी और रोहिणी और वसुदेवजी श्रीकृष्ण और बलदेव पुत्रको विना देखे शोक करिकै आतुर हो सुधिरहित होत भये ॥ १८ ॥ भगवान्के विरहसो आतुर हो तहांही प्राण छोड दिये अपने अपने पतिकों मिलिकरिकैं स्त्री चितामें प्रवेश करत भई ॥ १९ ॥

रामपत्न्यश्च तद्देहमुपगुह्याग्निमाविशन् ॥ वसुदेव-
पत्न्यस्तद्गात्रं प्रद्युम्नादीन्हरेः स्नुषाः ॥ कृष्णपत्न्यो-
ऽविशन्नग्निं रुक्मिण्याद्यास्तदात्मिकाः ॥ २० ॥ अर्जु-
नः प्रेयसः सख्युः कृष्णस्य विरहातुरः ॥ आत्मानं
सान्त्वयामास कृष्णगीतैः सदुक्तिभिः ॥ २१ ॥ बन्धूनां
नष्टगोत्राणामर्जुनः साम्परायिकम् ॥ हतानां कार-
यामास यथावदनुपूर्वशः ॥ २२ ॥ द्वारकां हरिणा
त्यक्तां समुद्रोऽप्लावयत्क्षणात् ॥ वर्जयित्वा महाराज
श्रीमद्भगवदालयम् ॥ २३ ॥ नित्यं सन्निहितस्तत्र
भगवान्मधुसूदनः ॥ स्मृत्याऽशेषाऽशुभहरं सर्वमङ्ग-
लमङ्गलम् ॥ २४ ॥

और बलदेवजीकी स्त्री बलदेवजीके देहकों आलिंगन करके अग्निमें प्रवेश करत भई, और वसुदेवकी स्त्री वसुदेवके देह करिके श्रीकृष्णकी पुत्रवधू प्रद्युम्न आदि अपनें अपनें पतिनकों मिलिकै रुक्मिणी आदि श्रीकृष्णकी स्त्री श्रीकृष्णमय होत अग्निमें प्रवेश करतीभई ॥ २० ॥ परमप्रिय सखा श्रीकृष्णके विरहसो आतुर हो अर्जुन श्रीकृष्णकथित गीता शास्त्रसो आपकोंही समुझावतभयो " मैं योगमाया करिकै आवृत हों सबकों प्रकट नहीं जन्मरहित अविनाशी हों यह मूढलोक मोकों नहीं जानते " इत्यादिक श्रीकृष्णके वाक्य है ॥ २१ ॥ जिनकी संपत्ति नाशकों प्राप्तभई और आयु नाशकों प्राप्तभये, तिन बांधवनकों अर्जुन पिंडदान तर्पण आदि कार्य विधिपूर्वक क्रम करिकै करावत भये ॥ २२ ॥ हे महाराज ! श्रीयुत भगवान्के मंदिरको वर्जिकैं श्रीकृष्ण करिकैं त्यागी द्वारकाको क्षणमात्रमें समुद्र डुबावतभयो ॥ २३ ॥ स्मरण मात्र करिकेंई सब अशुभकों हरवेहारे सब मंगलके

श्रीबालवृद्धानादाय हतशेषान् धनंजयः ॥ इन्द्रप्रस्थं समावेश्य वज्रं तत्राऽभ्यषेचयत् ॥ २५ ॥ श्रुत्वा सुहृद्वधं राजन्नर्जुनात्ते पितामहाः ॥ त्वां तु वंशधरं कृत्वा जग्मुः सर्वे महापथम् ॥२६ ॥ य एतद्देवदेवस्य विष्णोः कर्माणि जन्म च ॥ कीर्त्तयेच्छ्रद्धया मर्त्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २७ ॥ इत्थं हरेर्भगवतो रुचिरावतारवीर्याणि बालचरितानि च शंतमानि ॥ अन्यत्र चेह च श्रुतानि गृणन्मनुष्यो भक्तिं परां परमहंसगतौ लभेत ॥ २८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

मंगल भगवान् मधुसूदन ता मंदिरविषें नित्य विराजे हैं ॥ २४ ॥ मरततें उवारे स्त्री बालक वृद्धको अर्जुन लेकरिकैं इंद्रप्रस्थमें प्रवेश कराइ तहां वज्रनाभकों अभिषेक करतभये ॥ २५ ॥ अब श्रीशुकदेवजी कहैं हैं हे राजन् परीक्षित् । तुह्मारे पितामह पांडव अर्जुनतें सुहृदनको वध सुनिकै तुमकों वंशधारी करिकै महाप्रस्थानकों चले गये ॥ २६ ॥ जो मनुष्य श्रद्धाकरिकैं देवनके देव विष्णुके जन्म और कर्मनकों सुनैंगे कहैंगें सो सब पापनतें छूटैंगे ॥ २७ ॥ या प्रकार या ग्रंथमें और दूसरे ग्रंथनमें वर्णन किये भये परम मंगल भगवान् हरिके सुंदर अवतारनके चरित्र जो मनुष्य कहैंगे सो परमहंसनके शरणदायक श्रीकृष्णविषें परम भक्ति पावेंगे ॥ २८ ॥

इति श्रीमद्भागवत भाषाटीकायां पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रसंशोधितायां एकादशस्कन्धे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

अज अव्यक्त अनादि श्रीकृष्णचरण मन लाय ।
कियो शुद्ध हरिकृपातें यदुपति रहैं सहाय ॥

धन्वन्तरी [वैद्यकग्रंथ].

लाला शालिग्राम वैश्य मुरादाबादनिवासीकृत "सर्वार्थसिद्धि" नाम

भाषाटीकासहित ।

पाठकगण! यद्यपि आजकल आयुर्वेदीय चिकित्साके बडे बडे ग्रन्थ मूल और भाषाटीकासहित मुद्रित हो चुके हैं, परन्तु जो सर्वसाधारणको उपयोगी और सुलभ हो ऐसा कोई ग्रन्थ आजतक कहीं नहीं छपा, इस ग्रन्थकी चिकित्सा प्रणाली प्राचीन ऋषिप्रणीत सम्पूर्ण ग्रन्थोंसे निराली है, इसके प्रयोग बडे विलक्षण और रामबाणकी समान गुणकारी हैं जो प्रयोग इस ग्रन्थमें लिखे हैं वह अन्य ग्रन्थोंमें नहीं हैं इसमें ज्वरसे लेकर विषरोगपर्यंत सब रोगोंकी अत्यन्तविस्तारपूर्वक सरल रीतिसे निदान और चिकित्सा कही है, जो क्वाथ, चूर्ण, अवलेह, तैल, घृत, गुटिका, मोदक, रस, रसायन प्रभृति इस ग्रन्थमें लिखे हैं वह अन्य ग्रन्थोंकी अपेक्षा अत्यन्त सरल और तत्काल फलदायक हैं, इसमें चिकित्साके चार पाद, वैद्यके लक्षण, रोगीके लक्षण, परिचारकके लक्षण, औषधिके लक्षण, वैद्यके कर्म्म, वैद्यको शिक्षा, आयुर्वेदके लक्षण, आयुर्वेदकी प्रशंसा, दूतके लक्षण, शुभाशुभ शकुन और स्वप्नका वर्णन, नाडीपरीक्षा, मूत्रपरीक्षा, मलपरीक्षा. जिह्वापरीक्षा, शब्दपरीक्षा, स्पर्शपरीक्षा, रूपपरीक्षा, नेत्रपरीक्षा आदि रोग निश्चय करनेके लिये रोगीकी अनेक परीक्षा, और ज्वरसे लेकर विषरोगपर्य्यंत सम्पूर्ण रोगोंकी चिकित्सा अयत्न्त विस्तृतरूपसे लिखी है, अन्तमें रसायन और वाजीकरण अधिकारभी ले प्रकार वर्णन किया है बालचिकित्सा और वन्ध्याचिकित्सा तथा स्त्रीचिकित्साभी पृथक् पृथक् अनुपम रीतिसे कही है, यदि इसमेंसे प्रत्येक रोगकी, चिकित्सा अलग अलग की जाय तो बहुत ग्रन्थ बन सकते हैं, विशेष कहनेसे क्या प्रयोजन ? कहीं नहीं छपा. की० ५ रु०.

पंचतन्त्र भाषाटीकासहित ।

प्रिय तन्त्रशास्त्रामृतपिपासुमहाशयवर्ग ! यद्यपि आपने समयके क्रमानुसार एक नहीं बल्कि अनेक तन्त्रशास्त्र देखे होंगे, परन्तु उन सबके देखनेसे कदाचित आपकी चिरन्तन आशायें परिपूर्ण न हुई होंगी । अतएव हमने पण्डितवर श्रीविष्णुशर्माद्वारा संकलित नीतिशास्त्रसंबन्धी तन्त्रशास्त्रको छापके प्रसिद्ध किया है । ग्रन्थकारने इस ग्रन्थमें नीतिशास्त्रके आधारसे मारण, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन, विद्वेषण आदिकी क्रियाओंके ऐसे २ चुटकुले लिखे हैं जिनकी सफाईसे मन मोहित हो जाता है । जन्मान्ध आदि बड़े २ रोगोंकी तजुर्बे करी हुई औष-धियोंके वर्णन है । फिर अनेक विषयोंके ऊपर ऐसी रसीली कथायें लिखी गई

हैं जिनको केवल एक वार पढ जाने मात्रसे मनुष्य हरेक तरहके लौकिक विषयोंमें निपुण हो जाता है। आजतक इस ग्रन्थके मधुर रसको केवल संस्कृतज्ञ पण्डितही चाखते थे अब मुरादाबादनिवासी विद्वद्वर व्रजरत्नभट्टाचार्यजीने इस ग्रन्थके ऊपर सरल और सुबोध भाषाटीका बनाके सर्व साधारणका वास्तवमें विशेष उपकार किया है। उपरोक्त पण्डितजीके बनाये हुए भाषानुवादकी उत्तमताके विषयमें संप्रति हमें कुछभी प्रमाण देनेकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि शिक्षित समाजके सभ्योंमें बालकोंसे लेकर वृद्धपर्यन्त कोई व्यक्ति ऐसा न होगा जो पण्डितजीकी लेखप्रणालीको न जानता हो। मूल्य २ रु०।

हरिवंश भाषाटीका.

हमारे पाठकोंमें बहुत कम ऐसे महाशय होंगे जिन्होंने उपरोक्त पुराणका नाम नहीं सुना हो यद्यपि यह पुराण महाभारतके अन्तर्गत है तथापि इसकी गणना पृथक् की जाती है। इस विराट् ग्रन्थमें किन २ पवित्र कथाओंका वर्णन है इस बातकी मीमांसा करनेका हमको अवसर नहीं, परन्तु इतना अवश्य कहेंगे कि इसके पाठसे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ये चारों पदार्थ हस्तगत हो जाते हैं। ब्रह्महत्यादिक महापातकोंका नाश हो जाता है। भक्ति श्रद्धापूर्वक इसका पाठ करनेसे निःसन्देह संतानकी प्राप्ति होती है। इस बातको हमारे पाठक भली भांति जानते होंगे कि, जिन मन्दभागियोंके भागमें विधाताने सन्तान होनेके अक्षर नहीं लिखे उनके एक वार सच्चे चित्तसे इसका अवश्यमेव पाठ करनेसे सन्तान होतीहै विशेष क्या कहें जिस कामनासे इसका पाठ किया जाय अवश्यही उसकी पूर्ति होती है। यह तीन प्रकारसे छपके तय्यार १–संस्कृत टीकासह की० ५ रु०। २–पं० ज्वालाप्रसादजीकृतभाषाटीकासह की० १० रु०। ३–केवल भाषा। अध्यायके आदि अन्तको श्लोक लिखकर शेष श्लोकोंकी मूलांकसहित सुन्दर भाषा लिखी गई है। भाषा ऐसी कमनीय और मधुर बनी है कि, एकवार थोडासाभी पाठ करनेसे विना परिपूर्ण किये छोडनेको चित्त नहीं चाहता। विलायती कपडेकी सुनहरी जिल्द बंधी मूल्य ५ रु०। चाहिये वैसा नमुना मंगालो.

षडङ्ग (रुद्राष्टाध्यायी) भाषाटीका।

जो व्यक्ति हिन्दु होनेका अभिमान रखते हैं वे रुद्रीको भलीभांती जानते हैं इसमें वैदिक मन्त्रोंसे भगवान् भूतनाथकी पूजा और उपासना लिखी गई है। इसका केवल पाठ मात्र करनेसे मनुष्यको किसी वस्तुकी कमी नहीं रहती, हमने सर्व साधारणके उपकारार्थ मुरादाबादके पण्डित व्रजरत्न भट्टाचार्यजीसे अत्यन्त कमनीय और सरल भाषाटीका बनवाकर खूब बडे २ सुवाच्य अक्षरोंमें मूल और भाषानुवाद छापके प्रसिद्ध किया प्रत्येक मन्त्रके नीचे स्वरोंके चिन्ह ऐसी सरलतासे लिखे जिन्हें सब कोई समझ सक्ते हैं। मूल्य १० आना।

अन्वितार्थप्रकाशिकाख्यव्याख्यासहित—

श्रीमद्भागवत.

(व्याख्याग्रन्थसंख्या ७००००)

यह टीका बूंदी महाराजाश्रित पं० गंगासहायजीने बनाई है. इसमें मल्लिनाथके ढंगपर अन्वयक्रमसे सरल और कठिन सब श्लोकोंका अर्थ सुगम रूपसे लिखा है और टीकामें जिन जिन बातोंका लिखना आवश्यक है वे सब संक्षेप और सुगमतासे लिख दी हैं इसमें श्रीधरजीकी टीकाकी तो प्रायः सब बात आगई और बहुतसी बातें तोषिणीसारार्थसंदर्शिनी आदिसेभी लीगई है और सुगमता अन्वयक्रम और संक्षेपपर पूरी दृष्टि रक्खी गई है इस टीकाके शेषमें भागवतोपयोगी वेदांत सांख्यादिक कितनेक मत सुगम रीतिसे लिख दिये हैं. इसमें किसी मतका पक्षपात अथवा खंडन नहीं किया गया है । सब मतोंके आचार्योंका आदरपूर्वक स्मरण किया गया है. और भागवतके स्कंध और प्रकरणोंका अभिप्राय और श्लोकोंके छन्द तथा अध्यायोंके श्लोकोंकी गणना लिख दी है औरभी बहुत बातें हैं. इसका मूल्य अत्यल्प केवल १२ रुपये. देखनेसे मालूम होगा. पुस्तक समग्र छप चुका. नमूना मंगालो. काशिआदि ठिकानेके विद्वानोंकी शेंकडो सम्मति आई हैं.

अन्वितार्थप्रकाशिकाख्यव्याख्यासहिता

दशमस्कन्ध अलगभी मिलता है की० ४ रु० ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,

"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना, कल्याण—मुंबई.

Gangavishnu Shrikrishnadas.

Laxmi-Venkateshwar Press.

KALYAN G. I. P. RY. JUNCTION.

BOMBAY PRESIDENCY.